भाषा-संस्कार-ग्रन्थमाला

कादंबरी-परिचय

[महाकवि बाण की कादंबरी का संक्षिप्त परिचय]

राजनाथ पांडेय, एम० ए०

भाषा-संस्कार-ग्रन्थ-माला

कादंबरी-परिचय

[महाकवि बाण की कादंबरी का संक्षिप्त परिचय]

* *
*

श्री राजनाथ पाण्डेय, एम्० ए०
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग,
सेंट एँड्रूज कॉलेज, गोरखपुर।

* *
*

प्रकाशक
श्री लक्ष्मी प्रकाशन मंदिर,
गोरखपुर।

मूल्य २।)

प्रकाशक
श्री लक्ष्मी प्रकाशन मंदिर
गोरखपुर

मुद्रक
काशीप्रसाद भार्गव,
सुलेमानी प्रेस, काशी।

श्रीरघुबरनारायण सिंह

समर्पण

काव्य और कवि के अनुरागी
सहृदय, सज्जन, इष्ट, मनस्वी,
श्री रघुवर नारायण सिंह श्रेष्ठवर
की सेवा में
सप्रणय
सा
द
र

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
भूमिका	...	...	...	१-३८
कादंबरी-परिचय	...	...	...	१-१७०
शब्द-कोश	...	...	...	१७१-१९६

परिच्छेदों के नाम *

—:*:—

* कादंबरी-कथा का ११ अध्यायों में विभाजन तथा उनका नामकरण मारा किया हुआ है।

कथा-वस्तु

इस पुस्तक को इस रूप में रचकर प्रकाशित करने के प्रधान तीन उद्देश्य हैं—(१) भाषा-संस्कार (२) संस्कृति-प्रसार और (३) मनोहर कहानी का बखान।

१

आजकल भाषा बिगड़ती जा रही है। हिंदी और हिंदुस्तानी की समस्या तो है ही, अधिक अंग्रेजी पढ़े लिखे हिंदी के अनेक लेखकों की असावधानी से भाषा और भी दुरूह और भ्रष्ट हो रही है। हमारे एक विख्यात कहानी-लेखक अपनी एक कहानी में लिखते हैं--"वह पैसे से भरा था और व्यय शील हो सकता था। आशा उसे उठाए हुए थी और वह अपने बड़प्पन में स्वस्थ होकर इस जीव के साथ भाई-चारा भी बिना खतरे के साथ दिखा सकता था।" दलभरी पूरी और मटरभरा समोसा तो समझ में आता है। आदमी की पेटारी, जेब या थैली भी पैसे से भरी हो सकती है। पर यह पैसाभरा आदमी कैसा होता है यह समझ में नहीं आता। यह "पैसे से भरा" स्पष्टतः अंग्रेजी के "ही वाज़ फ़ुल आव् मनी" (वह पैसे से भरा था) ही का अनुवाद है।

निश्चय मानिए इस प्रकार की भाषा केवल हिंदी पढ़ा हुआ व्यक्ति नहीं समझ सकता। इस भाषा को जानने के लिए उस व्यक्ति को पहिले कुछ वर्षों तक अंग्रेजी पढ़नी पड़ेगी। तब जाकर वह उन कहानी लेखक जी की कहानी समझ सकेगा!

एक और उदाहरण लें। कबीरदास जी गाढ़े का थान बुनकर उसे बेंचने के लिए हाट में निकले हुए हैं। हिन्दी के एक डाक्टर (एम० बी०, बी० एस०, या एल० एम० पी० नहीं, डी० लिट्० या पी एच० डी०) उक्त घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"उन गजी के थानों में कबीर की रोटी का प्रश्न था।"* सच पूछें तो उन थानों में न प्रश्न था न उत्तर; किन्तु उन डाक्टर साहब को यदि प्रश्न और उत्तर की बातों में ही सुगमता हो तो हम उनसे प्रश्न करना चाहते हैं. उन थानों में रोटी का प्रश्न था या रोटी के प्रश्न का उत्तर? जब 'गुरू' लोगों की यह दशा है तब विद्यार्थी यदि लिखें—"मिश्र जी ने† शिव की लिंगाकार मूर्ति+ ली है," जिसको पढ़कर पाठक प्रश्न करे. "उधार या दाम देकर?" अथवा वह कहें —'अब हम मूर्तियों पर आते हैं," जिसे सुन सुननेवाला पूछ बैठे, "नंगे पाँव या खड़ाऊँ पहिन कर?" तो आश्चर्य ही क्या है?

आजकल हम लोग प्रायः कहते हैं "मैं गलती पर था" जो स्पष्टतः "आई वाज़ ऐट फॉल्ट" का अनुवाद है। प्राचीन समय में चित्रलेखा नाम चित्र के लिये लिखने प्रयोग की ओर संकेत करता है। तुलसीदास के "चित्र लिखित कपि देखि डेराती" में वही प्रयोग है। जायसी ने भी "चित्र उरेहा" कहा है।

---

* 'हिन्दी गद्य-दीपिका' से जिसे युक्त प्रांतीय शिक्षा-बोर्ड ने इंटर कक्षा में हिंदी की पाठ्य-पुस्तक रखी है।

† स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र।

+ यह "शिवमूर्ति" शीर्षक पंडित प्रतापनारायण जी के लिखे हुए निबंध का वर्णन है।

बंगला में "छोबी आँका" ही परंपरागत प्रयोग है। पर आज-कल हम लोग तसबीर खींचना या उतारना कहते हैं जो "टु ड्रा अ पिक्चर" का अनुवाद है!

इन प्रकार के कुप्रभावों के कारण जनसाधारण का संपर्क भाषा से कम होता जा रहा है। महाकवि बाण ने कादंबरी नामक उस अद्भुत दिव्य ग्रंथ को जिसकी यह प्रस्तुत रचना एक परिछाईं मात्र है आज से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व संस्कृत भाषा में निर्माण किया था। उस समय भारत में न फारसी थी न अंग्रेजी। अतः उस समय के प्रयोग जो संतों के साहित्य में और जनता की बोलियों में अब भी सुरक्षित हों परंपरागत-शुद्ध प्रयोग माने जा सकते हैं। आज की हिन्दी में उन्हें जोड़ देना अत्यन्त मंगलमय है। थोड़ी बहुत इस प्रकार की बातें इस पुस्तक में मिलेंगी। इनमें "कि" क प्रयोग बहुत ही कम सम्भवतः दो या तीन जगह ही मिलेगा। कुछ जान बूझ कर "कि" का बहिष्कार नहीं हुआ है। वास्तव में वाक्यों की रचना ही इस प्रकार हुई है जिससे "कि" अनावश्यक हो गया है। कादंबरी के हिन्दी में एक मात्र सुंदर अनुवाद में बहुत से शब्द ऐसे आ गए हैं जो वहाँ रहकर पुस्तक की भाषा को झूठी बनाते हैं। तनिक सी सावधानी रखने से यह बचा दिए जा सकते थे। ऐसे शब्दों में से कुछ निम्न लिखित हैं:—

अस्तबल, आवाज, इनाम, इरादा, उम्र, कतार, कुसूर, कोशिश, खयाल, गपशप, ज़बरदस्त, जरा, जुल्फ, तलाश, तसवीर, ताकत, ताजा, तावीज, नक्कारा, निशान, फर्श, मजबूत, मतलब, महल, मात, मालूम, मुकाबिला, याद, लायक, शामिल, शायद, शिकार, शुरू, शौक, सबूत, हमेशा

कादंबरी-परिचय में एक शब्द इस कोटि का नहीं मिलेगा।

इस पुस्तक की भाषा में वाक्य-विन्यास की जो गरिमा, पुरातनता और स्पष्टवादिता है वह आजकल की भाषा में नहीं पाई जाती। इससे यह और भी अनोखी और लुभावनी बन गई है। यदि कोई सज्जन हिन्दी में ऐसी पुस्तक चाहते हों जिसमें भाषा सर्वत्र एकरस और पुनीत है तो उन्हें यह पुस्तक देखनी चाहिए।

इसमें प्रयुक्त मुख्य मुख्य शब्दों को अन्त में एक शब्द-कोश के रूप में अर्थ सहित एकत्रित कर दिया गया है जिससे प्रत्येक पाठक को शब्दों की एक छोटी सी सम्पत्ति उपलब्ध होती है। भरसक उन शब्दों का मौलिक और विस्तृत अर्थ दिया गया है। वहाँ जो शब्द तिरछे अक्षरों में छपे हैं वह प्रायः जिन शब्द के अर्थ में दिए गए हैं उनके तद्भव रूप हैं या यदि वही तद्भव है तो उसके मूल रूप हैं।

महाकवि बाण ने इस कादंबरी उपन्यास में जिस प्रकार अद्भुत, महान्, और दिव्य प्राणियों का वर्णन किया है उसी प्रकार भाषा को भी अलौकिक भव्यता प्रदान की है। उनकी भाषा अमर है। संस्कृत है, देववाणी है, यह जिस भाषा के लिए कहा जाता है, बाण की भाषा का स्वाद ले लेने पर कोई भी ऐसा न होगा जो उसके लिए इन विशेषणों को मुक्तकंठ से स्वीकार न करे। उस भाषा में प्रायः गद्य में व्याप्त जीवन के चलतूपने की नीरसता वा विवशता नहीं है। उसमें काव्य की भाषा का सहती मानवता के घटाटोप वगल के बीच स्वच्छन्द उमंगों से भरा हुआ गयंद जैसा परिपूर्ण पद-संचालन है! वाक्यावली का लालित्य, भाव-व्यंजना की शांत शैली और विचारों की पवित्रता तथा भावों का गांभीर्य आदि संस्कृत में जो कुछ अपूर्व और

अलौकिक है उस सबसे यह ग्रन्थ-रत्न अलंकृत है। वाक्य बड़े बड़े हैं किन्तु उनका विराम-स्थल गाकगाड़ी के ठहरने के स्टेशनों की भाँति एक दूसरे से बहुत दूर नहीं है। एक एक वाक्य एक संपूर्ण चित्रशाला है। सहृदय के मनमें उक्त चित्रशाला के समस्त चित्र एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक बार साधारण दृष्टिपात करने से ही मन में पैठ जाते हैं। साथही उन चित्रों के अंश में ही समस्त को मानस-पटल पर रंजित कर देने की अवर्णनीय शक्ति भी है। प्रस्तुत पुस्तक में भाषा की वह विभूति कहाँ, फिर भी कुछ झलक तो आही गई है। प्रस्तुत पुस्तक *कादंबरी-परिचय* के प्रथम वाक्य ही को पढ़कर अनेक पाठक अरे. वाह! यह तो अद्वितीय पुस्तक है कह उठे हैं और इसमें अभूतपूर्व आनंद पाकर रम गए हैं। इस सफल रूप में इसका उतरना भी बाण की भाषा की ही महिमा है!

शब्द और अर्थ के एक अनन्य पारखी† बाण की भाषा के संबंध में कहते हैं:—*संस्कृत भाषा को अनुचर परिवृत सम्राट की तरह आगे करके कहानी उसके पीछे प्रच्छन्न प्राय भाव से छत्र उसके मस्तक पर लगाए चली है।"* बाण की भाषा सम्राट को धारण करने की गुरुता से मंडित. वर्ण वर्ण के पटाभूषणादि से भूषित, सुचित्रित कुञ्जर की मंथर-गामिता के समान है और भाषा का उत्कर्ष दर्शानेवाली रविबाबू की सम्राट्-छत्र की उपमा अत्यन्त उपयुक्त और सार्थक है इसमें संदेह नहीं है, किन्तु कभी-कभी अत्यधिक प्रसन्नता के कारण सम्राट के गज की गति अति मंद

† स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बंगला मासिक पत्र "प्रदीप" में प्रकाशित कादंबरी-चित्र शीर्षक लेख का पंडित रूपनारायण पांडेय कृत अनुवाद से।

पड़ जाने से पीछे-पीछे चलती हुई प्रजा को जो रुकना पड़ता है और उससे भीड़ के प्राण घुँट-घुँट जाते हैं इस प्रकार से बाण की भाषा सम्राट बनकर भाव के आगे आगे नहीं चलती। रेलगाड़ी में केवल इंजन में गमन-शक्ति होती है और साधारण-तया उसकी खींचने की शक्ति का ही परिचय मिलता है। उसके जड़ डिब्बे निस्सहाय और परवश हुए पीछे-पीछे चलते रहते हैं। इस प्रकार के खिंचाव में हम "*वस्तु के संपूर्ण अंशको एक साथ समान परिमाण में नहीं देख पाते। अर्थात् सामने के हिस्से को बड़ा देखते हैं और उसके पीछे के भाग को छोटा देखते हैं।*" परन्तु नदी के बहाव में गति का स्वरूप और ही होता है। वह दानवी नहीं मानवी और प्राकृतिक होता है। उसमें इंजन की भाँति निष्प्राण डिब्बों को खींचने वाली कोई वस्तु सबके आगे नहीं रहती वरन् उसमें प्रत्येक बूँद गतिशील होती है जो स्वयं को फैलाकर अपने संपर्क में आने वाली समस्त वस्तु को फैलने के लिए प्रेरित करती हुई प्रवाहित होती है। महा-कवि बाण की भाषा इसी प्रकार की पवित्र गतिशीलता धारण किए हुई उस अमृत रस की सतत प्रवर्तित मंद तरल-रेखा के समान है जिसके अग्रिम सीकरों की प्रगति पिछली समस्त बूँदों की सम्मिलित सचेष्टता के ही कारण संचालित होती है। कादंबरी में शब्द, अर्थ तथा कथा सब में ऐसी ही सकुटुम्बिता है। उनमें से प्रत्येक अपना दृढ़ अस्तित्व रखते हुए भी दूसरे की परतंत्रता को ही अपनी स्वतंत्रता के सदन की भित्ति नहीं बनाता। *कादंबरी-परिचय* में भाषा और कथानक का इस भाँति का संबंध बहुत अधिक प्रत्यक्ष है।

इस पुस्तक को यह रूप देकर प्रकाशित करने के तीन उद्देश्य

हैं यह हमने आरंभ में कहा है। इसमें हमारे अपने पुरुषार्थ की कोई बात नहीं है। वास्तव में मूल ग्रंथ में ही भाषा-संस्कार, संस्कृति-निरूपण तथा ललित-कथा-विस्तार का असाधारण सामर्थ्य है। पाश्चात्य साहित्य-शिक्षा में विशेषतः पुस्तकें पढ़कर ही जीवन समझने, जीविकोपार्जन करने और चरित्रवान् बनने तक का प्रयत्न अधिक है। व्यक्ति को चिंतन का वहाँ कम अवसर और प्रयास प्राप्त है। परन्तु हमारे यहाँ मनुष्य को पुस्तकें पढ़कर ही नहीं अपितु सत्संग और जन-सेवा द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की अधिक सुविधा रहती आई है। इसलिए हमारा साहित्य जीवन के एक पक्ष—भौतिकता—का ही वर्णन न करके एकांगी होने से बचता आया है यद्यपि "नई रोशनी" वालों द्वारा हमारा साहित्य ही एकांगी और "रोटी कमाने वाला" योरपीय साहित्य सत्साहित्य कहा जाता है। वर्तमान समय में अवश्य हमारा साहित्य योरपीय विचार-धारा से अत्यधिक प्रभावित हो गया है इस कारण निजको प्रधानता देने वाले दृष्टिकोण से निर्मित इस नवीन साहित्य में अहंभाव प्रधान है।

इस समय साहित्य-निर्माण के पुण्य कार्य में अहंकार को त्यागकर जनता के लिए जो वांछनीय हो अधिक से अधिक वह जानकारी दी जाय। आजका समय कह रहा है "कम बोला जाये।" उसी के साथ स्वर मिलाकर हम कहना चाहते हैं "कम लिखा जाय, और जो कुछ लिखा जाय शुद्ध लिखा जाय।" शुद्ध बोलने तथा लिखने से जीवन शुद्ध रहता है। जिस प्रकार राष्ट्र के सम्मान की भावना की रक्षा के लिए आज देश की तरुणाई आहुत है उसी प्रकार भारत की आत्मा की मनोहर पुकार को ऊँची करने के लिए भविष्य के अमर साहित्यिक

अपने अहं की आहुति देकर यज्ञ करें। महा समर के उपरांत फिर हाथ खुलने पर असंयम की बाढ़ विश्व को बहाएगी। उस बाढ़ में जो न बहेंगे वह सुदूर भविष्य में अपनी सन्तानों को विपत्ति की बपौती न छोड़ जाएँगे। हमारे सच्चे साहित्यिक अपनी कृतियों द्वारा यह अमर पाठ मानव के हृदय में अटल रूप में स्थित कर देंगे। विशेषतः भाषा के क्षेत्र में और अंशतः संस्कृति के क्षेत्र में लोक के लिए क्या हितकर है इसको ही ध्यान में रख-कर यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है। हम मौलिक लेखक कहलाने का यश पावें इसको ही चिन्ता होती तो इतने परिश्रम से कम ही में आज कल मौलिक कही जाने वाली जैसी कोई पोथी हम भी लिख ही देते!

हमारे मत में भारत की राष्ट्र-भाषा के भावी स्वरूपमें समस्त भारत विशेष रूप से उत्तरी भारत की सब बोलियाँ तथा साहित्य रंग भरेंगे। उसमें उर्दू भी अपना रंग भरेगी क्योंकि उर्दू भी इसी क्षेत्र में जनमी और उभरी है। उर्दू उसमें अपना अधिक रंग भरना चाहती है। इस संबंध में उर्दू की योग्यता और उसके अधिकार को स्वीकार करते हुए भी भावी राष्ट्र-भाषा का मौलिक आधार * उर्दू न होगी यह हम कहना चाहते हैं। वर्तमान खड़ी बोली की काया में प्रमुखतः

---

* वास्तव में उर्दू का भी मौलिक आधार वही है जो अन्य भारत-योरपीय-आर्य-भाषा-कुलकी उत्तरी भारत की वर्तमान भाषाओं का है किन्तु उर्दू में वह मौलिक आधार दब गया है और इस समय जो उर्दूका निजी रूप या उर्दूका रंग है वह कुछ दूसरा ही है। वह भारतीय परंपरा के अनुकूल न होने से विदेशी अतः राष्ट्र के लिये अग्राह्य है।

विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियों की वाणी से पवित्र हुई परंपरागत वाक्य-शैली और प्रयोगों तथा जनता में प्रचलित संस्कृत, अरबी- फारसी और अंगरेजी के तद्भव शब्दों रूप आत्मा की प्रतिष्ठा द्वारा ही उस राष्ट्रीय स्वरूप की स्थापना होगी। उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों की अधिकता हमें माननी पड़ेगी। साथ ही समस्त भारत की जो वह राष्ट्रीय भाषा होगी इसलिए संस्कृत का प्रमुख आधार लेकर विकसित बंगला, मराठी आदि भाषाओं के तत्सम संस्कृत शब्द-समूहों को भी हमें पहिचानना होगा जैसे हिन्दी में जो "अखिल भारतीय" अथवा "अखिल भारतवर्षीय" प्रयोग है बंगला में वही "निखिल भारतीय" है। उर्दू से घिर कर भी आत्मा में संस्कृत को रखने वाली पंजाबी जनता की वाणी में यह रूप "सर्व हिन्द" है। हम जिसे "प्रगति शीलता" कहते हैं मराठी में उसे "पुरोगामिता" नाम दिया गया है। इन सबको हमें जानना और ग्रहण करना ही होगा।

"विशुद्ध हिन्दी" के समर्थक तथा बोलियों के साहित्य के प्रचार के लिए विकेन्द्रीकरण की योजना के प्रवर्तक दोनों ही दलके लोग विचारों की अस्पष्टता के कारण उल्टी राह पकड़ बैठे हैं। हमने राष्ट्रीय भाषा के जिस भावी स्वरूप की बात कही है उसमें अरबी-फारसी से बिछुड़ कर उर्दू में आए हुए प्रयोग भले ही न स्थान पाएँ, अरबी-फारसी से बिछुड़ कर उर्दू में प्रचलित हो प्रांत की जनता की वाणी में जो तद्भव-रूप में घर करके बैठ गए हैं उन शब्दों का बहिष्कार कैसे किया जा सकता है? *

---

* इस प्रकार के शब्दों की हमने एक सूची तैयार की है जिन्हें अपने गाँव की एक दम अपढ़ जनता के मुँह से नित्य के व्यवहार में आते हमने

अपने अहं की आहुति देकर यज्ञ करें। महा समर के उपरांत फिर हाथ खुलने पर असंयम की बाढ़ विश्व को बहाएगी। उस बाढ़ में जो न बहेंगे वह सुदूर भविष्य में अपनी सन्तानों को विपत्ति की बपौती न छोड़ जाएँगे। हमारे सच्चे साहित्यिक अपनी कृतियों द्वारा यह अमर पाठ मानव के हृदय में अटल रूप में स्थित कर देंगे। विशेषतः भाषा के क्षेत्र में और अंशतः संस्कृति के क्षेत्र में लोक के लिए क्या हितकर है इसको ही ध्यान में रख-कर यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है। हम मौलिक लेखक कहलाने का यश पावें इसकी ही चिन्ता होती तो इतने परिश्रम से कम ही में आज कल मौलिक कही जाने वाली जैसी कोई पोथी हम भी लिख ही देते!

हमारे मत में भारत की राष्ट्र-भाषा के भावी स्वरूपमें समस्त भारत विशेष रूप से उत्तरी भारत की सब बोलियाँ तथा साहित्य रंग भरेंगे। उसमें उर्दू भी अपना रंग भरेगी क्योंकि उर्दू भी इसी क्षेत्र में जनमी और उभरी है। उर्दू उसमें अपना अधिक रंग भरना चाहती है। इस संबंध में उर्दू की योग्यता और उसके अधिकार को स्वीकार करते हुए भी भावी राष्ट्र-भाषा का मौलिक आधार * उर्दू न होगी यह हम कहना चाहते हैं। वर्तमान खड़ी बोली की काया में प्रमुखतः

---

* वास्तव में उर्दू का भी मौलिक आधार वही है जो अन्य भारत-योरपीय -आर्य-भाषा-कुलकी उत्तरी भारत की वर्तमान भाषाओं का है किन्तु उर्दू में वह मौलिक आधार दब गया है और इस समय जो उर्दूका निजी रूप या उर्दूका रंग है वह कुछ दूसरा ही है। वह भारतीय परंपरा के अनुकूल न होने से विदेशी अतः राष्ट्र के लिये अग्राह्य है।

विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियों की वाणी से पवित्र हुई परंपरागत वाक्य-शैली और प्रयोगों तथा जनता में प्रचलित संस्कृत, अरबी, फारसी और अंगरेजी के तद्भव शब्दों रूप आत्मा की प्रतिष्ठा द्वारा ही उस राष्ट्रीय स्वरूप की स्थापना होगी। उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों की अधिकता हमें माननी पड़ेगी। साथ ही समस्त भारत की जो वह राष्ट्रीय भाषा होगी इसलिए संस्कृत का प्रमुख आधार लेकर विकसित बंगला, मराठी आदि भाषाओं के तत्सम संस्कृत शब्द-समूहों को भी हमें पहिचानना होगा जैसे हिन्दी में जो "अखिल भारतीय" अथवा "अखिल भारतवर्षीय" प्रयोग है बंगला में वही "निखिल भारतीय" है। उर्दू से घिर कर भी आत्मा में संस्कृत को रखने वाली पंजाबी जनता की वाणी में यह रूप "सर्व हिन्द" है। हम जिसे "प्रगतिशीलता" कहते हैं मराठी में उसे "पुरोगामिता" नाम दिया गया है। इन सबको हमें जानना और ग्रहण करना ही होगा।

"विशुद्ध हिन्दी" के समर्थक तथा बोलियों के साहित्य के प्रचार के लिए विकेन्द्रीकरण की योजना के प्रवर्तक दोनों ही दल के लोग विचारों की अस्पष्टता के कारण उलटी राह पकड़ बैठे हैं। हमने राष्ट्रीय भाषा के जिस भावी स्वरूप की बात कही है उसमें अरबी-फारसी से बिछुड़ कर उर्दू में आए हुए प्रयोग भले ही न स्थान पाएँ, अरबी-फारसी से बिछुड़ कर उर्दू में प्रचलित हो प्रांत की जनता की वाणी में जो तद्भव-रूप में घर करके बैठ गए हैं उन शब्दों का बहिष्कार कैसे किया जा सकता है? *

---

* इस प्रकार के शब्दों की हमने एक सूची तैयार की है जिन्हें अपने गाँव की एक दम अपढ़ जनता के मुँह से नित्य के व्यवहार में आते हमने

और "विकेन्द्री-करण" द्वारा भिन्न-भिन्न बोलियों के साहित्य को खड़ा कर राष्ट्रीय-साहित्य-प्रतिभा को विच्छिन्न करके एक सर्व-व्यापक राष्ट्रीय-भाषा का विकास किस प्रकार हो पाएगा? समस्त बोलियों की सम्पत्ति को एकत्रित और कोश-रूप में संगृहीत कर खड़ी बोली में ढाल देने से ही "विकेन्द्री-करण" की सार्थकता होगी। भाषा-संस्कार के अपने इस मतको कार्य रूप में परिणत करने के लिए हमने इस नामकी ग्रंथ-माला के रूपमें कतिपय पुस्तकें तयार की हैं। *कादंबरी-परिचय* भाषा-संस्कार-ग्रन्थमाला का पहिला पुष्प है। इस ग्रन्थ-माला का दूसरा पुष्प है "रानी पद्मावती" जो जायसी के "पद्मावत" महा-काव्य के शब्दों और प्रयोगः को लेकर खड़ी बोली गद्य में लिखित प्रसिद्ध प्रेम कहानी है। और तीसरा पुष्प है "आज़ाद-कहानी"। उर्दू का 'फिसानए-आज़ाद" बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें उर्दू की जो लचक भरी कोमल चाल प्रकट हुई है वह अत्यंत लुभावनी और हिए में घर कर लेने वाली है। वह पूर्णतः विदेशी शब्दों के बुरके में घुटी हुई नहीं वरन् सरलाई की परिचित रेशमी ओढ़नी में झलकती हुई चलती है! "आज़ाद-कहानी" उक्त "फिसानए आज़ाद" की भाषा संबंधी सम्पत्ति को हिन्दी में ग्रहण कर लेने के उद्देश्य से ही तयार हुई है। अस्तु।

सुना है। इस सूची में कचहरी से लगाव रखने वाले शब्द नहीं हैं, उदाहरणार्थः—अजगैबी, अदना, अदावत, अबतर असराफ, आबरू, आरजा, आसनाई कजिया, कबुजा, कलक, कलिया, कुनह...इत्यादि। *कादम्बरी-परिचय* में जो अरबी—फारसी के तद्भव शब्द नहीं आए हैं उसका प्रधान कारण है बाण की भाषा जिसमें इन शब्दों को कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी है।

७

महाकवि बाणने जिस समाज और तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन किया है वह हमारे युग के लिए अब सपना के समान है! अब बाण नहीं रहे। न उनकी कादंबरी के नायक, न उसकी नायिकाएँ न वे अनुचर ही रहे! धरती और स्वर्ग का वह मिलन, मानवों और गंधर्वों का वह साहचर्य, मित्रों के वह ललकते हुए हृदय, पुरुष का वह विशाल पौरुष और प्रकृति की वह उभरती हुई जवानी आज एक भी न रहे। साहित्य की रुचि भी बदलती है। हाय रे क्रूर परिवर्तन! बाण के काव्य की वह उपमाएँ भी आज न रहीं। परन्तु परवर्ती संस्कृत के समस्त कवियों के अतिरिक्त विद्यापति, तुलसी, केशव आदि सब हिन्दी कवियों को बाण की आत्मा का प्रकाश मिला। मनोज्ञ के बाण के धावकों का वर्णन कविगण करते हैं। परवर्ती कोई भी कवि न होगा जिसने बाण की प्रतिभा के बाण के लगने से शिर न धुना हो। बाण शरीर से मरकर भी काव्यात्मा में अमर हैं। उनकी इस अमरता का गूढ़ रहस्य है!

उनकी अमरता संस्कृति की अमरता है! जिस अतीत का कादंबरी में चित्रण है उससे महाराज हर्ष का समय जितना भिन्न रहा होगा उससे कहीं अधिक भिन्न हमारा युग है। किन्तु इतना दीर्घ काल बीतने पर भी उन राजा-रानियों कुमार-कुमारियों, सेवक-सेविकाओं, मुनियों, गन्धर्वों, उनकी वेश-भूषा नगर, प्रासाद, आश्रमों, और वन-उपवनों आदि का वर्णन सुनकर हमें अनिर्वचनीय पुलकन जो होती है वह हमारा वही अलौकिक मोह है जिसे हम संस्कृति कहते हैं। मानव का यह मोह सनातन है, अमर है,

अनन्त है। यह मरणप्राय होते होते फिर जी उठता है! आज हमारी संस्कृति मरणासन्न होकर पुनः सचेष्ट हो रही है। यह शुभ लक्षण है। इससे राष्ट्र के उत्थान की शीघ्र ही संभावना जानी जाती है। वर्तमान सभ्यता की कृत्रिमता से हम आज खोखले हो गए हैं। बाण की कादंबरी पढ़कर जब हम अपने पुरखों की तत्कालीन संस्कृति में जो गढुआई थी उसका दर्शन करते हैं तब हम मनोव्यथा तथा ग्लानि में अपना मुँह नीचे कर लेते हैं। निकट भविष्य में अपनी प्राचीन संस्कृति से हमारा अतिशय अनुराग बढ़ेगा, यह ध्रुव है।

हमारी भाषा, वेश-भूषा, चाल-ढाल सब कुछ उस युग के ही समान हो जाए या हो जायगा यह हम नहीं कहते। पर चरित्र, आचरण, व्यवहार और व्यक्तित्व की जिस ऊँचाई पर वह लोग रहते थे, आकार और प्रकार चाहे जो भी हो, उस ऊँचाई में बसने की तीव्र अभिलाषा तथा क्षमता भारतीय जीवन में शीघ्र ही भरेगी हम इतना अवश्य जानते हैं। भले ही वह राजा और वह प्रजा फिर से न हो सकें। वह सम्राट्, उनके सिंहासन, नगर-नगर परिधान, वह पारिषद, वह पटरानियाँ, उनके वह आभरण व मणि-माणिक्य की पुतलियों जैसी वह परिचारिकाएँ, वह ऋषियों के शान्त आश्रम तथा गंधर्वों के सोने-रूपे के महल वाले वह दिव्य नगर, वह विद्यालय और भीलों के वनमें के वह अहेर आजके युग में फिर से दिखाई न दें किन्तु अपने इसी जीवन में अपने प्रतापी पुरखों के शौर्य तथा पौरुषका सुवर्ण हमें भरना ही होगा!

आज के जीवन में वासना की व्यापकता है, उस समाज में आमोद की मुख्यता थी। आज कामुकता की लहर अधिक वेग-

वती है. तब रूप-दर्शन और रूप-प्रदर्शन कामका प्रधान समाज था। इस समय प्राय: भोगलिप्सा व विलासिता कामके प्रथम और अंतिम चरण हैं। उस समय लावण्य-योजना और शृंगार सहृदयों के गले का हार थे! फीकापन, लुजलुजाहट, बनावट और झेंप सम्राट् कामदेव के बहुधा आज अनुचर हो रहे हैं, किन्तु तेज, दृढ़ता, संयम और लीला–विलास उस समय उनके सखा थे। संक्षेप में रूप और रति की हाट में उस समय हम सोना थे, आज मिट्टी हो गए हैं! आज इस बजार में तनिक चाहे हमारी आँख ऊपर उठे चाहे वाणी से हम कुछ कहें अथवा चाहे लेखनी ही से कुछ निकले सब में स्खलद्गति दृष्टिगोचर होती है। पर उस समाज के लोगों को कामुकता होती क्या है जैसे विदित ही नहीं था।

राजा तारापीड़ और रानी विलासवती को दीर्घ वय हो जाने पर भी संतान–सुख प्राप्त न होने से अत्यंत खेद रहा करता था। बहुत समय उपरांत देवताओं की कृपा से ऐसी शुभ घड़ी आई जिसमें एक दिन जब राजा तारापीड़ अपने भीतरी सभा-मंडप में बैठे थे कुलवर्धना नामकी रनिवास की दासी ने उनके पास जाकर कान में वह आनन्द-दायक समाचार धीरे-धीरे कहा जिसको सुनते ही राजाको रोमांच हो गया और आनंद से विह्वल हो उसने अपने शरीर के सब गहने उतार उतार कर कुलवर्धना को दे दिए। फिर सब नरपतियों को विदा कर वह मंत्री शुकनास से बोला—"मंत्री चलो, उठो! कुलवर्धना ने जो कहा है क्या वह सच है स्वयं देवी के पास चलकर इसका निश्चय करलें।"

वहाँ जाकर हर्ष के भारसे मंद हुए मनसे परिहास करते करते रानी से उसने पूछा—"देवि! शुकनास पूछते हैं कुलवर्धना

का कहना सच है क्या ?" रानी विलासवती ने आँखों को केवल नीचे झुका लिया और कुछ उत्तर न दिया किन्तु जब राजा ने बार बार आग्रह किया तब उसने कहा—"मैं कुछ नहीं जानती" और आँख की पुतलियों को तनिक तिरछी करके राजा को कुछ कपट क्रोध से देखा। तब अस्फुट हास्य से प्रकाशमान मुख से राजा ने कहा—"सुन्दरि ! यदि मेरे वचनों से तुम्हारी लज्जा बढ़ती है तो लो मैं चुप हूँ किन्तु नील कमलधारी चकवा-चकई के समान अपने स्तन-युग को तुम कैसे छिपाओगी ? अग्र भाग श्याम होने से ये, जिनके सिरे तमालपत्रों से ढँके हों ऐसे सुवर्ण के कलश के समान लग रहे हैं !"...तब इस प्रकार कहते हुए राजा से मुँह के भीतर हँसी छिपाकर शुकनास ने कहा—"महाराज ! रानी को क्यों कष्ट देते हैं ? वे इन बातों से लजाती हैं अतः कुलवर्धना के कहे हुए वृत्तांत की वार्ता बंद करें।"

हमारे साहित्य में क्या इस प्रकार के वर्णन आज हो सकते हैं ? हम तो कहते हैं हम में से अधिकांश ने कभी ऐसी रहन-सहन होने की कल्पना तक न की होगी और अनेकों को आज यह अश्लील जान पड़ेगा। क्यों न हो। जिस समाज में पुरुषों की सुघराई और स्त्रियों के लावण्य का सारा श्रेय सुन्दर 'सूट' सिलने वाले दरजियों और सोनारों तथा गांधियों को हो उस समाज के लोगों को पुरातन काल में प्रशस्त वक्षस्थल का पुरुषों के प्रदर्शन और उन्नत उरोज का स्त्रियों के अनाच्छादन में उल्लास की जो अलौकिक प्रेरणा निहित रहती थी उसकी कल्पना तक नहीं हो सकती। उस समाज में कुचों की उन्नति और पीनता का प्रदर्शन कामातुरता नहीं रूप-प्रवीणता माना जाता था कारण उस समाज में कुच विषय-वासना का वाहन न होकर

शील्य का पवित्र प्रतीक था! प्रियवर! देखें न, वास्तव में प्रदर्शन को हमारे पास कुछ है नहीं इसीलिए आज छुपावट हमारे लिए रूप-रक्षा का आधार है। किन्तु वास्तव में यह छुपावट काम संबंधी हमारे मानसिक चोर का प्रश्रय है। यह तो कहिए कुशल है जो पोर-पोर शरीर ढँकने का फैशन आज प्रचलित है नहीं तो सिला कपड़ा न पहिनने की पुरानी बान जो फिर से डालनी पड़े तो आज कितने ही सींकिया पहलवानों का लाज के मारे घर से निलकना बन्द हो जाय!

महाकवि बाण ने अपने समय में मानव-जीवन को जो अतिशय ऐश्वर्य-प्रधान और सुख-प्रधान रहा होगा केवल तद्वत् चित्रित ही नहीं किया अपितु उसे अत्यन्त विस्तीर्ण भी कर दिया। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से मानव-जीवन का जो विराट् आकार देखा वहाँ तक मानवता को पहुँचने में भले ही देर लगे, बाण ने सदा के लिए मानव-जीवन को ऊँचा उठा दिया। कालिदास ने मेघदूत की रचना द्वारा मानवता को आकाश में उड़ने की संभावना तक पहुँचाया था। उनका सपना बी·वीं शताब्दी में सच्चा हुआ। बाण ने मनुष्य की गंधर्व से सगाई तथा मनुष्य की चंद्रलोक की यात्रा की कल्पना करके विश्व में मानवता की यात्रा को और भी आगे की संभावना तक पहुँचाया। अभी उनका सपना सच्चा होने को रह गया है! इस बात में कालिदास के पश्चात् बाण का ही स्थान है।

कादंबरी-काव्य निश्चित रूप से ज्ञान-राशिका संचित कोश है, संस्कृति का अद्वितीय इतिहास है, तत्कालीन समाज की श्रेष्ठता की यह सजीव चित्रशाला है! यह ग्रन्थ व्यवहार-विधान का अक्षय भण्डार है। गांधर्व वैभव का मौलिक तथा

यथार्थ स्वरूप यहाँ विद्यमान है। लक्ष्मी, वरुण, मदन, हंस, कमल, किन्नर, गंधर्व सब के सब यहाँ अपने रंग में उभरे हुए हैं, किन्तु सुर-नर-मुनि-नाग-असुर-किन्नर सबकी अभूत पूर्व सभा में सबके ऊपर सिंहासनासीन सम्राट् मानों बाण ही है! वह मानों अपने हृदय रूप मथानी से श्रुति-स्मृति, काव्य-पुराणादि के ज्ञान रूप महोदधि का मन्थन करके पूर्व मन्थन काल में पूरा मन्थन न होने से छूट रहा कादंबरी काव्य रूप पंद्रहवाँ रत्न निकालने वाला देवेन्द्र हो! कादंबरी के कथारम्भ में प्रथमही वाक्य में जिस दूसरे इन्द्र राजा शूद्रक का वर्णन हुआ है काव्य-साम्राज्य में वह महाकवि बाण ही है। विदिशा नगरी में शूद्रक रहा या न रहा हो, काव्य-कादंबरी रूप विदिशा नगरी का शूद्रक बाण अवश्य है! मानो संपूर्ण साहित्य रूप भुवन की समस्त संपत्ति पर उसका ही अविछिन्न एक मात्र आधिपत्य हो। अन्य कविगण भावुकता के समुद्र में डूबते-उतराते हैं। बाण भावना और कल्पना के रत्नाकर में इसपार से उसपार और उसपार से इसपार अनंत बल से मदर्दति की भाँति विचरण करता है और अपनी सहस्रधा चालों का प्रदर्शन करता है जिनका परिगणन असम्भव है।

उनकी उत्प्रेक्षा कभी प्रजा को धर्मपरायणता के कारण कलिकाल के डर से भागे हुए सतयुग को किसी राजा के राज्य में निवास कराती है तो कभी मणिमय आंगन में पड़े हुए प्रतिबिंब के रूप में पृथ्वी द्वारा प्रेम पूर्वक उसके पति का आलिंगन कराती है! कभी वह गोरोचन से तिलक लगानेवाली किसी रमणी को देख पार्वती को महादेव के वेष के समान ही भीलनी का वेष धारण कराती है तो कभी ललना के गले में पड़ी मोतियों

की स्वच्छमाला को देख यमुना जानकर उससे मिलने के लिए गंगा का आगमन कराती है! कभी वृक्ष पर चढ़ी लता को देख पानी के बोझ से मंद मंद चलते हुए बादलों को क्षणभर वहाँ विराम करने को प्रेरित करती है! कभी फूले हुए कुमुदों को देख सेवा करने के लिए आकाश के तारागण को नीचे उतार लाती है! कभी ऊँचे सौध-शिखरों में सोई हुई सुन्दरी का मुख देख चंद्रमा को मणि भूमि पर लोटने के लिए विवश करती है! कभी आश्रम में घी की आहुति से ऊँची चढ़ती हुई धूम-लेखा द्वारा मुनियों के लिए स्वर्ग-मार्ग में सीढ़ियों का सेतु बाँधती है! और कभी किसी भुवन मोहिनी गांधर्व कुमारी की सखियों को देख एक लक्ष्मी से आनंदित विष्णु का गर्व दूर करने के लिए सैकड़ों लक्ष्मियों को उत्पन्न करती है तथा उन सखियों के विलास युक्त स्मित से प्रत्येक दिशा में सहस्रों चन्द्रों की वर्षा करती है!

३

कादंबरी का कथानक सर्वथा अद्भुत और विचित्र है। यह कथा अंत की ओर से आरंभ होकर राजा शूद्रक की सभा में विदिशा में समाप्त होती है। सारी की सारी कथा किसी के विनोदार्थ किसी के द्वारा कही जाती है इस कारण यह कथा वास्तविक अर्थ में कथा है। शूद्रक की सभा के उपरांत जो घटना है वह उपसंहार मात्र है। बाण अपनी ओर से केवल उतने का ही कथन करते हैं। वह उपसंहार वस्तुतः नाटक के अंत में कहा जाने वाला भरत-वाक्य ही है।

चांडाल-कन्या द्वारा लाया हुआ वैशंपायन सुआ, राजा शूद्रक

के समक्ष प्रथम अपने जीवन के उस अंश का जिसे उसने देखा है वर्णन करके वृक्ष से गिरकर अपने जावालि मुनि के आश्रम में पहुँचने पर, उनके मुँह से सुनी हुई युवराज चंद्रापीड़ के दिग्विजय के लिए अवंति से प्रस्थान होकर, आखेट में साथियों का साथ छूटने से किंपुरुष देश में गांधर्व कन्या तपस्विनी महाश्वेता के आश्रम में पहुँचने, तथा उसके मुँह से मुनिकुमार पुण्डरीक का उसपर मुग्ध होकर मरने का वर्णन सुनने और महाश्वेता के साथ हेमकूट में जाकर गांधर्व कुमारी कादंबरी भुवन मोहिनी को देख उसके अनुराग में मोहित होने की कहानी का वर्णन करता है और फिर दूसरे जन्म में चंद्रापीड़ का जो सखा वैशंपायन था, और चंद्रापीड़ के उज्जयिनी चले जाने पर महाश्वेता के आश्रम में पहुँच कर पहले जन्म के नेह के कारण बावला हो महाश्वेता के श्राप से भस्म होकर तिर्यग्योनि में पतित हुआ और जिसके वियोग में चन्द्रपीड़ ने भी वहाँ जाकर प्राण-विसर्जन किया था, वह पूर्व जन्म का पुण्डरीक ही वर्तमान जन्म में वह सुवा वैशम्पायन था, जाबालि मुनि के मुँह से यह सुनकर, वह किस प्रकार एक दिन महाश्वेता के दर्शन की लालसा से आश्रम से उड़ा और अन्त में चाण्डाल-कन्या के हाथ पड़ा, राजा शूद्रक से इसका वर्णन करता है, जिसे सुनकर राजा शूद्रक अन्त में उस चांडाल-कन्या को बुलाता है और वह, कथा के स्वर्ग के रहस्य-मय स्वर्ण-भवन की हीरे की कुञ्जी मानों उसके ही पास हो, आकर सारा रहस्य खोलती है और उसे सुनते ही राजा शूद्रक और वैशम्पायन सुआ दोनों ही अपना शरीर त्याग करके, शूद्रक अपने पूर्व के चन्द्रापीड़ के शरीर में, आकाशवाणी होने से जिसकी दाह-क्रिया नहीं हुई थी जीवित होकर, तथा पुण्डरीक आकाश में चन्द्र-

लोक से, जहाँ उसका शव सुरक्षित धरा हुआ था, उतर कर दोनों अपनी-अपनी प्रियाओं से, जो इस दीर्घ वियोग काल में उनकी स्मृति की पूजा कर रही थीं, विवाहित हो परम सुख की प्राप्ति करते हैं।

अति संक्षेप में एक वाक्य में कादम्बरी का यही कथानक है। इस कथा का अन्तिम छोर मानव लोक में आरम्भ होता है। इसका मध्यभाग गांधर्व लोक में और आरंभिक अंश स्वर्ग लोक में सम्बन्धित है। कथा की परिसमाप्ति पर इसकी गूँज मानव की अन्तस्संज्ञा रूप पाताल लोक में फैलती है। इस प्रकार इस कथानक की सुर-नर-मुनि-नाग-असुर सब लोकों में व्याप्ति है। कथा आकाश से उतरती है, पृथ्वीतल पर स्थित होती है और अन्त में पुन: स्वर्ग लोक में चली जाती है—अन्तस्संज्ञा में स्थित कुभावना के पाताल से सुचाल के स्वर्ग में चली जाती है! सुर-नर-नाग-गन्धर्व सभी कोटि के जीवों को एक कथा-सूत्र में एक ही घनिष्ठ सम्बन्ध—प्रेम—में बाँधकर महाकवि ने अपनी भारती के विराट साम्राज्य को शुभ सार्वभौमता प्रकाशित की है। कदली गाभ के अन्तिम ऊपरी भाग से आरम्भ करके एक-एक कर अनेक पटल को पार करने पर घनसार की प्राप्ति होती है। ऐसा ही कादम्बरी का कथानक है। इसमें कथा के भीतर कथा और फिर कथा के भीतर कथा का विधान है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर एक और अद्भुत बात प्राप्त होती है। जैसे कदली-स्तम्भ में पटल लगते अलग-अलग और अनेक तो हैं किन्तु होता है वह अनेक नहीं एक और अविच्छिन्न ही है। हाँ भीतरी अन्तिम छोर बाहर वाले की अपेक्षा कोमल अधिक होता है। कादम्बरी-कथानक में भी इसी प्रकार की

अविच्छिन्नता और उत्तरोत्तर कोमलता व्याप्त है। वर्तमान काल में कहानी कही न जाकर लिखी जाती है अतः पहिले की भाँति कहानियों के अब कथावाचक न होकर लेखक होते हैं जो पाठकों के पठनार्थ कहानियाँ लिखते और पत्रों में प्रकाशित करते है। आधुनिक युग में कहानियों में वर्णना अधिक रहती है नाटकत्व कम। कथा की यह प्रेरणा इस युग के कथाकार के हाथ में यदि यह कथानक पड़ता तो बाण से नितान्त भिन्न इसके क्रम का सृजन कराती। इस वर्तमान लिखित क्रम के निम्नलिखित एक रूप में हम यह कहानी प्रस्तुत करते हैं:—

बहुत ही प्राचीन युग की बात है एक दिवस महामुनि श्वेत-केतु के लक्ष्मी से जायमान परम सौंदर्यवान तेजस्वी पुत्र पुंडरीक अपने प्रियसखा कपिंजल के साथ जीव लोक को आनन्द-दायक चैत्रमास के दिन किंपुरुष देश में गन्धर्वराज चित्ररथ के अच्छोद सरोवर में स्नान करने स्वर्ग लोक से आए। उनके कान में नंदन-वन-देवी द्वारा प्रदान की हुई पारिजात-पुष्प की मंजरी उरसी हुई थी जिसकी गन्ध अखिल वन में सर्वत्र व्याप्त हो रही थी। उसी समय गन्धर्वराज हंस की पुत्री महाश्वेता भी अपनी माता के संग वहाँ स्नानार्थ आई हुई थी। उस कुसुम-मंजरी की गन्ध से मत्त हो वह अपनी सखियों से बिछुड़ वन की कुञ्जों में जब विच-रण कर रही थी मुनिकुमार पुंडरीक को उसने देखा। मुनिकुमार पुण्डरीक ने भी उसको देखा। तब उसके कुतूहल को शान्त करने के लिए उस कुसुम-मंजरी को अपने कान से उतार कर उन्होंने महाश्वेता के कान में खोस दिया। किन्तु कुतूहल शान्त करने के इस पावन उद्योग ने दो हृदयों में प्रेम की आग लगा दी। उसी समय उन दोनों ने एक दूसरे को चुपचाप अपना हृदय और जीवन

अर्पण कर दिया। गन्धर्व-कुमारी ज्यों-त्यों सखियों की सहायता से अपने प्रासाद को लौट गई किन्तु पुण्डरीक उस वन को छोड़कर न जा सके!

सन्ध्या होते होते पुण्डरीक की चित्तवृत्ति नितांत पराधीन हो गई और तब उनकी अतिशय विह्वलता देख उनके मित्र कपिंजल महाश्वेता के पास उनका प्रेम-पत्र लेकर गए। महाश्वेता रात होने पर अपने प्रियतम पुंडरीक का दर्शन करने वन में आई किन्तु वहाँ उसके पहुँचने के पूर्व ही पुण्डरीक विरहाग्नि के कारण निष्प्राण हो चुके थे। यह महा अनर्थ देख महाश्वेता चेतना-कुंठित हो मूर्छित हो गई। फिर चेत आने पर उसने अपनी सखी से चिता बनाने के लिए कहा। इतने में स्वर्ग से एक दिव्य पुरुष ने उतर कर पुण्डरीक के शरीर को पकड़ लिया और कहा—"तुम्हारे इस प्राण-प्रिय मुनिकुमार से तुम्हारा फिर समागम होगा।" महाश्वेता को शरीर धारण किए रहने की आज्ञा सहित यह आश्वासन दे पुण्डरीक का शरीर लेकर उसने आकाश में गमन किया। महाश्वेता अपने पिता के प्रासाद में लौटकर नहीं गई। अपने प्रियतम पुण्डरीक की माला, वल्कल-वसन तथा कमण्डलु लेकर वह जोगिन बन गई और वहीं आश्रम करके एक गुफा में रहने लगी।

अनेक वर्ष बीत गए। इस बीच उज्जयिनी में राजा तारापीड़ के महा प्रतापी पुत्र चन्द्रापीड़ उत्पन्न हुआ। वयस्क होकर उसने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और क्रमशः सब देशों को जीतते अपने सखा मन्त्री शुकनास के पुत्र वैशम्पायन सहित विशाल वाहिनी लिए हुए वह उत्तर में कैलास पर्वत के समीप जा पहुँचा। उसकी थकी हुई सेना विश्राम करने के लिए वहीं रुक गई। एक दिन युवराज चन्द्रापीड़ अपने अश्व इन्द्रायुध पर बैठकर आखेट

के लिए निकला। वन में किन्नरों के एक जोड़े को भ्रमण करते देख उसे पकड़ने की इच्छा से वह आगे बढ़ा और दिन-भर उनका पीछा करता करता बहुत दूर जा निकला। वहाँ वह दोनों किन्नर भागकर पर्वत पर चढ़ अदृश्य हो गए और युवराज उदास हो थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसे नींद आ गई और तन्द्रावस्था में ही उसने किसी दिव्य-गान की गमक सुनी। फिर उस स्वर का अनुसन्धान करते करते वह महाश्वेता के आश्रम में जा पहुँचा। महाश्वेता ने उसका स्वागत किया और बहुत सौजन्य-सहित सत्कार किया। तब युवराज ने उसके स्नेह में आत्मीयता का अनुभव करके उसके जीवन-वृत्तांत को जानने की इच्छा प्रकट की। युवराज के बराबर आग्रह-पूर्वक पूछने पर महाश्वेता ने अपनी वह करुणाभरी प्रेम-कहानी कह सुनाई जिसे सुनकर युवराज बहुत विकल हुआ।

प्रातःकाल महाश्वेता की छाया की भाँति साथ रहनेवाली प्रिय सखी और परिचारिका तरलिका जिसे उसने अपनी प्राण-प्रिया सखी, गन्धर्वराज चित्ररथ की एक मात्रा कन्या गन्धर्व-कुमारी कादम्बरी भुवन-मोहिनी के पास जिससे माता-पिता दुःखी न हों ऐसा काम करने के लिए समझाने को भेजा था हेमकूट से लौटकर आई। जब तक उसकी सखी महाश्वेता उस दशा में रहेगी तब तक वह भी विवाह न करेगी ऐसी कादम्बरी ने प्रतिज्ञा की थी जिससे उसके माता-पिता बहुत दुखी थे।

तरलिका के असफल हो लौट आने पर महाश्वेता स्वयं कादम्बरी को समझाने के लिए गई और आग्रह-सहित चन्द्रापीड़ को भी साथ लेती गई। वहाँ एक दिन और एक रात्रि वैभव और सौंदर्य के राज्य में बसकर युवराज चन्द्रापीड़ ने अपना हृदय खो

दिया और बदले में किसी का खोया हृदय लेकर कादम्बरी की अनुमति सहित लौटकर महाश्वेता के आश्रम में आया। वहाँ इन्द्रायुध की टापों का अनुसरण करती हुई उसकी सेना अच्छोद सरोवर के तट पर आ पड़ी थी यह उसने देखा। फिर पिता का पत्र पाकर वैशम्पायन को पीछे सेना लेकर आने की आज्ञा दे वह उज्जयिनी चला आया। उसके आगमन से समस्त राज-परिवार में आनन्द का नद लहरा उठा किंतु स्वयं राजकुमार का हृदय अशांत था। सब भाँति सम्पन्न रहकर भी वह कादम्बरी के जीवन सफल करनेवाले दर्शन की पुनः पुनः अभिलाषा करता हुआ सर्वथा एकाएक भस्म न करनेवाली कामाग्नि से भीतर और बाहर उबल उबलकर दिन-रात सूखने लगा।

उधर चन्द्रापीड़ के चले जाने पर वैशम्पायन एक दिन महाश्वेता के आश्रम में गया तो वहाँ पहुँचते ही न जाने किस पुरातन प्रेरणा से बेसुध हो गया। महाश्वेता की प्रीति में विभोर हो वह हतबुद्धि-सा वहीं भटक भटककर विरस गया। तब दूतों ने अवन्ति जाकर उसकी इस मानसिक शिथिलता का सम्वाद दिया जिसे पाते ही समस्त राज-परिवार विकल हो उठा और चन्द्रापीड़ ने थोड़ी सी सेना लेकर उस वर्षागम काल में ही वैशम्पायन को लिवा आने के लिए प्रस्थान किया और बराबर गमन करता वह महाश्वेता के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर वैशम्पायन की कामुकता के कारण कुपिता महाश्वेता के मुँह से उसके शापित हो मरने का दुःखद समाचार उसने सुना। उसे सुनते ही वह निष्प्राण हो गया। बिचारी कादम्बरी को राजकुमार के आगमन का समाचार मिल चुका था। झनझनाते नूपुरों और खनखनाती मेखला वाली कादम्बरी देखनेवालों को कामदेव की

सेना का भ्रम कराती अपने प्राण-जीवन-धन के दर्शन के लिए तलफती हुई वहाँ आई। किन्तु, हाय! यह क्या? अपने हृदय-वल्लभ की उसने वह दशा देखी। तब उसने सती होने का निश्चय कर चिता रचने की आज्ञा दी। उसी समय आकाशवाणी हुई जिससे वैशम्पायन ही महाश्वेता का प्राणप्रिय पुण्डरीक था और उसीके श्राप से चन्द्रमा को भी वियोग का दुःख भोगने के लिए मनुष्य रूप में चन्द्रापीड़ होकर अवतरित होना पड़ा था यह बात उन्हें ज्ञात हुई। यह सुनते ही महाश्वेता ने अपने प्रियतम के दूसरी बार मरने पर विलाप किया। दिव्यवाणी के आज्ञानुसार पुनर्मिलन के आश्वासन पर कादम्बरी ने निष्प्राण होने पर भी प्रफुल्ल चन्द्रापीड़ के शरीर को सँजो रखा।

जब यह दुःखद तथा असम्भावित समाचार उज्जयिनी में पहुँचा तब राजा तारापीड़, रानी विलासवती, वैशम्पायन के पिता शुकनास तथा माता मनोरमा उस आश्रम में पहुँचे और आकाश-वाणी के अनुसार चन्द्रापीड़ का शरीर अम्लान पाकर वानप्रस्थी होकर वहीं रहने लगे।

इधर महाश्वेता के श्राप से तिर्यग्योनि में पड़कर वैशंपायन सुवा हुआ और एक दिन अहेरी द्वारा वृद्ध पिता के मारे जानेपर उसकी छाती में चिपक कर वह ऊँचे शाल्मली वृक्ष के नीचे गिरा। वहाँ उसे मरणासन्न अवस्था में पाकर जाबालि मुनि ने सब शिष्यों से उसके पूर्व जन्मों की समस्त कहानी कही जिसे सुनकर पुण्डरीकात्मक वैशंपायन सुए को पूर्व की सब घटनाओं का स्मरण हो आया। अब वह महाश्वेता का दर्शन करने के लिए अधीर हो उठा और एक दिन चुपचाप आश्रम से उड़ भागा। मार्ग में उसे किसी चांडाल ने पकड़ लिया और अपने

चौधुरी की कन्या के पास पहुंचा दिया। वह चांडाल कन्या उस अद्भुत पंडित सुए को लेकर विदिशा के महाप्रतापी राजा शूद्रक की सभा में गई। उसकी वचन-शक्ति से प्रभावित हो राजा शूद्रक ने उसकी जीवन-कथा सुनने की इच्छा प्रकट की। वैशंपायन ने अपने जन्म से लेकर जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का सारा वृत्तान्त और जाबालि से जो कुछ सुना था उसका समस्त विवरण कथन किया। तब राजा शूद्रक ने चांडाल कन्या का रहस्य जानने की इच्छा से उसे बुलाया। उसने आकर शूद्रक तथा वैशंपायन को अपना और उनका वास्तविक परिचय दिया। वह पुण्डरीक की माता लक्ष्मी थी। निदान चंद्रापीड़ात्मक शूद्रक तथा पुण्डरीकात्मक वैशंपायन दोनों के शाप का अन्त निकट होने का आश्वासन दे अपने झनझनाते गहनों के स्वर से अन्तरिक्ष को क्षुब्ध करती वह पृथ्वी से झट आकाश में उड़ गई!

शाप के अन्त का समय आ गया था। लक्ष्मी का वचन सुनते ही शूद्रक को भी अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया और वह तथा वैशंपायन दोनों ही अपने पूर्व रूप में होकर सुख पूर्वक रहने के लिए अपने वर्तमान शरीर को त्यागने के लिए अधीर हो उठे। थोड़ी देर में दोनों मृत हो ही गए! उस समय चैतमास पूर्णतः आरंम्भ हो गया था और सरस पल्लव युक्त लताओं को नाचना सिखाने में चतुर दक्षिण पवन बहने लगा था। उसी समय कादंबरी ने चन्द्रापीड़ का आलिंगन किया और चन्द्रापीड़ की आँखें खुल गईं। तत्काल पुण्डरीक भी कपिंजल का हाथ पकड़े आकाश-मार्ग से उतरा। शीघ्र ही बिछुड़े हुए स्नेही गले से गले मिले और उनके कुटुम्बियों तथा परिजनों ने आनन्दोत्सव मनाए!

आधुनिक युग की वर्णन-शैली के अनुसार कादंबरी-कथा का लगभग इसी प्रकार का कोई स्वरूप होगा। किन्तु बाण द्वारा संस्कृत उक्त प्राचीन कथा-प्रबन्ध के सामने उपर्युक्त सीधी-सपाट वर्णना छूछी और अनाकर्षक होगी। सच पूछिए तो ऊपर दिया हुआ वर्णन कथा का वास्तविक रूप ही नहीं है। इस हेतु हम कादंबरी के कथानुबन्ध को अद्वितीय समझते हैं। इससे भिन्न कोई भी क्रम उपयुक्त नहीं हो सकता था। क्या बाण ने कथा को भाषा की अनुवर्तिनी नहीं बनाया, यह प्रश्न लाकर कुछ लोगों ने कादंबरी-काव्य की आलोचना की है। हमारे मत में यह प्रश्न ही विपरीत है। कहानियों का आधुनिक स्वरूप (जिसमें कहानी के कथित न होकर लिखित होने से भाषा का महत्व निखर नहीं पाता) ध्यान में रखने से ही यह प्रश्न सामने आता है। कहानी अपने कथित स्वरूप में भाषा की अनुवर्तिनी हुए बिना रह ही नहीं सकती। प्रायः वृद्ध जन जैसे दादी या नानी कहानियों के कथावाचक प्रसिद्ध रहे हैं। वृद्धों को रात में देर में नींद आती है। उधर श्रोताओं को भी सन्ध्या बीत जाने पर अधिक अवकाश रहता है। इसी कारण रात्रि का प्रथम प्रहर ही कहानियाँ कहने का उपयुक्त समय होता है। इन कहानियों के श्रोता प्रायः बालक होते हैं इस कारण वृद्धों को बालकों की भाषा में कहानियाँ कहनी पड़ती हैं।

राजा की अंतरंग-सभा भी कहानियों के कथन का एक स्थल होता रहा होगा। हम साधारण अवसरों पर के लिए अपने कथन को मनही मन पहिले कई बार घोखते हैं। कुछ लोग तो लेख-बद्ध करके रट ही डालते हैं। अतः राज-सभा में बोलने वाले को पंडितों की भाषा बोलनी पड़ती है। इस कारण वहाँ

भाषा की और भी अधिक सतर्कता अपेक्षित रहती है। राज-सभा में मुँह खोलने वाले को अपनी शक्ति और प्रवीणता अपने कथन के प्रारंभिक अंश को प्रभावपूर्ण बनाने में लगानी पड़ती है। यदि वह इस प्रयत्न में सफल हुआ तो आगे बढ़ सकता है अन्यथा उसे उपहासास्पद बन कर मुँह नीचा करना पड़ता है और अपने कथन के अंत तक वह पहुँच ही नहीं पाता। इसके अतिरिक्त कादंबरी उन आधुनिक उपन्यासों की भाँति नहीं है जिन्हें हम अपने शयानगार में तकिए के नीचे शयन करके पढ़ने के लिए रखते हैं या अटैची में रेलगाड़ी के डिब्बे में पढ़ने के लिए रख छोड़ते हैं। राजा की अन्तरंग सभा के मनोरंजनार्थ कई बार में पढ़कर सबको सुनाने के लिए यह लिखी या न लिखी गई हो परन्तु उपयोग इसका इस प्रकार अवश्य होता था। आधुनिक काल में पर्दे के ऊपर अन्धकार में जो छाया-चित्र होते हैं राजाओं के स्वर्ण-दीपों की जगर-मगर और उल्काओं की टिमटिमाहट में श्रोताओं के मानस-पटल के प्रकाश में वह कादंबरी के एक एक दृश्य होते थे!

कादंबरी की समस्त कथा कथा-वाचकों द्वारा ही कही गई है। इसमें प्रातः काल तथा रात्रि की घटनाएँ नहीं के समान हैं। प्रायः सभी प्रमुख घटनाएँ अपराह्न अथवा सन्ध्या की हैं। अन्तरंग राज-सभा का यही समय है। यह विशेष ध्यान देने की बात है और हमारे तर्क को पुष्ट करती है। एक बात और। कादंबरी की मूल कथा बाण भट्ट की कल्पना की उपज नहीं है। यह कथानक गुणाढ्य की वृहत्कथा से प्राप्त हुआ है जो आज से लगभग दो सहस्र वर्ष और बाण से लगभग छः सौ वर्ष पूर्व का ग्रन्थ है। ऐसे दीर्घकाल तक कथा के क्रम की

यह अविच्छिन्नता भी कथा-शैली की यही परंपरा प्रमाणित करती है।

लोक-प्रसिद्ध पुरातन कथा के ग्रहण करने से बाण की प्रतिभा को किसी प्रकार की घटी नहीं आई है। उसमें उन्होंने सहस्रों मौलिक रंग जो भरे हैं। पुरातन कथा की ग्राहिता उनकी लोक-रुचि-संग्रह की प्रवृत्ति का परिचायक है। वह केवल राजाओ और राज सभाओं ही के नहीं अपितु मनुष्य जीवन के साधारण रूपों के भी सूक्ष्म निरीक्षक थे। उन्होंने अपने समय के राज दरबारों तथा नागरिकों की रहन सहन का बड़ा ही आकर्षक चित्र लिखा है। वन में तपस्वियों का शांतिमय जीवन, रानी विलास-वती की पुत्र के लिए तपश्चर्या, कपिंजल की मित्र के लिए प्राण अर्पण कर देने की तत्परता आदि के वर्णन अत्यंत मनोमोहक हैं। विन्ध्याचल पर्वत के विशाल शाल्मली वृक्ष के कोटर में रहने वाले वैशंपायन सुवा के वृद्ध पिता के जीवनांत का वर्णन करने में कवि की करुणा कुहुक उठी है! उस स्थल में मानों बाण भट्ट ने स्वयं अपने पिता की मृत्यु तथा उसके पश्चात् के अपने बाल्य-जीवन के निस्साहाय्य का ही करुणाजनक वर्णन किया हो!

चन्द्रापीड़ ने जो महाश्वेता का समाश्वासन किया है उससे उस काल में प्रजा की चित्तवृत्ति सती के विरुद्ध हो चली थी यह ज्ञात होता है। भोजन में छुआ छूत का भी उल्लेख हुआ है। राजाओं की सभा में सबका प्रवेश था और वे सबकी सुनते थे तथा प्रजा सुख-दुख के अवसरों में अपने शासक के साथ पूरी सहानुभूति बरतती थी। रात्रि के अन्त में देखे गए स्वप्नों का सच्चा होना, पुत्र प्राप्ति के लिए नाग-कुल के सरोवरों में स्नान करना, सरसों के दाने और घी बालक के मुँह में रखना आदि

अन्ध विश्वासों का भी उन दिनों प्रचार था। इन समस्त वर्णनों में छोटी से छोटी बात भी नहीं छूटने पाई है।

बाण ने मनुष्य-जीवन की स्थिति के सब रूपों का वर्णन बड़ी तत्परता से किया है। कादंबरी भुवन मोहिनी की कमनीयता और मनः सौंदर्य, महाश्वेता की तपस्या और निष्ठा, तारापीड़ की विशालहृदयता, विलासवती का वात्सल्य, शुकनास की बुद्धिशीलता, चन्द्रापीड़ की मित्रवत्सलता हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाती है। शुकनास ने चन्द्रापीड़ को राजनीति की जो शिक्षा दी है वह अत्यंत रहस्य पूर्ण और मार्मिक है और हर देश तथा काल के राजा के लिए आदर्श है। परन्तु इन सब रंगों में गहरा तथा मूल्यवान जो रंग बाण ने कादंबरी में भरा है वह प्रेम का रंग है। इसमें प्रेम की उस अपार महिमा का दर्शन होता है जिसके शासन-सूत्र में पड़कर जीव को मर मर कर भी पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है! प्रेम की यह महिमा मनो कर्म के कठोर बन्धन को भी शीघ्र कटजाने की आज्ञा देती है। इसमें प्रेम के उस बन्धन का विधान हुआ है जो आरम्भ में ऐसा महान् अभिशाप होता है जिसके अन्तर्गत अनेक लघु अभिशाप भरे रहते हैं किन्तु अन्त में वह स्वर्ग में ले जाकर प्रतिष्ठित करता है!

इस ग्रन्थरत्न में काम और वासना का जो उद्दाम वेग दिखलाया गया है उसके अनुरूप ही प्रेम-तपस्या की तपन का भी विधान किया गया है। मुनि कुमार को संयम के स्थान में ऐसी कामुकता का आचरण करने क लिए कठोर दण्ड पाना दिखाकर मानवता को एक महान् चेतावनी दी गई है। अपुरुव सौंदर्य शाली पुण्डरीक को ऊँचे वृक्ष से गिरे आसन्न-मरण, गर्मी के

कारण हूक-हूक करते पंख विहीन पखेरू वैशंपायन के रूप में परिवर्तित कर, कामावेश के कारण जाति और धर्म से च्युत हो मनुष्य स्वास्थ्य से खंडित और भिन्न शरीर धारी हो कहाँ तक गिर सकता है इसका दर्शन कराया है !

बाण सौंदर्य और श्रृङ्गार के सम्राट् थे किंतु यदि वह सौंदर्य ही में डूबे रहे होते तो ऐसे आदर्श सौंदर्य का सृजन न कर पाते। वह रूप के दोनों अंगों—सुन्दर तथा असुन्दर—का दर्शन करने वाले थे; इतनी गहराई में डूबकर जहाँ से असुन्दर में भी महासौंदर्य की सुवर्ण किरणों की इंगिति होती है। मानो किसी अन्धेरी लम्बी रात्रि भर किसी वृहत् असुन्दर स्वप्न को देखते देखते प्रभात में अचानक आँख खुलते ही उनके समक्ष महासौंदर्य का रत्नाकर लहराता दीखने लगा हो और उनकी आँख में चारों ओर सब सुवर्ण ही सुवर्ण हो गया हो। संभवतः भाषा का यह महत् मंडान इसीलिए बाँधा गया हो जिससे कम ही लोग जो उपयुक्त अनुभव तथा अंतर्दृष्टि रखते हों इस रहस्य को भाँप सकें। अतः यह ग्रन्थ सबके संबंध में कवि के निजी मतों का संग्रह न होकर किसी एक या चुने हुए कुछ लोगों को बनाने या बिगाड़ने का अदृष्ट लिए हुए मानों कवि का हृदय ही है ! इसी निजत्व के कारण इसकी अंतर्निहित शिक्षा आत्मा के अणु-अणु में घर कर के बैठ जाती है। कौन जाने कवि ने अपने पुत्र ही के लिए इसमें अपने जीवन के कटु अनुभवों का संग्रह किया हो, सुन्दर तथा महत् कलेवर में जीवन की कटुता को संचित किया हो, अमृत-रस में त्रिफला के काषाय को छिपा दिया हो ! उत्तरार्ध में पुत्र की निजी भावुकता से पूर्वार्ध में पिता द्वारा कुछ व्यक्तिगत संपर्क अवश्य है इसका संदेह भी होता है।
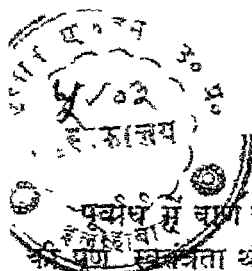
पूर्वार्ध में बाण को अपनी शक्ति तथा रुचि के अनुसार तैरने की पूर्ण स्वतंत्रता थी किंतु उत्तरार्ध में सीमाओं का बंधन था और बहुत कुछ अंधकार-अन्वेषण था। उत्तरार्ध में पूर्वार्ध जैसी अधिक मनोवैज्ञानिक नाटकीय परिस्थितियाँ भी न थीं। फिर भी समर्थ पिता के योग्य पुत्र पुलिन भट्ट को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। भाषा पर पुलिन का बाण जैसा अधिकार न था। उत्तरार्ध की प्रार्थना में उसने कहा भी है:—"पृथ्वी पर छोटी-छोटी नदियाँ भी गंगा में मिलकर तन्मय हो स्फीत हुई समुद्र में जा मिलती हैं। मैं भी समुद्र तक पहुँचने वाले अपने पिता के वचनों के प्रवाह में कथा पूरी करने के लिए अपनी वाणी को मिलाता हूँ।" किन्तु सहृदयता पुलिन में कम न थी और प्रतिभा संभवतः उसमें अधिक थी। मनुष्य के मन में प्रवेश करने की उसकी दैवी प्रतिभा अद्वितीय थी। बाण की वस्तुओं के रूप और आकार के विराट् जगत में अंगुल-अंगुल नाप डालने की शक्ति अधिक थी। संभवतः भावुक जगत में प्राणियों के मन के अध्ययन में पुलिन बहुत रमा रहता होगा और उसके पिता को इससे शंका होती रही होगी। किन्तु पुत्र का उत्तरार्ध को अत्यंत सुघराई और सफलता सहित समाप्त करना पिता और पुत्र दोनों के जीवन के उद्देश्य को पूर्ण सफल तथा सार्थक करता है!

कादम्बरी-कथानक में तीन प्रसंग ऐसे हैं जिनकी ओर आलोचक का ध्यान जा सकता है। पहिला आक्षेप सुए के मानवोचित भाषण तथा उत्तर-प्रत्युत्तर की शक्ति के सम्बन्ध में हो सकता है। बाण द्वारा कादम्बरी की रचना के पूर्व भी इसका कथानक जिसमें "शास्त्रगंज" नामक अद्भुत सुए का वर्णन है प्रचलित था और बाण ने उसका संस्कार करके ग्रहण कर लिया। जातक कथाओं

में भी ऐसा ज्ञान और अद्भुत-वाणी-शक्ति धारण करनेवाले पक्षियों का वर्णन मिलता है। जायसी ने "पद्मावत" में हीरामन सुए की बुद्धिमत्ता और ज्ञान का विस्तृत वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत पुराण के प्रणेता श्री शुकदेव मुनि का भी उल्लेख किया जा सकता है। सुग्गे की सुघर नाक पुरातन युग से ही ज्ञान का रूपक मानी गई है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार हिमालय के पार स्वर्ग की कल्पना उस युग के भारत की हिमा-लयोल्लंघन थी, तथा आकाश में स्वर्ग की कल्पना राष्ट्र की आकाश-विचरण की बलवती इच्छा का आलंकारिक प्रतीक रहा है, उसी प्रकार ऐसे ज्ञानी सुग्गे की साहित्य में उद्भावना पशु-पक्षियों तक से भावों के आदान-प्रदान करने तथा मानवता की सीमा में जीव-मात्र को सम्मिलित करने की भारतीय जनता की पुरातन काल से चली आ रही बलवती इच्छा का आलंकारिक प्रतीक है। इसे इस रूप में समझने से इस आक्षेप का परिहार हो सकता है।

दूसरा आक्षेप पुण्डरीक-महाश्वेता तथा चन्द्रापीड़-कादम्बरी के वय के सम्बन्ध में हो सकता है। जिस समय पुण्डरीक का शरीर-पात हुआ था उस समय यदि वह कम से कम १६ वर्ष का और महाश्वेता चौदह वर्ष की थी तो फिर से पुण्डरीक के आकाश से अवतरण करने के समय महाश्वेता कम से कम ४६ वर्ष की रही होगी क्योंकि पुण्डरीक के शरीर-पात के पश्चात् चन्द्रापीड़ का और चन्द्रापीड़ के प्राण-विसर्जन के उपरांत राजा शूद्रक का जन्म हुआ था। महाश्वेता के आश्रम में प्राण-विसर्जन के समय चन्द्रापीड़ की आयु तथा विदिशा में मरण के समय शूद्रक की आयु भी कम से कम १६ वर्ष की तो रही ही होगी। किंतु पुण्डरीक आकाश से वैसा ही उतरा था जैसा वह अच्छोद

सरोवर पर महाश्वेता के प्रथम मिलन के समय था। अर्थात् पुनर्मिलन के समय पुण्डरीक १६ वर्ष का और महाश्वेता ४६ वर्ष की थी। चन्द्रापीड़ और कादम्बरी के वय में भी कम से कम १६ वर्ष का अन्तर होना ही चाहिए। हाँ इस सम्बन्ध में यदि गांधर्व-कुमारियों के अक्षय-यौवन की कल्पना कर ली जाए तो इस आक्षेप का निवारण हो सकता है। किन्तु इस अन्तर के सत्य होने से भी कुछ हानि नहीं है कारण हृदय की लगन वय-विभेद को नहीं गिनती। महाश्वेता तथा कादम्बरी को यौवन की सीढ़ी पर उतरती पाकर भी पुंडरीक तथा चन्द्रापीड़ का प्रणय ज्यों का त्यों बना रहा इससे उनके अलौकिक प्रेम के महत्व में अभिवृद्धि होती है। एक और बात भी है। सच पूछें तो कथामृत-प्रवाह में किसी प्रकार भी अवरोध होकर यह विचार कभी आता नहीं है और न किसी का इस ओर ध्यान ही होता है।

तीसरा आक्षेप गम्भीर है। महाश्वेता ने वैशम्पायन को शापाग्नि में भस्म करने के पश्चात् आश्रम में चन्द्रापीड़ के आने पर जब उसका वृत्तांत कहा उस समय वैशम्पायन की आकृति चन्द्रापीड़ जैसी उसने बतलाई थी। अतः कवि की दृष्टि में वैशम्पायन की आकृति निश्चय ही पुण्डरीक से भिन्न थी नहीं तो उस स्थल पर उसने (कवि ने) महाश्वेता की मानसिक उलझन का अवश्य वर्णन किया होता। अतः चन्द्रापीड़ के पुनर्जीवित होने से राजा तारापीड़ और रानी विलासवती का जैसा परितोष हुआ वैसा मन्त्री शुकनास और देवी मनोरमा का नहीं हुआ होगा कारण उनका वैशम्पायन नहीं लौटा था और वैशम्पायन तथा पुण्डरीक की आकृति में समानता नहीं थी। यदि पुलिन भट्ट वैशम्पायन को चन्द्रापीड़ की अनुहारि न कहकर उसे पुण्डरीक

की ही आकृति बतलाते और उस प्रसंग में महाश्वेता के संभ्रम का वर्णन कर देते तो यह टूट न आने पाती और इस बात से कथा-सौंदर्य में कुछ वृद्धि भी हो जाती। हमारे मत में इस अद्भुत रहस्यमय कथानक में एकमात्र त्रुटि यही है।

जान पड़ता है बाण की मृत्यु से उनकी वाणी ही की भाँति पृथ्वी पर कादम्बरी की मनोहर कथा का तारतम्य जिस पूर्वार्ध तक टूट गया था उसके आगे उत्तरार्ध की रचना पुलिन ने देर में आरम्भ की और सम्भवतः उनके जीवन का अधिकांश व्यतीत हो जाने तक उसकी रचना होती रही। इस बीच कादम्बरी का पूर्वार्ध पण्डित मण्डली में प्रतिष्ठित हो गया था और सम्भवतः लिखित रूप में आने के पूर्व ही उत्तरार्ध की कथा मौखिक रूप में विख्यात हो चुकी थी। अतः उत्तरार्ध के लिखे जाने के पूर्व ही पूर्वाध के पठन तथा उत्तरार्ध के मौखिक कथन की परम्परा चल पड़ी होगी। अतः उत्तरार्ध को न स्वयं पुलिन ने ही सूक्ष्म दृष्टि से मनन किया न विद्वत् मंडली ने ही इसकी गूढ़ आलोचना की जिससे इस त्रुटिका परिमार्जन हो नहीं सका। शालाओं में आज तक कादंबरी के पूर्वार्ध के ही अध्ययन-अध्यापन की वही परंपरा चली जा रही है। जो एक बार चल पड़ता है वह चलता जाता है! कादंबरी का पूर्वार्ध अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है इसीसे इसका अध्ययन होता है किन्तु उत्तरार्ध पूर्वार्ध से घट कर है इसीसे इसका अध्ययन नहीं होता हम इस बातको नहीं मानते। इसका वास्तविक कारण जो हम ऊपर कह आए हैं वही है। उत्तरार्ध के अधिक लोक प्रिय न होने का भी कारण है। कादंबरी में कथा-तत्व की अपेक्षा भाषा-तत्व का अधिक महत्व है। भाषा अपने उत्कर्ष को पूर्वार्ध में पहुँच चुकी है। अतः पूर्वार्ध के

उपरान्त दीर्घ काल में लिखे जाने पर भाषा संबंधी किसी विशेष आकर्षण के अभाव के कारण उत्तरार्ध पूर्वार्ध के समान लोकप्रिय न हो सका।

संक्षेप में बाण की कृति कादंबरी अति विचित्र, कोमल तथा लालित्य पूर्ण है। उनकी भाषा कल्पना की विशालता, संविधान चातुर्य तथा ललित अर्थ प्रकट करने में अनुपम है। यह शृंगार-रस प्रधान कथा है जिसमें निर्दोष और पवित्र रति का वर्णन हुआ है। इस रचना में कवि ने ओज को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। कथानक का क्रम पूर्वक विकास करके उसने वस्तु-संकलन में अपना अनुपम चातुर्य दिखलाया है। कथाके मध्य को पार कर डालने पर भी इसके अंत की थाह नहीं मिलती। कादंबरी के सब चरित्र सजीव हैं और उनका कोई कर्म उनकी स्थिति के विरुद्ध नहीं है। राजपुत्र क्या है? शौर्य और ऐश्वर्य क्या है? काव्य क्या है और संस्कृत भाषा क्या है? प्रेम क्या है? पवित्रता क्या है? शान्ति और समृद्धि क्या है? मानव जीवन का वास्तविक मूल्य क्या है? आह्लाद और उल्लास क्या है? रूप और अलंकार तथा मधुरिमा और सरसता क्या है, इन सब प्रश्नों का एक साथ यथार्थ उत्तर जिसे लेना हो वह बाण की कादंबरी का दर्शन करे! "संपूर्ण कादंबरी काव्य एक चित्र-शाला है और उन चित्रों के सौंदर्य के आस्वादन से जो वंचित है वह निस्संदेह दुर्भाग्य है" स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इन शब्दों को मैं भी दुहराता हूँ और इस लंबी भूमिका को समाप्त करता हूँ।

उपकारी के प्रति कृतज्ञ होना मानवता का धर्म है अतः इस संबंध में कृतज्ञता-प्रकाशन हमारा भी कर्तव्य है। महाकवि बाण ने कादंबरी के आरंभ में प्रार्थना के पद्यों में जीवन भर

केवल निंदा करने के नीच कर्म में महा प्रवीण दुष्टों का भी स्मरण किया है। उन्होंने लिखा है—"महा सर्प के मुख के पास दुःसह विष के समान जिसके मुख में सदा दुःसह दुर्वचन रहता है ऐसे बिना कारण वैर प्रकट करने से भयंकर दीखते दुष्ट जनों से किसे भय नहीं होता?" तुलसीदासने भी राम-चरित-मानस के आरंभ में उन खलों की वंदना की है जो बिना काज दाहिने बाएँ होते रहते हैं, जो दूसरों के अकाज के लिए अपना शरीर तक त्याग देते हैं, जिन्हें वचन-वज्र सदा प्यारा होता है और जो सहस्र नेत्रों से दूसरों का दोष निहारने के लिए प्रतिपल तैयार रहते हैं। जब बाण और तुलसी जैसे वाणी के परमेश्वर तक को इन खलों को स्मरण करना ही पड़ा तब साधारण साहित्यिक इनकी उपेक्षा कर कैसे सकता है? वास्तव में हर समय हर स्थान में प्रत्येक सहृदय साहित्यिक को छिद्रान्वेषण व्रत में अटल इन हरिश्चन्द्र, और वचन-वज्र-घातकता तथा निंदा के अनन्य पति, द्वारा अपार क्लेश मिलता है! "कर्कश शब्द करती हुई कालिमा उत्पन्न करने वाली बाँधने की सीकड़ के समान कटु शब्द बोलने वाले ये दुष्ट बहुत कष्ट देते हैं।" पर संसार में सज्जन पुरुष भी होते ही हैं जो अपने अमृत मय वचनों से पद पद पर उसी प्रकार मन हरण कर लेते हैं जैसे रत्न जटित नूपुर अपनी झनझनाहट से पग पग पर चित्त को आकर्षित करते रहते हैं। और कभी कभी तो ये सज्जन अपने अकारण तथा अप्रकट स्नेह द्वारा अभिज्ञहृदयता से इस भाँति मंडित रहते हैं जैसे अपने आप पलंग पर आकर हृदय में अपना साम्राज्य स्थापित करने वाली नई बहू का पति अनुराग से मंडित होता है! ऐसे ही देवोपम महानुभावों की सहृदयता के बल पर कवि निर्भय होकर

अपने कर्म में प्रवृत्त होता है। ऐसे ही उपकारी सज्जन मित्रों को मैं अभिवादन करता हूँ।

विहार प्रांत के उपवन मुंगेर नगर के प्रधान राज्याधीश (रईस), पैसेफिक बैंक लिमिटेड के मैनेजिंग डाइरेक्टर, मनस्वी, श्रेष्ठवर श्रीमान् बाबू रघुवर नारायण सिंह जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए संपूर्ण आर्थिक सहायता देने का आश्वासन देकर, परम विद्यानुरागी शीलसागर श्री प्रियवर बाबू योगेन्द्र-नाथ जी वर्मा, पी० सी० यस०, ने कागज* की व्यवस्था करके और सुलेमानी प्रेस काशी के अध्यक्ष ने पर्याप्त समय तक बिना छपाई माँगे अत्यन्त एकाग्रता पूर्वक पुस्तक का मुद्रण करके मेरे साथ अपार उपकार किया है। पुस्तक भर में छपाई की एक भी भूल न रहे प्रेस के अध्यक्ष श्री भार्गव जी की यह उत्कट अभिलाषा थी। त्रुटियाँ हो जाने पर फल स्वरूप उन्होंने कुछ फार्म दोबारा कंपोज कराया और छपवाया। हम इन तीनों सज्जनों की उदारता व सहायता के लिए कृतज्ञता के भार से आजीवन नत रहेंगे। श्री १०८ पूज्य पंडित ऋषीश्वर नाथ जी भट्ट तथा वयोवृद्ध हिन्दी-साहित्य के तपस्वी पूज्य श्री नाथू रामजी प्रेमी के भी हम अत्यन्त आभारी हैं कारण उनके कादंबरी ग्रन्थ से हमें पर्याप्त सहायता मिली है। इन सज्जनों के अतिरिक्त मुद्रणालय में भेजने के लिये पांडुलिपि बनाने में हमें अपने शिष्य-वर्ग से, जिसमें श्री चन्द्रभूषणजी त्रिपाठी, (प्रयाग विश्वविद्यालय के बी० ए० के छात्र), श्री उमाशंकर जी वर्मा, श्री परमानंद जी

---

* इस पुस्तक का समस्त कागज बंगाल पेपर मिल कलकत्ता का बना है और गोरखपुर के प्रसिद्ध कागज-विक्रेता श्री उमाचरण कैलाश प्रसाद द्वारा प्राप्त हुआ है।

श्री वास्तव, श्री सत्यव्रत जी सिनहा तथा श्री नरेन्द्र प्रसाद जी शर्मा का नाम प्रमुख है, बहुत सहायता मिली है।

हमने इस पुस्तक की रचना तथा प्रकाशन में पर्याप्त परिश्रम किया है। आधुनिक युग में हमारे युवक-समुदाय में "नई रोशनी" से प्राप्त उल्लास, व्यग्रता, और प्रदर्शनीयता की प्रबल इच्छा के बीच यदि प्राचीन परंपरागत युवकों का शौर्य, संयम, सरलता, तथा निष्कपट प्रेमाकुलता का गाढ़ा रंग भरा जा सके तो हमारा युवक वर्ग और भी प्रतिभा संयुक्त हो जाए। कैसे यह ग्रंथ हमारे प्रिय युवक बंधुओं को प्रिय तथा लाभप्रद हो इसी बात का विशेष ध्यान रखकर हमने इसे प्रकाशित किया है। यह ग्रंथ-रत्न निश्चय ही युवकों के गले का हार होकर हिंदी-साहित्य के भंडार में मूल्यवान रत्न की भाँति प्रतिष्ठित हो यही हमारी कामना है। एवमस्तु !

सेंट एँड्रू ज कालेज, गोरखपुर
१ अगस्त ४४ ई०

विनीत—
राजनाथ पांडेय

—*※*—

॥ श्रीः ॥
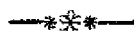
कादम्बरी-परिचय

१—विदिशा की राज-सभा में चांडाल कन्या।

पुरातन समय में विदिशा नगरी में शूद्रक नाम का महा-प्रतापी राजा राज करता था। वह मानो दूसरा इन्द्र ही था। चित्त में धर्म का वास होने के कारण वह सदा धर्म का चिंतन किया करता, प्रताप में अग्नि का वास होने के कारण वह सारे राज्य का भार वहन करता, और नेत्रों में लक्ष्मी का वास होने के कारण वह सबको प्रेम-भरी चितवन से देखता था। उसकी जिह्वा में मानो सरस्वती का वास था जिससे वह बातचीत करने में बड़ा चतुर था, और पराक्रम में वायु का वास था जिससे वह अत्यन्त बलवान था। उसकी मनोरम विदिशा नगरी के चारों ओर वेत्रवती नदी बहा करती थी जिसमें मालव की स्त्रियाँ जब स्नान करती थीं तब उनके कठोर स्तनों पर टकराने से वेत्रवती नदी की तरंगे छिन्न-भिन्न हो जाती थीं। उसके तट पर मद से मतवाले हंस कोलाहल किया करते थे।

राजा शूद्रक ने संपूर्ण भुवन-मंडल को अपने वश में कर रखा था। वह सब भुवन के भार को अपनी भुजा पर एक

कंकण की भाँति सरलाई से धारण करता था। अपनी बुद्धि के प्रभाव से बृहस्पति का भी उपहास करने वाले, वंश-परंपरागत विद्वान मंत्री उसकी सेवा में उपस्थित रहा करते थे। अपने समान वय, विद्या और अलंकार वाले अनेक क्षत्री राज-कुलों में उत्पन्न हुए राजकुमारों के साथ खेल-खाल में राजा शूद्रक ने अपनी युवावस्था का अधिक भाग अल्हड़पन में सुखपूर्वक बिता दिया। अत्यन्त प्रगल्भ तथा अवसर का समुचित ज्ञान रखने वाले, सभ्यता-पूर्वक परिहास करने में कुशल और मन के भाव और आकार समझने वाले, तथा काव्य, नाटक, कहानी, चित्रकर्म व्याख्यानादि क्रियाओं में निपुण वे अत्यन्त कठिन और पुष्ट कन्धे, जंघा तथा भुजा वाले राजकुमार मानो राजा शूद्रक के ही प्रतिबिम्ब थे। जय प्राप्त करने की तीव्र इच्छा और बड़े भारी पराक्रम के कारण स्त्री जाति को तिनके के समान तुच्छ समझ वह उनसे दूर रहता था।

एक दिन की बात है कमलों की नई कलियों के खिलाने वाले भगवान भास्कर के उदय के थोड़ी देर उपरान्त जब उनकी ललाई कुछ कम हो गई थी उस समय शरीर धारण कर के आई हुई राजलक्ष्मी के समान प्रतिहारी सभा-मण्डल में महाराज के पास आई। वह परशुराम के परशु की धार के समान सब राज-मण्डल को वश करने वाली, शरद ऋतु के समान कल-हंस-श्वेत अंबर वाली और बिन्ध्याचल की वन भूमि के समान वेत्र-लता से युक्त थी। सभा में आकर अपने घुटने तथा हाथ भूमि पर टेक वह विनय पूर्वक राजा से कहने लगी, पृथ्वीनाथ! एक चाण्डाल कन्या दक्षिण दिशा से आकर द्वार पर खड़ी है। वह एक सुए को पिंजर में रख कर लाई है और कहती है जैसे पृथ्वी-

तल पर महाराज समुद्र के समान सब रत्नों के आकर हैं वैसे ही मेरा आश्चर्यजनक सुआ भी सब भुवनों का एक रत्न है। यही समझ मैं उसे यहाँ लाई हूँ। महाराज की क्या आज्ञा है?

प्रतिहारी के इतना कह चुकने पर राजा को उस चांडाल कन्या के देखने की अतीव लालसा हुई और आस-पास बैठे हुए सब राजा लोगों के मुख की ओर देख कर उसने आज्ञा दी, उसे भीतर आने दो। राजा का वचन सुनते ही प्रतिहारी उठ कर उस चाण्डाल कन्या को भीतर लिवा आई। राज-सभा में पदार्पण कर उस कन्या ने सहस्रों नृपों के मध्य में विराजमान राजा शूद्रक को देखा जो चन्द्रकान्तमणि के सिंहासन पर विराजमान था। सिंहासन में बड़े-बड़े मोतियों की झालर लटक रही थी, और उसके चारों ओर मणिदण्ड सोने के सोकड़ में बँधे हुए थे और उसके ऊपर मंदाकिनी की झाग के समान, सफेद महीन वस्त्र का वितान तना था। राजा पर सोने की मूँठ के चमर झले जा रहे थे और स्फटिक मणि के चरण-पीठ पर उसका बाँया पैर रखा हुआ था। अमृत की झाग के समान उसके सफेद वस्त्र की कोर पर गोरोचन से हंसों के जोड़े चित्रित थे और चमर की हवा से उनके सिर उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन के लेप से राजा की छाती गोरी हो गई थी और उस पर छिड़की केसर के कारण प्रातःकाल की धूप जिस पर कहीं-कहीं पड़ी हो ऐसे कैलाश पर्वत के समान वह शोभायमान था। उसके आस-पास दिग्भामिनिरूप वेश्याएँ सेवा के लिए उपस्थित थीं। निर्मल मणिमय धरातल में उसका प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा जान पड़ता था मानों पृथ्वी ने अपने पति को प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया हो!

राजा को दूर ही से देखती उस चण्डाल कन्या ने लाल कमल के समान अपने कोमल हाथ में पड़ी फटे बाँस की छड़ी राजा की चितवन अपनी ओर फेरने की इच्छा से भूमि पर पटक कर एक बार शब्द किया जिससे उसका रत्न-कंकण हिलने लगा। जंगल में ताड़-फल गिरने का शब्द होने से जैसे सब हाथी उसी ओर देखने लगते है उसी भांति बांस की छड़ी का शब्द सुनकर सब नर-पति एक साथ राजा की ओर से अचानक दृष्टि फेर कर उसी की ओर देखने लगे। राजा ने भी नवयौवन में उमड़ी हुई परम सुन्दर आकार वाली उस कन्या को टकटकी बांधकर बड़े ध्यान से देखा। उस कन्या के आगे-आगे आर्य वेश में सपेत कपड़े पहने एक व्यक्ति आ रहा था जो चाण्डाल होने पर भी आकार में क्रूर नहीं था, और उसके पीछे चाण्डाल जाति का एक लड़का था जिसकी अलकें हिल रहीं थीं।

उस बालक के हाथ में स्वर्ण की सलाइयों से बना हुआ एक पिंजर था, जो भीतर बैठे सुए की झलक से मरकत मणि का बना हुआ सा कुछ श्याम देख पड़ता था। वह कन्या गमन शक्ति वाली इन्द्र-नील-मणि की पुतली सी जान पड़ती थी। एँड़ी तक पहुँचे हुए नीले अधोवस्त्र में उस युवती का शरीर ढँका हुआ था किन्तु कटि के ऊपर उसने लाल ओढ़नी ओढ़ ली थी और कुछ-कुछ पीले रंग के गोरोचन से तिलक-रूपी तीसरा नेत्र बना मानो वह महादेव के वेष के समान ही भिल्लिनी का वेप धारण करने वाली पार्वती हो रही थी। उसके चरण-कमलों पर बहुत गाढ़े लाल लाख के रंग से जो फूल-पत्ते बने थे उनसे मानो वह धरातल पर फूल-पत्ते बिछाती हुई उन पर चल रही थी। नूपुर मणियों में से निकले हुए

पीले रंग से रंजित उसका शरीर ऐसा लगता था मानों भगवान अग्नि ने, केवल उसकी कान्ति का पक्षपात कर प्रजापति की आज्ञा का लोप करते हुए उस जाति को पवित्र करने के लिए उसके शरीर का आलिंगन किया हो! उसे देखकर राजा बड़ा विस्मित हुआ और अपने मन में कहने लगा, अहो! रूप निर्माण करने का विधाता का प्रयत्न कैसे अयोग्य स्थान में हुआ है!

जिस काल राजा इस भाँति कल्पना कर रहा था उसी समय उस कन्या ने प्रगल्भ स्त्री के समान उसे प्रणाम किया। प्रणाम करने में झुकने से उसके कान का पल्लवाभूषण तनिक लचक गया। प्रणाम करके वह मणिमय भूमिपर बैठ गई और उसके बैठते ही उस व्यक्ति ने सुए के पिंजर को लेकर तनिक आगे बढ़ राजा को दिखलाते हुए कहा, पृथ्वीनाथ! यह सुआ सब शास्त्रों का अर्थ जानता है, राजनीति के प्रयोग में कुशल है और पुराण-इतिहास आदि की कथा कहने में निपुण है। गान-विद्या के स्वर यह समझता है, काव्य, नाटक, प्राचीन और अर्वाचीन कथा तथा अनंत सुभाषित इसका पढ़ा हुआ है। यह परिहास में निपुण, वीणा, वेणु, मृदंग आदि बाजों का अद्वितीय श्रोता, चित्रकर्म में चतुर, जुआ खेलने में प्रवीण और प्रेम-कलह से अप्रसन्न हुई स्त्री को मनाने के अनेक उपाय जानने वाला है। हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्रियों के लक्षण भी यह भली भाँति समझता है। संक्षेप में यह सब भूतल का एक रत्न है और इसका नाम वैशंपायन है। समुद्र के समान आप सब रत्नों के आकर हैं, यह जान मेरे स्वामी की लड़की इसे लेकर आपके चरणों में आई है। आप इसे स्वीकार करें।

इतना कह, राजा के सामने पिंजर रख कर वह दूर हट गया उसके हट जाने पर सुए ने राजा की ओर देख, दाहिना चरण उठा, अत्यन्त स्पष्ट वर्ण, स्वर-युक्त वाणी से जय कहकर, राजा ई के सम्बन्ध में यह आर्या छन्द पढ़ा—

स्तनयुगमश्रुस्नातं
समीपतरवर्तिहृदयशोकाग्नेः ।
चरति विमुक्ताहारं
*व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥**

सुए के मुख से यह सुनते ही राजा बड़ा विस्मित हुआ और पास ही एक बहुमूल्य आसन पर बैठे हुए बृहस्पति के समान सब नीति-शास्त्र में प्रवीण और सब मन्त्रियों में प्रधान कुमारपाल नामक वृद्ध ब्राह्मण से सहर्ष कहने लगा, इस पक्षी के वर्णोच्चारण की स्पष्टता और स्वर की मधुरता आपने सुनी ! प्रायः पशु-पक्षियों को केवल भय, आहार, मैथुन और निद्रा के ही संकेतों का ज्ञान होता है पर यह तो बड़ा ही अद्भुत है ! राजा के वचन सुनकर कुमारपाल मन्त्री किंचित् मुसकुरा कर बोला, पृथ्वीनाथ ! इसमें क्या विचित्रता है ? आप ने सुना होगा सुग्गा, मैना आदि कितने ही पक्षी सुने हुए शब्दों को बोल सकते है । मनुष्यों की भाँति पशु पक्षियों की वाणी भी पहिले ऐसी थी जो वे अत्यन्त स्पष्ट उच्चारण

---

* हे राजन् ! आपके शत्रु की स्त्रियों के दोनों कुच मानो व्रत धारण किए रहते है क्योंकि व्रतियों की भाँति वे आँसुओं के जल से बारबार स्नान करते हैं, हृदय के संताप की अग्नि के समीप रहते हैं और विमुक्ताहार (निराहार अथवा मोती के हार से विहीन) हो समय व्यतीत कर रहे हैं ।

कर सकते थे परन्तु अग्नि के श्राप से सुओं को वाणी की स्पष्टता जाती रही और हाथियों की जीभ उलटी फिर गई।

जिस समय यह बातें हो रही थीं आकाश के बीच में सूर्य के आ पहुँचने की सूचना देने के लिये दुपहर का शंख बज उठा और प्रहर के अन्त का धौंसा भी उसी के साथ बजने लगा। उसे सुनकर स्नान का समय आया जान, सब नरपतियों को बिदाकर, राजा शूद्रक सभामण्डल में से उठा। राजा के उठते ही अन्य नरपति भी उठ खड़े हुए जिससे आपस में बड़ी खलबली मची। चलने की जल्दी में हिले हुए भुजबन्धों के ऊपर बनी हुई मछलियों के अग्रभाग से उनके वस्त्र फट-फट गये। उधर चलती हुई वेश्याओं की जांघों पर टकराने से बजती मणि जटित तागड़ियों की मनोहर झंकार हो रही थी और उनके नूपुरों की झंकार सुनकर गृहसरोवर के कल हंस दौड़ आ रहे थे और सभा-मंडप की सीढ़ियों पर बैठकर कोलाहल कर रहे थे।

सब राजाओं के बिदा करने पर राजा शूद्रक ने चाण्डाल कन्या से विश्राम करने को कहा और तांबूल-वाहिनी को वैशंपायन के भीतर ले जाने की आज्ञा देकर कितने ही अत्यन्त प्रिय राजकुमारों के साथ भीतर गया। पहिले सब गहने उतार कर वह अखाड़े में गया और वहाँ अपने बराबर के राजकुमारों के साथ उसने कुछ व्यायाम किया। फिर स्नान की सामग्री तयार करने की जल्दी में इधर-उधर दौड़ते हुए सेवकों के साथ वह स्नान-भूमि में गया। स्नान-भूमि में सफेद कपड़े का एक वितान तँधा था और मध्य में सुगंधित जल से भरी हुई सोने की एक नांद और उसके पास ही स्फटिक मणि की स्नान करने के लिए एक चौकी रखी थी। उसके एक ओर स्नान-कलश रखे थे जिनमें

अत्यन्त सुगन्धित जल भरा हुआ था और सुगन्ध के कारण आए हुए भौरों से उनका मुख काला हो रहा था जिससे वे ऐसे लगते थे मानो गरम हो जाने के डर से ऊपर काले कपड़े बाँध दिए हों।

राजा के पानी की नाँद में पहुँचने पर वेश्याओं ने अपने हाथ से सुगन्धित आमले लगाकर उसके सिर पर लेप किया और वे उसके आस-पास खड़ी हो गईं। वे स्नान करने के लिये आई हुई अभिषेक देवियों के समान लगती थीं। उनमें से कितनी वेश्याएँ चाँदी के कलश हाथों में लेकर राजा को स्नान कराती थीं और कितनी ही कलश उठाने के श्रम से पसीने में तर हो गई थीं और जल-देवियों के समान लगती थीं। इस भाँति स्नान कर चुकने के पश्चात् साँप की केंचुल के समान स्वच्छ दो वस्त्र उसने पहन लिए और अत्यन्त सपेत बादल के टुकड़े के समान स्वच्छ रेशमी वस्त्र की पगड़ी सिर पर बाँधी। तब जिन राजाओं को भोजन कराना योग्य था उनको भी अपने साथ बैठा कर अभीष्ट रस के स्वाद से आनन्दित होकर उसने भोजन किया।

भोजन के पीछे मुँह धोकर सुगंधित धूम्रपान कर पान ले चमकते हुए मणियों के आँगन से उठकर राजा सभा-मण्डप की ओर चला। उसके चलते ही थोड़ी दूर खड़ी हुई प्रतिहारी संभ्रम से दौड़ी और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। राजा ने उसके हाथ का सहारा ले लिया। भीतर प्रवेश करने योग्य परिजन राजा के पीछे-पीछे चलने लगे। सभा-मण्डप के चारों ओर सपेत कपड़ों के पर्दे लगे थे। वहाँ आस-पास बिखरे फूल ऐसे लगते थे जैसे आकाश में तारागण हों और सोने के खम्भों में खुदी हुई पुतलियाँ गृहदेवियों के समान लगती थीं। भीतर

चौतरे पर हिमालय के शिलातल के समान एक पलंग बिछा था। वहाँ जाकर राजा उस पलंग पर बैठ गया और उसकी खंगग्राहिनी खंग को गोद में रखकर भूमि पर बैठ गई और नवीन कमल के पत्तों के समान कोमल हाथों से धीरे-धीरे उनके पैर दबाने लगी।

कुछ समय बैठकर वैशंपायन का समाचार जानने के कौतूहल से राजा ने थोड़ी दूर खड़ी हुई प्रतिहारी को अन्तःपुर से वैशंपायन को ले आने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही प्रतिहारी वैशंपायन के पिंजरे को एक क्षण में राजा के पास ले आई। फिर सुए को सम्मुख पा राजा ने उससे पूछा, क्या तुम्हें अन्तःपुर में अभीष्ट भोजन मिले? सुए ने उत्तर दिया, पृथ्वीनाथ! मैंने सुखपूर्वक भोजन कर लिया। मत्त कोकिलों के नेत्रों के समान नीली और गुलाबी जामुनों का खटमिट्ठा रस मैंने पिया। सिंह के पंजे से तोड़े हुये मत्त हाथी के कुम्भस्थल में से निकले रुधिर में भीगे मोतियों के समान चमकते अनार के दाने मैंने कुतरे। कमल के पत्तों के समान हरे और दाख के समान मीठे पुरानी इमली के फल भी मैंने इच्छानुसार खाये। उसके इस वचन को सुन राजा ने उससे कहा, वैशंपायन! अब तुम हमारा कुतूहल दूर करने के लिये सविस्तार हमें यह बताओ तुम्हारा जन्म किस देश में और किस प्रकार से हुआ, तुमने यह सब कलाएँ कहाँ सीखीं, तुम्हारी यह बुद्धि पूर्वजन्म की स्मृति के कारण है अथवा किसी वरदान के कारण; और तुम किस प्रकार चाण्डाल के हाथ में पड़कर पिंजर में बंद हुए हो? तब वैशंपायन ने कहा, पृथ्वीनाथ! यह कथा बहुत लंबी है, किन्तु आपको बड़ा कुतूहल है अतः कह रहा हूँ आप सुनें।

२—मानव लोक में स्वर्गलोक की कथा का आरम्भ।

राजन्! विन्ध्याचल की अटवी समुद्र-तट के किनारों तक चली गई है। यह मध्य देश का आभूषण और पृथ्वी की मेखला है। वहाँ मदमत्त कुरल पक्षी मिर्च के पत्तों को कुतरते हैं, हाथी के बच्चों की सूंड़ों से मसले तमाल के पत्तों की सुगन्धि फैली रहती है, और मदिरा के मद से लाल हुए मलाबार की स्त्रियों के गाल के समान कोमल कान्तिवाले पत्तों से भूमि आच्छादित रहती है। ऐसी ही सुरम्य विन्ध्याटवी में दंडकारण्य के भीतर अगस्त्य का एक आश्रम था। इस आश्रम के चारों ओर की भूमि सब दिशाओं में फैले हुए हरे रंग के केलों के वन से कुछ काली पड़ गई थी।

उस आश्रम के आस-पास गोदावरी नदी बहती है। राजा दशरथ के वचन का पालन करते हुए, राज्य का त्याग कर रावण की लक्ष्मी के विलास का अन्त करनेवाले रामचन्द्र सीता के साथ पंचवटी में लक्ष्मण की बनाई हुई कुटी में कुछ समय तक, वहीं सुख से रहे थे। उस अगस्त्याश्रम से थोड़ी दूर पर पम्पा नाम का एक अगाध, अनन्त, अद्वितीय जल से भरा हुआ पद्म सरोवर है। वह प्रलय काल में आठों दिशाओं के बंध टूट जाने से नीचे पड़े हुए गगनतल के समान लगता है। उस पद्म सरोवर के पश्चिम किनारे पर राम के बाणों से जर्जरित हुए पुराने ताल वृक्षों के कुंज के पास एक बड़ा जीर्ण सेमल का वृक्ष है जिसकी जड़ के आस-पास दिग्गज की सूँड़ के समान

एक बूढ़ा अजगर सदा लिपटा रहता था। उसकी डालियाँ अन्तरिक्ष में फैली हुई दिशाओं के मण्डल को मानों नापते रहती हैं। पानी के बोझ से मंद-मंद चलते हुए बादल उसकी डालियों में क्षणभर के लिए ठहर जाने पर ऐसे विदित होते हैं मानों वे समुद्र का पानी पीकर आकाश में उतरे हुए पक्षी हों।

उस वृक्ष की डालियों के अग्रभाग पर खोड़रों के भीतर, पत्तों के बीच में, और पुरानी छाल के छेदों में स्थान अधिक होने के कारण देश-देश से आए हुए शुकादि पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड घोंसले बनाकर निश्चिंत बसेरा लेते थे। उसके ऊपर किसी का चढ़ना अत्यन्त कठिन था इस कारण उनको अपने विनाश का डर नहीं था। अपने-अपने घोंसलों में रात काट कर वे प्रतिदिन प्रातःकाल आहार की खोज में झुण्ड बाँधकर आकाश में उड़ते हुए ऐसे लगते थे मानों उन्मत्त बलराम के हल के अग्रभाग से ऊपर फेंकी हुई यमुना आकाश में बहुत से प्रवाहों में बह रही हो अथवा मानों आकाश में कोई दूब का खेत उड़ा चला जाता हो। फिर सन्ध्या समय सब पक्षी चुँगने के अनन्तर लौट-लौटकर अपने कोटरों में बैठे हुए बच्चों को भाँति-भाँति के फलों के रस और धान की मंजरियों की किनकी बार-बार खिला कर पंखों के नीचे रख उसी वृक्ष में रात काटते थे।

मेरे बूढ़े पिता भी मेरी माता के साथ मेरे जन्म के पूर्व उसी वृक्ष में एक जीर्ण कोटर में रहते थे। मेरे जन्म-समय बहुत प्रसव-वेदना होने के कारण मेरी माता का देहान्त हो गया था। मेरी माता के मरने के शोक से मेरे पिता बहुत दुखी थे तो भी पुत्र-स्नेह के सामने शोक के फैलते हुए तीव्र वेग को उन्होंने भीतर दबा रखा और केवल मेरे पालने का यत्न करने लगे।

द्वितीय परिच्छेद

बहुत वृद्ध हो जाने के कारण उड़ने में मेरे पिता का शरीर काँपने लगता था अतः वे अपनी चोंच से दूसरों के घोंसलों में से नीचे गिरी हुई धान की लता में से चावलों की किनकी बीन कर और वृक्ष की जड़ के आगे पड़े अन्य सुओं के कुतरे हुए फलों के टुकड़ों को इकट्ठा कर मुझे खिलाते थे। उनमें आकाश में उड़ने की शक्ति नहीं रही थी। इस रीति से प्रति दिन मुझे खिला कर बचा-खुचा वे आप खाते थे।

एक दिन मैंने उस महावन में सहसा अहेरियों का कोलाहल सुना। उस समय प्रभात-सन्ध्या के रंग से लाल हुआ चन्द्रमा मन्दाकिनी के किनारे से पश्चिमीय समुद्र के तट पर उतर रहा था। मोर जाग चुके थे, सिंह जँभाई ले रहे थे, हथिनियाँ मदगजों को जगा रही थीं और रात को ओस पड़ने से जिनकी केसर ठिठुर गई थी ऐसे फूल सूर्योदय होने पर पेड़ों से गिरने लगे थे। फिर थोड़ी देर में एक पहर दिन चढ़ जाने से सूर्य स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा और सुग्गों के झुण्ड अपनी-अपनी अभीष्ट दिशाओं में उड़ गए। उस समय घोंसलों में बेखटके सोते बच्चों के होने पर भी शब्द-रहित होने के कारण वह वृक्ष शून्य-सा दीखता था।

मेरे पिता अपने घोंसले में बैठे थे और मैं उनके पास वाले घोंसले में था। बाल्यावस्था के कारण मेरे पंखों में उड़ने की शक्ति तो थी नहीं। उसी समय वन में अहेरियों की कोलाहल ध्वनि सुनाई दी। उसे सुनते ही सब वनचर डर गए। ऐसे अश्रुत-पूर्व शब्द को सुनते ही मैं काँपने लगा। बालक होने के कारण मेरे कान जर्जरित हो गए, और भय से व्याकुल हो कर आश्रय लेने की आशा से मैं पास बैठे हुए अपने पिता के

बुढ़ापे से शिथिल हुए पंखों के भीतर घुस गया। कुछ ही देर में अहेरियों के एक बड़े झुण्ड का कोलाहल होने लगा। उन्होंने वृक्षों की झाड़ियों में अपने शरीर छिपा लिए थे और आपस में यह कहते जाते थे हिरनियों के पैरों की इस पंक्ति पर चलो, वृक्षों की चोटी पर चढ़ जाओ, दृष्टि को इस दिशा में फेंको, इस शब्द को सुनो, धनुष लेकर सावधान हो खड़े रहो, कुत्तों को छोड़ दो, इत्यादि।

इस कोलाहल से सब वन क्षुभित हो गया क्योंकि शीघ्र ही कानों तक खिंची हुई प्रत्यंचा वाले धनुषों का शब्द होने लगा था। पवन की ताड़ना से खड़खड़ाती धारवाली और भैंसों के कठिन कंधों पर गिरती हुई तलवारों के रणत्कार के साथ-साथ भूँकते हुए कुत्तों का शब्द सब वन में व्याप्त हो रहा था। ऐसे शब्दों के कोलाहल से वह वन थरथरा गया। थोड़ी देर पीछे अहेरियों का कोलाहल जाता रहा और वन एकाएक शान्त हो गया। तब मेरा भय कुछ कम हुआ और बालकपन के कारण कुतूहल उत्पन्न होने से मुझे आश्चर्य हुआ, यह क्या है। उसे देखने के लिए आतुर होकर पिता की गोद से तनिक बाहर अपनी गर्दन आगे बढ़ा कर उस दिशा की ओर आँख उठाते ही मैंने दूसरे वन में से सामने आती हुई सहस्रों भीलों की एक सेना देखी जो यम के भटकते हुए परिवार की नाईं अथवा स्नान करने के लिए निकले हुए जंगली भैंसों के समान अत्यन्त भय उत्पन्न करती थी।

उस बड़ी शबर सेना के बीच में मैंने उनके तरुण भील-सेनापति को देखा। उसका नाम मातंग था और उसका आकार बहुत भयंकर था। वह अत्यन्त कठोरता

के कारण ऐसा लगता था मानों लोहे का बना हुआ हो। उसके दाढ़ी-मूँछ निकलने लगी थी, जिसके कारण वह, पहिली मद की रेखा से शोभित गंडस्थल वाले, गज-कुमार के समान लगता था। अकारण क्रूर होने से उसका माथा ऊँची भृकुटि से विकराल था और उस पर जो तीन सिकुड़नें पड़ी थीं उनसे वह ऐसा विदित होता था मानों उसकी दृढ़ भक्ति से प्रसन्न हुई दुर्गा ने उसे अपना भक्त मान त्रिशूल का चिह्न बना दिया हो। उसके पीछे हिले हुए रंग-बिरंगे कुत्ते चले आते थे जो श्रम के कारण बाहर निकली हुई जिह्वाओं से अपना श्रम प्रकट करते थे। उनके गले में बड़ी बड़ी कौड़ियों के कण्ठे पड़े थे।

सेनापति के आस-पास बहुत से भीलों के झुण्ड चले आ रहे थे। उनमें से कितनों ही के पास चमरमृग के बाल और हाथी दाँत की गठरियाँ थीं। महादेव के गणों की भाँति कितनों ही ने सिंहचर्म ले रखे थे। उन्हें देख मेरे मन में विचार हुआ अहा! इन लोगों का जीवन कैसा अज्ञान से पूर्ण और कर्म साधु-जनों से निंदित है। ये मांस की बलि देना धर्म समझते हैं, शृगालों के रोदन से ही प्रातःकाल जागते है, पशुओं के रुधिर से देवताओं की पूजा करते है, चोरी से जीवन चलाते है और जिस वन में रहते हैं उसे ही निर्मूल कर देते हैं। इधर वह सेनापति वन में फिरने की थकावट दूर करने की इच्छा से उसी सेमर के वृक्ष की छाया मे आया और अपना धनुष नीचे रख, परिजनों से शीघ्र लाई पत्तों की चटाई पर बैठ गया। तब एक तरुण भील ने उस तालाब में झटपट उतर अपने दोनों हाथों से कमल की कलियों के रज से सुगन्धित हुए ठंडे जल को हिलोर कर उसे कमल के पत्तों के दोनों में भरा और

थोड़ी कमल की नरम-नरम जड़ों को ले कर आया। पानी पीने के पश्चात् सेनापति ने उस प्रकार उस मृणालिका को धीरे-धीरे खाया जैसे राहु चन्द्रकला का ग्रास करता हो। उसे खाकर विश्राम पा वह उठ खड़ा हुआ और उसकी सब सेना भी जल पीकर उसके पीछे-पीछे अभीष्ट दिशा में चली गई। परन्तु चांडालों के उस झुण्ड में एक बूढ़ा भील था जो पीछे रह गया। वह राक्षस के समान अत्यंत भयंकर देख पड़ता था। उसे हिरनों का मांस नहीं मिला था, इसलिए वह मांस लेने के अभिप्राय से उसी वृक्ष के नीचे थोड़ी देर तक खड़ा रहा। जब सेनापति अदृश्य हो गया तब पक्षियों का मांस खाने के लालची श्येन के समान उस बूढ़े भील ने ऊपर चढ़ने की इच्छा से बहुत देर तक उस वृक्ष को जड़ से देखा। जब वह वृक्ष को देख रहा था तब ऐसा अवगत होता था मानो वह हमारी आयु को ही पी डाल रहा हो। उसकी दृष्टि से भयभीत होकर सुग्गों के प्राण तो मानो उसी दम निकल गये।

वह वृक्ष अनेक ताड़ वृक्षों के समान ऊँचा था और उसकी चोटी की डालियाँ मानो आकाश से टकराती थीं, तो भी वह इस भाँति सुगमता से उस पर चढ़ गया जैसे नसेनी पर चढ़ता हो। फिर ऊपर पहुँचकर वह सुग्गों के बच्चों को. एक-एक कर के जैसे उस वृक्ष के फल तोड़ता हो उस भाँति डालियों की संधि और कोटरों के भीतर से निकाल-निकाल कर और प्राण ले-लेकर भूमि पर पटकने लगा। उन में कितने बच्चों को उड़ने की शक्ति नहीं थी क्योंकि वे थोड़े ही दिन पहिले जनमे थे। वे गर्भ के समान लाल थे और सेमर के फूलों के समान लगते थे। कितने ही पर निकल आने के कारण कमल के नरम पत्तों के समान दीखते थे। कितने ही आक के फूलों के समान थे और कितने ही चोंच की

नोक लाल होने से थोड़ी खिली हुई पंखुड़ियों से लाल मुखवाली कमल की कलियों की शोभा धारण करते थे !

ऐसा प्राणहारी और उपाय-रहित महा उपद्रव अचानक आया देख कर मेरे पिता को दूना कंप हो आया। मरण के डर से ऊँची और चंचल पुतली वाले, शोक से निस्तेज और आँसुओं से भरे हुए अपने नेत्रों को उन्होंने दिशाओं में इधर-उधर फेंका। उनका तालू सूख गया, पंख शिथिल हो गये और अपनी रक्षा करने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा तो भी स्नेह के कारण मेरी रक्षा के लिए व्याकुल होकर उन्होंने अपने पंखों से मुझे ढँक लिया। इतने में उन अत्यन्त पापी और क्रूर भील ने क्रम से डालियों के बीच-बीच में चढ़ हमारे घोंसले के छेद के पास आकर यमदंड के समान अपने बाएँ हाथ को लम्बा किया। फिर उसने बार-बार चोंच का प्रहार और बड़ी चीत्कार करते मेरे पिता को बाहर खींचकर उनके भी प्राण ले लिऐ, पर मेरा शरीर बहुत छोटा था और मेरे सब अंग भय से सुकड़ गए थे इससे उसने पंखों के भीतर मुझे नहीं देखा। मरे हुए मेरे बाप को उसने गर्दन लटका कर औंधे मुँह भूमि पर पटक दिया। उनके पैरों के बीच में अपनी गर्दन रख कर मैं चुपचाप उनकी गोद में घुस गया था, इससे मैं भी उनके साथ ही नीचे गिर पड़ा।

मेरे कुछ पुण्य बचे थे इससे मैं हवा से इकट्ठे हुए सूखे पत्तों के ढेर पर जा पड़ा और मेरे शरीर में चोट नहीं लगी। फिर वह भील वृक्ष की चोटी पर से जब तक नीचे आए मैंने अपने गिरे हुए बाप को मृत्यु के समय भी छोड़ दिया। आगे होने वाले स्नेह का उस समय मुझे ज्ञान नहीं था। अपने को मृत्यु के मुख में से निकला समझ कर पास के एक बड़े तमाल वृक्ष की जड़ में मैं

इस भाँति घुस गया मानों वह दूसरे पिता का उत्संग हो। फिर वह भील वृक्ष से उतर कर भूमि पर अलग पड़े हुए तोते के बच्चों को जल्दी-जल्दी इकट्ठा करके जिस मार्ग से सेनापति गया था उसी ओर तत्काल चला गया। मुझे अब जीने की आशा तो हुई, परन्तु पिता के उसी क्षण मरने के शोकसे मेरा हृदय विकल था।

बहुत ऊँचे से गिरने के कारण मेरे शरीर में पीड़ा होने लगी थी और भय के कारण मैं थर-थर काँप रहा था। उस चांडाल को बहुत दूर चला गया समझ कर कुछ समय पश्चात् तमाल-वृक्ष की जड़ में से निकल कर मैं तालाब के पास जाने का उद्योग करने लगा क्योंकि उस समय मुझे बहुत प्यास सता रही थी। पूरे पंख न निकलने के कारण मेरे पैर डगमगा रहे थे अतः मैं क्षण-क्षण में मुंह के बल गिरता जाता था। मेरी साँस फूलने लगी। उधर धूप से धूल गरम हो गई थी और भूमि पर पैर नहीं रखा जाता था। प्यास भी अधिक बढ़ती जारही थी। शीघ्र ही आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा था और बार-बार मन में यही विचार उठने लगा अच्छा हो विधाता मेरी इच्छा के बिना ही इस समय मेरे प्राण ले ले।

मैं इस भाँति विचार कर ही रहा था इतने में उस कमल-सरोवर से थोड़ी दूर पर तपोवन में रहते महा तपस्वी जाबालि का पुत्र हारीत उसी तालाब में नहाने के लिये आया। उसकी आयु के अन्य ऋषिकुमार भी उसी मार्ग से उसके पीछे-पीछे आ रहे थे। उसका अन्तःकरण, सनत्कुमार की भाँति, सब विद्याओं के पढ़ने से शुद्ध हो गया था। तपाए हुए लोहे के समान लाल और अनेक तीर्थों के स्नान से पवित्र हुई उसकी जटा कंधे पर लटक रही थी। तपोवन की देवी के नूपुर और धर्मोपदेशों की राशि

के समान स्फटिक रुद्राक्ष की माला उसके दाहिने कान में लटक रही थी और उसके माथे में भस्म का त्रिपुंड ऐसा लगता था मानों सब सांसारिक भोगों से निवृत्ति पाने के लिए उसने कायिक, वाचिक तथा मानसिक सत्य का चिह्न बना लिया हो।

सज्जनों का चित्त प्रायः बिना कारण ही प्रीति करने वाला और करुणा से आर्द्र होता है। अतः जब उस मुनि-कुमार ने मुझे ऐसी दशा में देखा तब उसे दया आ गई और उसने अपने पास खड़े हुए एक ऋषिकुमार से कहा, इस सुए के बच्चे के पंख तो अभी निकले नहीं हैं, पर न जाने यह कैसे इस वृक्ष की चोटी से अथवा श्येन के मुख में से नीचे गिर पड़ा है। इसकी आँखे बन्द हो रही है और साँस फूल रही है, इसलिए आओ इसे उठाकर जल के पास पहुँचा दें। ऐसा कह कर उस ऋषि-कुमारने मुझे तालाब के किनारे पहुँचवा दिया। फिर जल के पास जाकर अपना दंड और कमडंल एक किनारे रख, वह आप ही मुझे उठा लाया और मेरे सब आशा छोड़ देने पर भी मेरा मुँह ऊँचा कर. अपनी उंगलियो से उसने मुझे पानी की बूँदें पिलाईं और फिर जब मुझमें प्राण आ गया तब किनारे उगे हुए कमल के पत्तों की ठंडी छाया में मुझे रख कर उसने यथाबिधि स्नान किया। स्नान के पश्चात् कमण्डल में तालाब का पवित्र जल भर कर वह मुझे ले तपो-वन की ओर धीरे-धीरे चला।

सरोवर से हम बहुत दूर न पहुँचे थे इतने ही में मैंने एक रमणीक आश्रम देखा। वहाँ ताड़, तिलक, तमाल, हिंताल और मौलासिरी के वृक्ष बहुत थे। दिन रात पड़ती हुई घी की आहुति से सन्तुष्ट हुए अग्नि ने सब मुनियों को शरीर-सहित स्वर्ग ले जाने की इच्छा से ऊँची चढ़ती हुई धूम-लेखा के बहाने

मानो मार्ग में सीढ़ियों का सेतु बाँधा हो ऐसा दिखाई देता था। आश्रम के पास ही चारों ओर बावलियाँ थीं जिनमें फूले हुए कुमुद ऐसे देख पड़ते थे मानो रात्रि में ऋषियों की सेवा करने के लिए नीचे उतरे हुए तारे हों। दिन-रात फूल गिरा-गिरा कर सब वृक्ष मानों उसकी पूजा करते थे। वहाँ हिरनियाँ अपनी पल्लव के समान कोमल जिह्वाओं से मुनियों के बालकों को चाटती थीं और हिले हुए बंदर वहाँ के बूढ़े और अंधे तपस्वियों को अपने हाथ से पकड़ कर भीतर और बाहर ले जाते थे।

ऐसे आश्रम के मध्य भाग को शोभित करता हुआ लाल अशोक का एक वृक्ष था जिसके पत्ते लाख के समान लाल थे। मुनियों ने उसकी डालियों पर काले मृगचर्म और जल-पात्र लटका दिए थे। उसके चारों ओर क्यारी बनी हुई थी और हिरन के बच्चे उसमें ही पानी पीते थे। गाय के टटके गोबर से उसका तना लीप दिया गया था जिससे वह और भी रमणीक लगता था। उसी अशोक की छाया में बैठे हुए जाबालि मुनि को मैंने देखा। इतने ही में हारीत ने मुझे उसी लाल अशोक के नीचे एक जगह छाया में रख दिया और अपने पिता के चरण छू उन्हें वन्दना करके वह उनसे तनिक दूर पड़े हुए कुशा के आसन पर बैठ गया। तब अन्य सब मुनि मुझे देखकर उससे पूछने लगे यह सुआ कहाँ से लाये? उसने कहा, मैं जब नहाने जाता था तब यह पद्मसरोवर के तीर के वृक्षों में से किसी घोंसले से गिरकर गरम-गरम भभकती रेती में पड़ा निष्प्राण हो रहा था। इसे देखकर मुझे दया आई, पर उस बड़े वृक्ष पर तपस्वियों के लिए चढ़ना बहुत कठिन समझ, मैं इसे घोंसले में न रख सका और अपने संग लेता आया। इसलिए जब-तक इसके पंख न उग आएँ,

और यह अन्तरिक्ष में न उड़ सके तब-तक इसी आश्रम के किसी तरु-कोटर में यह बिचारा पड़ा रहे और हमारे तथा सब मुनि-कुमारों के लाए हुए नीवार की किनकी तथा फलों के रस से अपना निर्वाह करे।

मेरे सम्बन्ध में ऐसी बात सुनने से भगवान जाबालि को भी कुछ कुतूहल उत्पन्न हो गया और वे अपनी गर्दन किंचित मोड़ कर जैसे पवित्र जल से मेरा प्रक्षालन करते हों इस भांति अत्यंत शांत दृष्टि से मुझे परिचित की भाँति बहुत समय तक बार-बार देखते रहे। फिर वह कहने लगे, यह तो अपने ही अविनय का फल भोग रहा है। वे महामुनि त्रिकाल-दर्शी महात्मा थे। तपस्या के बल से पूर्व जन्मों का वृत्तान्त जानते थे और आँखों के सामने आए हुए प्राणियों की अवस्था का प्रमाण कह देते थे। वहाँ के सब तपस्वी इनका प्रभाव जानते ही थे इसलिए यह वाक्य सुनते ही उनको बहुत ही कुतूहल हुआ और वे महामुनि से प्रार्थना करके बोले, भगवन् कृपा-पूर्वक आप कहें यह अविनय का फल किस प्रकार भोग रहा है? यह जन्मान्तर में कौन था, पक्षियों में कैसे उत्पन्न हुआ और इसका नाम क्या है? तपस्वियों की यह प्रार्थना सुनकर महामुनि ने उत्तर दिया, इसकी आश्चर्य-जनक कहानी बहुत लम्बी है। दिन थोड़ा ही बचा है और मुझे अभी नहाना है। तुम लोगों का भी पूजन का समय निकला जाता है। इसलिये तुम सब उठो और नित्य कर्म करलो। सायंकाल को जब तुम फल-मूलों का आहार करके निपट कर फिर बैठोगे तब मैं आरम्भ से सब कथा कहूँगा। मैं जैसे-जैसे कहता जाऊँगा वैसे ही वैसे इसको अपने जन्मान्तर का ठीक-ठीक ज्ञान इस प्रकार होता जायगा मानो यह सब स्वप्न में हुआ हो।

मुनि के यह कहते-कहते दिन ढल गया और कबूतर के चरण के समान गुलाबी सूर्य आकाश में से नीचे लटकने लगा। फिर सूर्य अस्त होने पर पश्चिम समुद्र के तट में से निकलती लाल-लाल संध्या प्रवाल-लता के समान दीखने लगी। उस समय आश्रम में ध्यान होने लगा और होम की धेनु दुही जाने लगी। संध्या का क्षय होने पर मुनियों के हृदय को छोड़ सब आश्रम में भरपूर अंधेरा छा गया। फिर चन्द्रमा का उदय हो जाने से अमृत की रज के समान चाँदनी से सब जगत सफेद हुआ और खिले हुए कुमुद-वन का सुगंध लाता. रात के पहिले पहर का पवन धीरे-धीरे चलने लगा। तब आधी पहर रात बीतने पर हारीत आहार कर, मुझे लेकर मुनियों के साथ अपने पिता के पास जा पहुँचा और उनसे कहने लगा, पिता जी! सब तपस्वियों का हृदय आश्चर्य-जनक वृत्तान्त सुनने के कुतूहल से व्याकुल है और वे आपके पास मण्डल बाँध कर खड़े हैं। इस सुए के बच्चे की थकावट भी अब जाती रही है। इसलिए आप कहिए इसने पहिले जन्म में क्या किया था, यह कौन था और अब क्या होगा? हारीत के यह वचन सुन सब मुनियों को एकाग्र-चित्त से श्रवण में तत्पर हुआ जान महामुनि धीरे-धीरे बोले :—

३—दंडकारण्य के आश्रम में वैशंपायन के पूर्व जन्म का विभव वर्णन।

महामुनि ने कहा तुमलोगों को बहुत कुतूहल है इसलिए मैं कहता हूँ सुनो। अवन्ति देश में उज्जयिनी नाम की नगरी है जिसकी शोभा अमरलोक से भी बढ़कर है। उसके चारों ओर रसातल के समान गहरी पानी की खाई है और हाट की सड़के अगस्त्य के पिए हुए जल वाले समुद्र के समान चौड़ी हैं। उस नगरी की सीमा के पास की भूमि केवड़े की रज से धूसर रहती। वहाँ के विलासी-जन अत्यन्त बलवान होने पर भी परलोक से डरते हैं, और वे उदार तथा चतुर हैं। वह सब देशों की भाषा में प्रवीण, वक्रोक्ति में निपुण, और द्यूत आदि कलाओं मे पारंगत है। उस नगरी में कामिनियों के गहनों की कान्ति के कारण कभी अँधेरा न होने से चकवा-चकई का वियोग नहीं होता। वहाँ सौध के शिखरों में सोती हुई सुन्दरियों का मुँह देखकर, मानो काम-वश हुआ चन्द्रमा अपनी प्रतिमा के बहाने गाढ़ा चन्दन छिड़कने से शीतल हुई मणि-भूमि पर गिर कर लोटता हो। उस नगरी में पिंजरे में बैठे हुए सुग्गा और मैना पिछली रात जाग-जाग कर अत्यन्त ऊँचे स्वरमें प्रभात के मंगल गीत गाते है। इस प्रकार की उस नगरी में नल, नहुष, भरत, भगीरथ और दशरथ के समान प्रजा की पीड़ा का हरने वाला तारापीड़ नाम का राजा राज्य करता था।

अपनी भुजा के बल से जीते हुए तथा भय से चकित और

चंचल दृष्टि वाले राजा बड़ी-बड़ी दूर से आ कर तारापीड़ के चरणों की आराधना करने और भाग्य के अभ्युदय के समान लोग उनके चरित्रों को सुनते थे। जैसे इन्द्र के बृहस्पति, वृषपर्वा के शुक्र, दशरथ के वशिष्ठ, राम के विश्वामित्र, युधिष्ठिर के धौम्य, और नल के दमनक थे, वैसे ही तारापीड़ के शुकनास नामक ब्राह्मण मंत्री थे। वह शेषनाग की तरह पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ थे। चारों समुद्रों तक सब पृथ्वी पर उनके सहस्रों चर फिरते थे, जिससे वहाँ के अनेक राजाओं के साँस लेने तक की बात भी उन्हें ऐसे विदित हुए बिना नहीं रहती थी जानो सब भुवनतल अपना ही घर हो।

कभी-कभी जब रनिवास की स्त्रियों के साथ तारापीड़ जल-क्रीड़ा करता था, तब गृह-सरोवरों के जल में स्तनों का चन्दन घुल जाने से उनकी तरङ्गे धवल हो जाती थीं। स्त्रियों के मुख में भरी हुई मदिरा की घूँट के स्वाद से आनन्दित होकर वह कभी-कभी बकुल वृक्ष की तरह विकास पाता, कभी-कभी बलराम के समान चन्दन श्वेत कंठ में हिलती हुई कुसुम-माला पहन कर मद्य-पान करता, और कभी कभी नील वस्त्र से मुँह ढँक कर कृष्ण-पक्ष की रात्रि के प्रदोष के समय में संकेत करने वाली सुन्दरियों से मिलने जाया करता था। संक्षेप में जो कुछ भी वसुधा में अत्यन्त रमणीय मनोरंजक और उस समय के तथा भविष्य काल के अनुकूल था, उस सबका सुख राजा ने भोगा, पर उस सुख में न तो उसने अपने चित्त को लीन किया और न वह उसका व्यसनी ही हुआ। महिमंडल के सब कार्य्य समाप्त कर प्रजा का रंजन करने वाले ऐसे राजा की विषयोपभोग-लीला उसका भूषण थी। प्रजा

के अनुराग के कारण बीच-बीच में वह उन्हें दर्शन देता और प्रयोजन होने पर सिंहासन पर विराजमान होता था। उसका मन्त्री शुकनास उस बड़े भारी राज्य के भार को अपने बुद्धि-बल से अनायास ही धारण करता था। इस प्रकार मंत्री को राज्य का भार सौंप कर तारापीड़ यौवन–सुख के अनुभव में काल व्यतीत करता था। कुछ काल उपरान्त राजा तारापीड़ अन्य सब सांसारिक सुखों के प्रायः अन्त को पहुँच गया, परन्तु पुत्र के देखने का सुख उसको नहीं मिला। अतः ऐसे-ऐसे भोगों के होने पर भी जैसे-जैसे यौवन बीतने लगा वैसे-वैसे उसे अनपत्यता का सन्ताप बढ़ता गया।

एक दिन पट्ट-महादेवी विलासवती इसी सन्ताप में पलँग पर बैठ कर जब रो रही थीं, और उनके आसपास खड़ी हुई दासियों की दृष्टि चिन्ता से जड़ हो गई थी तथा बराबर आँसू गिरने से रानी का वस्त्र गीला हो गया था, संयोग से उसी काल हर्म्य में महाराज तारापीड़ का आगमन हुआ। राजा को देखते ही विलासवती ने उठ कर उनका सत्कार किया पर राजा ने तुरन्त उसे उसी पलँग पर फिर बिठा दिया, और आप भी वहीं बैठ गया। फिर उसके दोनों गालों से गिरते आँसू पोंछते-पोंछते वह कहने लगा, देवी! हृदय में प्रबल शोक को दाबकर तुम चुपचाप क्यों रोती हो? देखो यह तुम्हारी पलकें मोतियों के हार के समान, मानों अश्रु-बिन्दुओं का हार गूँथती हैं। प्रिये, आज तागड़ी उतार कर कमर को तुमने चुप क्यों कर रखा है, और आज पयोधरों पर चन्द्रमा के हिरन के समान काले अगरु की पत्र-रचना क्यों नहीं की है? हे देवि, प्रसन्न हो, दुःख का कारण कहो! मुझसे या मेरे किसी परिजन

से क्या कुछ अपराध हो गया है? मेरा जीवन और राज्य तुम्हारे अधीन है।

इतना कहने पर भी जब विलासवती ने कुछ उत्तर न दिया तब राजा उसकी दासियों से उसके अधिक-अधिक आंसू गिरने का कारण पूछने लगे। इतने में मकरिका नाम की ताम्बूल-वाहिनी ने राजा को उत्तर दिया, महाराज, यह बहुत समय से इस संताप को भोग रही हैं, परन्तु आपके हृदय को दुःख न हो इस कारण तनिक भी प्रकट नहीं होने देती थीं। आज चौदस थी, इस कारण यह भगवान महाकालेश्वर का पूजन करने के लिए गईं थीं और वहाँ महाभारत की कथा में इन्होंने जब से पुत्रहीन को स्वर्ग नहीं मिलता, यह सुना है तब से दासियों के नम्रतापूर्वक प्रार्थना करने पर भी न भोजन करती है, न शृंगार करती है, और न कुछ उत्तर ही देती है। केवल अश्रु-बिंदुओं की निरंतर वर्षा से मुख पर अन्धकार कर रही हैं।

उसके ऐसा कह चुकने पर थोड़ी देर चुप रह कर राजा ने लम्बी-लम्बी गर्म साँस लेकर कहा, देवि! जो वस्तु दैव के अधीन है, उसमें हम क्या कर सकते है? हम इस योग्य नहीं है जो देवता हम पर अनुग्रह करें। जन्मान्तर में हमने पुण्य नहीं किए है। पूर्व जन्म में प्राणी जो काम करते है, उनका फल उनको इस जन्म में मिलता है। यह अनपत्यता का शोक मुझे भी दिन-रात अग्नि के समान जलाता है और सब स्थान मुझे सूना लगता है और यह सब राज्य निष्फल देख पड़ता है। पर विधाता के सामने अपना कुछ वस नहीं। इसलिए देवि, यह सब शोक छोड़ो! धैर्य और धर्म में बुद्धि लगाओ, क्योंकि धार्मिक मनुष्यों के पास कल्याण की सम्पत्ति सर्वदा रहती है।

इतना कह कर राजा ने जल लाकर रानी के आँसू टपकाते तथा खिले हुए कमल के समान मुँह को अपने नए पल्लव के समान हाथों से स्वयं धोया। फिर उसने सैकड़ों प्रिय, और मधुर वचनों से रानी का शोक-निवारण कर बार-बार उसे आश्वासन दिया। राजा के चले जाने पर विलासवती ने शोक कम हो जाने से रीति के अनुसार गहने आदि पहन कर दिन का सब उचित काम किया, और तब से वह सब देवताओं की आराधना, ब्राह्मणों की पूजा और गुरुजनों की सेवा में अधिक आदर दिखाने लगी। जो कुछ कहीं से सुनने में आता, अब उसे ही वह संतान की इच्छा से करने लगतीं और अत्यन्त श्रम को भी कुछ न गिनती थीं। दिन-रात जलती गूगल की धूप से जहाँ अँधेरा हो जाता था, ऐसे चंडिका के मंदिरों में सफेद कपड़े पहन कर शरीर से शुद्ध हो उपवास करके वह मूसलों की शैय्या पर हरे कुश बिछा कर सोतीं, प्रतिदिन उठ-उठ कर सब रत्नों सहित सुवर्ण के तिलपात्रों का ब्राह्मणों को दान करतीं, कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को चौराहे पर बड़े-बड़े स्थानों को बनाए हुए चेटक के घेरों के बीच में अनेक प्रकार के बलिदान से दिक्पालों को प्रसन्न करके मंगल स्नान करतीं, और स्नान करने के अनन्तर हिलते हुए मणिमय कंकण वाले दोनों हाथों से चाँदी के पात्र में रखे हुए चावल के बिना टूटे दाने तथा दही की बलि स्वयं कौओं को देती थीं।

इस भाँति कुछ दिन पीछे एक बार जब रात प्रायः बीत गई थी, और तारे थोड़े-थोड़े मंद दीखते थे, जिससे आकाश बूढ़े कबूतर के पंख के समान धूम्र हो गया था, राजा ने स्वप्न में हथिनी के मुख में मृणाल की भाँति सौध शिखर पर सोती हुई

विलासवती के मुख में सकल कलाओं से परिपूर्ण चन्द्र-मण्डल को प्रवेश करते देखा। यह स्वप्न देखते ही राजा शीघ्र जाग पड़ा, और उसने शुकनास को तुरन्त बुलवा कर स्वप्न का वृत्तान्त कहा। शुकनास ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर दिया, महाराज! बहुत काल पीछे आज हमारा और प्रजा का मनोरथ सिद्ध हुआ। अब आप शीघ्र पुत्र का मुख-कमल देख आनन्दित होंगे। मैंने भी आज रात को स्वप्न में देखा है कि किसी शान्त-मूर्ति ब्राह्मण ने खिला हुआ सफेद कमल मनोरमा की गोद में रखा है। उस कमल में चन्द्रकला के समान सफेद सौ पंखुड़ियाँ थीं और उसमें से रस टपक रहा था और सहस्र केसर हिल रहे थे। वह ब्राह्मण धुले हुए कपड़े पहने हुए था, और उसका आकार दिव्य था।

थोड़े दिनों के पश्चात् देवताओं की कृपा से विलासवती में गर्भ ने इस तरह प्रवेश किया जैसे सरोवर में चन्द्र-बिम्ब प्रवेश करता है। जैसे-जैसे प्रतिदिन गर्भ धीरे-धीरे बढ़ता जाता था, वैसे ही वैसे समुद्र का बहुत सा पानी लेने के भार से मंद हुई मेघ-माला की भाँति विलासवती धीरे-धीरे चलती, और बार बार जँभाइयों के साथ आँखें मींच-मींच कर मंद-मंद साँस लेती थी। उनके स्तनों का अग्र-भाग वर्षा-ऋतु के मेघ के समान श्याम हो गया था, और गर्भ के कारण उनका रंग केतकी के समान फीका पड़ चला था।

सब परिजनों में प्रधान कुलवर्द्धना नाम की एक अत्यन्त बूढ़ी रनिवास की दासी थी। वह राज-कुल में रहने से चतुर और सदा राजा के पास रहने से प्रगल्भ हो गई थी और वह सब मंगल कार्य्यों को जानती थी। एक अच्छे दिन प्रदोष

समय जब राजा भीतर के सभा-मंडप में बैठा था उसके आस पास सुगंधित तेल से भरे हुए सहस्रों दीपक जल रहे थे, जिनसे वह नक्षत्रों के बीच में विराजमान पूर्ण चंद्रमा के समान तथा शेषनाग के फन की सहस्र मणियों के बीच में बैठे हुए नारायण के समान विदित होता था उस समय कुलवर्द्धना ने उसके पास जाकर कान में धीरे-धीरे विलासवती के गर्भ का समाचार कहा। उसका यह वचन सुनते ही राजा के सब अंग मानों अमृत-रस से सींच गए! उसके शरीर पर रोमांच हो आए, और वह आनन्द से विह्वल हो गया! मुस्कराहट से उसके गाल प्रफुल्लित हो गए और हृदय के ऊपर तक भर जाने से शेष हर्ष मानो दंत किरणों के बहाने बाहर निकलने लगा! राजा का ऐसा अदृष्ट-पूर्व हर्ष का उभार देख कर शुकनास ने तत्काल ताड़ लिया और राजा के पास सट कर धीरे-धीरे पूछा, महाराज! क्यों? क्या वह स्वप्न सच्चा हुआ? राजा ने हँस कर उत्तर दिया जो इसका कहना झूठ न हो तो सच्चा ही हुआ। पर मुझे विश्वास नहीं होता। मेरा भाग्य ऐसा कैसे हो सकता है? फिर भी चलो, उठो! स्वयं देवी के पास चल कर निश्चय करें क्या यह सच है।

यह कह कर उसने नर-पतियों को बिदा किया, और अपने शरीर के सब गहने उतार-उतार कुलवर्धना को दे दिए। फिर शुकनास के साथ वह चल पड़ा। विशेष हर्ष से उसका मन भर गया था और पवन से हिलते हुए नीले कमल के पत्ते की लीला का तिरस्कार करता हुआ उसका दक्षिण नेत्र फड़क-फड़क कर उसका अभिनन्दन कर रहा था।

इस भाँति उस समय भी सेवा के योग्य पीछे चलते कुछ परिजनों के साथ राजा तारापीड़ रनिवास में जा पहुँचा। हवा

से लहराती हुई स्थूल ज्योति वाली उल्काएँ उसके आगे-आगे चली जा रही थीं जिनके प्रकाश से उन अनेक आँगनों का अन्धेरा दूर होता जाता था। रनिवास में पहुँचकर शयनगृह में हिमालय के शिलातल के समान विशाल और गर्भवती स्त्री के सर्वथा योग्य पलंग पर राजा ने सोती हुई विलासवती को देखा। वह अत्यंत सफेद दो नए वस्त्र पहिने हुए थी और शयन-गृह में भूतादि से रक्षा के अनेक विधान भली-भाँति किए गए थे। सफेद चंदोवा बाँध कर उसकी कोरों पर मोती की झालरें लटकाई गई थीं, सिरहाने की ओर सुखपूर्वक नींद आने के प्रयोजन से धवल मंगल-कलश रखे गये थे, इधर-उधर सफेद सरसों बिखेर दी गई थीं, और नीम के हरे पत्ते बंधे हुए थे। रानी के पैर रखने के लिए एक ऊँची चौकी उसके पास रखी थी, जिसपर चाँदनी के समान सफेद चादर बिछाई गई थी। सुवर्ण की कटोरियों में रखे हुए दही के पूरे-पूरे टुकड़े जुदे-जुदे दीखते थे और बिना गूँथे फूल अंजुलि भर-भर कर बिखेरे गए थे। दासियों से शीघ्र लम्बे किए गए हाथ के सहारे बाएं घुटने पर हाथ रख कर हिलते हुए गहनों की मणियों की झनझनाहट के साथ उठती हुई विलासवती से बहुत आदर हुआ, बस, देवि! मत उठो, यह कह कर राजा उसके साथ उसी पलंग पर बैठ गया। पास ही एक दूसरा पलंग पड़ा हुआ था। उसपर शुकनास बैठ गया। रानी को प्रफुल्लित गर्भ सहित देख हर्ष के भार से मंद हुए मन से परिहास करते-करते तारापीड़ ने कहा, देवि, शुकनास पूछते हैं कुल-वर्धना का कहना सच है क्या?

यह सुनते ही विलासवती के गाल, ओंठ, और आँखों पर, मन्द-मन्द मुसकान चमक उठी, और दंत-किरणों के बहाने मानो

वस्त्र से मुँह ढँक कर लज्जा से उसने मुँह नीचे झुका लिया। किन्तु जब राजा ने बार-बार आग्रह सहित पूछा तब वह बोली, क्यों मुझे अधिक लज्जित करते हो? मैं कुछ नहीं जानती। इतना कह आँख की पुतलियों को तनिक तिरछी तथा मुँह को नीचा कर उसने राजा को किंचित् बनावटी क्रोध से देखा। पर उस कृत्रिम क्रोध की कुछ चिंता न कर अस्फुट हास्य से प्रकाशमान मुख से राजा फिर बोला, सुन्दर शरीर वाली! यदि मेरे वचनों से तुम्हारी लज्जा बढ़ती है, तो लो मैं चुप हूँ, परन्तु खिलती हुई पंखुड़ी वाली कलियों के समान स्वच्छ दीखते हुए चम्पा के समान कान्ति वाले इस अपने शरीर के पीलेपन को तुम किस प्रकार गुप्त रखोगी? नील-कमल-धारी चकवा-चकई के समान इन स्तनों को तुम कैसे छिपाओगी जो अग्रभाग श्याम होने से गर्भ-रूपी अमृत से सींचे जाने के कारण शान्त होती हृदय की शोकरूपी अग्नि के धूम को मानो उगल रहे हैं। इस प्रकार कहते हुए राजा से मुँह के भीतर हँसी छिपा कर शुकनास ने कहा, महाराज! महारानी को क्यों कष्ट देते हो? वे ऐसी बातों से लजाती हैं इसलिए कुलवर्धना के कहे हुए समाचार की बातचीत रहने दो। बहुत देर तक ऐसी-ऐसी परिहास की बातचीत हुई, और तब शुकनास अपने घर गया, और राजा ने वहीं वह रात बिताई।

कुछ समय उपरांत इच्छानुसार गर्भ-समय के मनोरथों के पूर्ण होने से आह्लादित हुई विलासवती ने अवधान पूर्ण होने पर एक शुभ दिन शुभ समय पर सब लोगों के हृदय को आनन्द देने वाले पुत्र को इस प्रकार जन्म दिया, जैसे मेघमाला मेघ-ज्योतिको जन्म देती है। राजकुमार के जन्म का उत्सव प्रति-दिन उसी

प्रकार बढ़ने लगा जैसे चन्द्रोदय से समुद्र बढ़ता है। आनंद के उसी महासागर में राजा तारापीड़ का हृदय भी पुत्र का मुँह देखने के लिए ललक रहा था. अतः अच्छा दिन आने पर ज्योतिषियों के बताए हुए शुभ मुहूर्त में उसने सब परिजनों को हटा कर शुकनास के साथ सूतिका-गृह को देखा। उस गृह के द्वार पर बहुत सी पुतलियाँ कढ़ी हुई थीं, और दो मणिमय मंगल-कलश रखे थे. अनेक भाँति के नये-नये पत्तों के ढेर लगाए गए थे. वंदनवारों के बीच में घंटियाँ बँध रही थीं और द्वार के दोनों ओर मर्यादा में बूढ़ी सौभाग्यवती स्त्रियाँ बैठी थीं जो गोबर से बहुत से चौक बनातीं, उन पर चित्त कौड़ियाँ चिपकातीं, बीच-बीच में उनमें गेरू आदि के सुन्दर रङ्ग भरतीं और कपास के फूलों के टुकड़े लगाती थीं। चन्दन के जल से धोई हुई दीवारों के ऊपर की ओर हल्दी की पीठी से चित्र काढ़ कर उनपर पंच-रङ्गे कपड़ों के टुकड़े चिपकाए गए थे और द्वार पर भाँति-भाँति के सुगंधित फूलों का हार पहना कर एक बूढ़ा बकरा बाँधा गया था। साँप की केंचुल और भैंसों के सींगों का चूरा वहाँ घी के साथ दिन-रात जल रहा था, बालक की रक्षा के लिए बलिदान हो रहा था और नंगी तलवार हाथ में लिए प्रहरी लोग गृह के चारों ओर घूम रहे थे।

जल और आग छूकर राजा उस गृह के भीतर गया। वहाँ पहुँचते ही उसने प्रसव से दुबली और फीकी पड़ी हुई विलासवती की गोद में सोए हर्ष-जनक पुत्र को देखा जो गर्भ की ललाई कम न होने से पृथ्वी को देखने के लिए नीचे उतरे हुए मंगल ग्रह के समान अवगत हो रहा था। ऐसे उस सुकुमार के मुख को स्पृहा से देख-देख कर राजा बहुत आनन्दित हुआ, और अपने को धन्य

समझने लगा। मंत्री शुकनास का भी मनोरथ सफल हो गया था। अतः वह भी प्रीति के कारण फैले हुए नेत्रों से कुमार के प्रत्येक अंग को देखता हुआ राजा से धीरे-धीरे कहने लगा, देखिए देखिए, महाराज! गर्भ में सिकुड़ने के कारण अभी कुमार के अवयवों की शोभा स्फुट तो नहीं हुई है, तथापि चक्रवर्ती राजा के लक्षण प्रकट हैं।

इस प्रकार वह कह ही रहा था। तब तक मंगल नाम का पुरुष वहाँ जल्दी जल्दी आया, और द्वार के पास खड़े हुए राजा लोगों ने सरक कर उसको मार्ग दिया। हर्ष के कारण उसे रोमांच हो आए थे। उसने हँसते-हँसते तत्काल राजा को प्रणाम करके कहा, महाराज! आपकी वृद्धि हो। आपके शत्रुओं का नाश हो! आपकी कृपा से आर्य शुकनास की ज्येष्ठ पत्नी मनोरमा के एक पुत्र पैदा हुआ है। अमृत-वृष्टि के समान यह सुन्दर वचन सुनकर राजा के नेत्र प्रीति से प्रफुल्लित हो गए और वह बोला, अहो, विपत्ति विपत्ति के, और संपत्ति संपत्ति के पीछे जाती हैं, यह उक्ति सच्ची है। इतना कहकर राजा तारापीड़ मङ्गल को पुरस्कार दे शुकनास के घर के लिए चल पड़ा और वहाँ जाकर उसने दूना उत्सव कराया।

छठी के रतजगे के पश्चात् नामकरण हुआ। स्वप्न में इसकी माता के मुख में मैंने पूर्ण चंद्र-मंडल को प्रवेश करते देखा था, यह विचार कर राजा ने पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ रखा। शुकनास ने राजा की अनुमति से अपने पुत्र का नाम वैशंपायन रखा। क्रम-पूर्वक चन्द्रापीड़ की मुण्डन आदि बाल-क्रियाएँ सम्पन्न हुईं और जब उसकी बाल्यावस्था बीत गई तब राजा तारापीड़ ने कुमार का मन खेल में लगने से रोकने के लिए नगरी से

बाहर, शिप्रा नदी के तट पर, आध कोस लंबा, देव-मंदिर के समान एक विद्यालय बनवा कर उसके आस-पास एक बड़ी ऊँची प्राचीर खिंचवाई और इसके पीछे एक बहुत चौड़ी गोल खाई खुदवाई। विद्यालय में बड़े-बड़े दृढ़ किवाड़ लगवाए और केवल एक ही द्वार से भीतर जाने का मार्ग रखा। वहाँ एक ओर अश्वशाला और नीचे की ओर अखाड़ा भी बनवाया गया और सब विद्याओं के आचार्यों को बड़े प्रयत्न से एकत्रित किया गया।

वहाँ पिंजरे में रखे गए सिंह के बच्चे की भाँति चंद्रापीड़ को रख कर बाहर जाने का निषेध कर दिया गया और बालकों के मन को आकर्षण करने वाली खेल की सब वस्तुएँ वहाँ से हटा दी गईं। फिर विद्या प्राप्त करने के लिए एक अच्छे दिन राजा ने चंद्रापीड़ को वैशंपायन के साथ आचार्यों को अर्पित किया। राजा विलासवती के साथ कुछ परिजनों को लेकर वहाँ नित कुमार को देखने जाया करता था। इस प्रकार राजा के नियंत्रण में रहते हुए चंद्रापीड़ ने आचार्यों के पास थोड़े ही समय में सब विद्याओं का अभ्यास कर लिया। प्रतिदिन व्यायाम करने से बाल्यावस्था में ही उसमें भीमसेन के समान स्वाभाविक महावीरता देखने में आई। खेल में वह हाथियों के बच्चों के कानों को हाथ से पकड़ कर सरलाई से झुका देता और वे इस प्रकार हिलते नहीं थे जैसे सिंह के बच्चे के चपेट में आ गए हों।

बल को छोड़ अन्य गुणों में वैशंपायन उसके बराबर ही था। वह चंद्रापीड़ का ऐसा विश्वास-पात्र और परम मित्र हो गया था मानों उसका दूसरा हृदय ही हो। वह भी एक क्षण

वैशंपायन के बिना अकेला नहीं रह सकता था। दिन जैसे सूर्य का अनुसरण करता है उसी प्रकार वैशंपायन भी चंद्रापीड़ के पीछे रहता और एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं होता था। कुछ काल व्यतीत होने पर इस प्रकार सब विद्याओं के अभ्यास में लगे हुए चंद्रापीड़ में यौवनारंभ दिखाई देने लगा। सौंदर्य के साथ-साथ उसकी छाती बढ़ने लगी और बंधुजनों के मनोरथों के साथ-साथ उसकी जंघाएँ भरने लगीं। तब उसे बुलाने के लिए राजा ने बलाहक नामक सेनापति को बुलाकर बहुत से सवार और पैदलों के साथ उसकी सवारी के लिए इंद्रायुध अश्व को देकर एक अच्छी घड़ी में वहाँ भेजा।

इंद्रायुध की ऊँचाई इतनी थी जो हाथ ऊँचे करने से ही मनुष्य उसकी पीठ को छू सकते थे। उसका मस्तक क्षण-क्षण में कभी बहुत ऊँचा और कभी बहुत नीचा हो जाता था और वेग रोकने से पैदा हुए अत्यन्त रोष से उसकी नासिका घुर-घुर शब्द करती थी जिससे ऐसा विदित होता था मानों वह अपने वेग के गर्व से सम्पूर्ण त्रिभुवन को उल्लंघन करने का विचार कर रहा हो। इंद्रधनुष के समान काली, पीली, हरी और लाल रेखाओं से उसका सब शरीर चित्रित था जिससे वह अनेक रंगों की झूल से ढँका हुआ हाथी का बच्चा ही जान पड़ता था। मुँह के भीतर लगाने से खड़-खड़ करते बाग के पैने अग्रभाग की आकुलता से पैदा हुई लार के झाग उसके मुँह में से इस प्रकार निकलते थे मानों समुद्र में निवास के समय उसके पिए हुए अमृत को घूँट हों। उसकी छाती बड़ी थी, मुँह पतला था, गर्दन मानों फैली हुई थी, और दोनों पार्श्व मानों चित्रित किए हुए थे।

चंद्रापीड़ को देखते ही साथ लाने को भेजी हुई सब सेना में

इस प्रकार खलबली मच गई जैसे चंद्रमा को देख कर समुद्र उमड़ने लगता है। लिवा जाने के लिए आए हुए सब लोगों का सम्मान करके इंद्रायुध पर आसीन हो, पास ही यथोचित घोड़े पर बैठे हुए वैशंपायन के साथ चंद्रापीड़ नगर की ओर चला। धूप रोकने के लिए उस पर छत्र लगाया गया था और दोनों ओर झले जाने वाले चमरों की हवा से उसके कर्ण-पल्लव हिल रहे थे और पैदल चलते परिजनों में से आगे दौड़ते सहस्रों युवक लोग, जय हो, चिरंजीवी हो, ऐसे मधुर शब्दों से और वन्दीजन मंगल वचनों से बार-बार उसकी प्रशंसा करते जाते थे.

फिर शरीरधारी कामदेव के समान चंद्रापीड़ को नगर की सड़क पर आया देख कर सब लोग अपना-अपना कार्य छोड़ चंद्रोदय के समय खिलते हुए कुमुद-वन के समान हर्ष से प्रफुल्लित हो गए। सब जगह किवाड़ खोल लेने से सहस्रों खिड़कियाँ प्रकट हो जाने से ऐसा जान पड़ता था मानों उस नगर ने भी चंद्रापीड़ के दर्शन करने के चाव से अपने सब नेत्र खोल लिए हों। उसको देखने के लिए उत्कंठित हुई नगर की स्त्रियाँ शृंगार करती-करती थोड़े बहुत से गहने पहन कर, जैसी की तैसी उतावली उठ अटारियों की चोटियों पर चढ़ गई। उन में से कितनी ही स्त्रियों के बाएँ हाथ में दर्पण थे जिससे वे ऐसी प्रगट होती थी मानों प्रकाशित पूर्ण चंद्र-मंडल सहित पूनों की रात्रियाँ हों। कितनी ही स्त्रियों के चरण घबराहट में चलने से उतरी हुई तागड़ी से रुँध गए थे जिससे वे ऐसी लगती थीं मानों बाँधने को मीकड़ लिए मंद-मंद चलती हुई हथिनियाँ हों!

क्षण भर में ही स्त्रियों की भीड़ के कारण राजसदन मानों

नारीमय और उनके महावर लगे हुए चरण-कमलों से सब भूतल मानों पल्लव-मय हो गया। उस क्षण उनमें आपस में नाना प्रकार के परिहास-युक्त विश्वास-युक्त, भय-युक्त, ईर्ष्या-युक्त, हास्य-युक्त क्रोध-युक्त, विलास-युक्त और काम-युक्त इस प्रकार रमणीय आलाप होने लगे—अरी, दौड़ने वाली मुझे भी संग लेती जा। अरी! तू देखने के लिए पागल हो गई है अपना दुपट्टा तो सँभाल ले। अरी! तू यौवन से उन्मत्त हो गई है, अपनी छाती तो ढँक ले, देख लोग तेरी ओर देखते हैं। अरी! झूठा विनय दिखाने वाली तू छिपकर क्यों देखती है? देख न वे खटके! अरी युवती! तू अपने स्तनों के भार से मुझे क्यों दबाती है? अरी कुपिता! ले तू ही आगे जा। अरी! क्या तू अकेली ही सारी खिड़की घेर लेगी? तू तो प्रेम से पराधीन हो गई है, मेरा दुपट्टा क्यों खींचती है? पर-पुरुष का मुँह न देखने की प्रतिज्ञा करके तूने यह सब सुख खो दिया है, सखि! कृपाकर उठ और इस साक्षात कामदेव के समान कुमार को देख! धन्य है विलासवती देवी को, जिसने सब पृथ्वी-मंडल के भार को सहन करने योग्य दिग्गज के समान इस कुमार को दिशा की तरह अपने गर्भ में रखा।

ऐसे तथा इसी प्रकार के और वचन कहती हुई वे युवतियाँ नेत्रों से मानों उसका पान करने लगीं, गहनों का शब्द करके मानों उसे बुलाने लगीं और आभूषण-रत्नों की किरण-रूपी रस्सी से मानों उसे बाँधने लगीं। फिर धीरे-धीरे राजकुमार राजसदन के पास आ पहुँचा और शीघ्र अश्व से उतर कर वैशंपायन का हाथ पकड़ उसने राजगृह में प्रवेश किया।

उसके आगे-आगे बलाहक विनीत भाव से मार्ग बतलाता जा रहा था। द्वार के पास सोने की छड़ी लिए सतयुग

के पुरुषों के समान बड़े शरीर वाले निश्चल द्वारपाल उपस्थित थे। अटारियों की चोटियों पर चौकोन कमरे कबूतरों के दरबे और बैठने के ऊँचे चबूतरे बने हुए थे। खिड़कियों से सहस्रों युवतियों के गहने की किरणें निकल रही थीं, जिनसे ऐसा ज्ञात होता था मानों सुवर्ण की जालियों का तार बिछाया हुआ हो। सभा-मण्डप में योग्य आसनों पर सहस्रों क्षत्रिय सामंत बैठे थे जिनमें से कोई जुआ, कोई चौपड़ खेल रहे थे कोई बीन बजाने और कोई चित्र-फलक पर राजा का चित्र खींचते थे। राजाओं के राजसभा में से उठ जाने के कारण वहाँ समेटे हुए बहुत से पटिक और जड़ाऊ कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं तथा सैकड़ों पालतू कस्तूरी-मृग इधर-उधर फिरते थे। वहाँ अनेक कुब्ज, किरात, नपुंसक, बधिर, वामन, मूक-जन, किन्नरों के जोड़े और वनमानुष लाकर रखे गए थे। धुले हुए स्वच्छ कपड़े और दुपट्टा धारण कर, पगड़ी बाँध कर सोने की छड़ी हाथ में लिए पलित से सफेद सिर वाले, गंभीर आकृति वाले, धीर स्वभाव के और अवस्था पूरी होने पर भी बूढ़े सिंह के समान सत्व का अवलंबन न छोड़ने वाले, कंचुकी वहाँ फिरते थे।

सब स्थानों में एकत्रित होकर पहिले से उचित स्थान पर खड़े हुए और मुकुटों को बहुत नीचा करने से ढीले हुए चूड़ामणि की किरणों से धरती का चुम्बन करते राजा लोग जैसे-जैसे प्रतिहार निवेदन करता गया उसी-उसी प्रकार एक-एक करके आदर सहित कुमार चंद्रपीड़ को प्रणाम करने लगे और पद-पद पर आचरणों में निपुण अन्तःपुर की बूढ़ी स्त्रियाँ भीतर से बाहर आ आकर उसका मांगलिक उतारा करने लगीं। इस रीति से एक साथ आकर प्रणाम करते प्रतिहारों के बताए हुए मार्ग से आगे

जाकर और भुवनान्तर के समान अनेक जाति के सहस्त्रों मनुष्यों से भरी हुई सात बड़ी-बड़ी ड्योढ़ियों को पार कर उसने मंदाकिनी के जल में देव-गज की भांति हंस के समान श्वेत पलंग पर बैठे हुए अपने पिता को देखा, और प्रतिहारी के, देखिये कहने पर उसी क्षण माथा बहुत नीचा कर उसे प्रणाम किया। आओ, आओ! कहते हुए राजा ने दूर से ही बाहु पसार चंद्रापीड़ को आलिंगन किया और थोड़ी देर अपने पास बैठाने के अनंतर उससे कहा जाओ, वत्स! अपनी माता को वंदना कर उसे आनंद दो। तब राजकुमार चंद्रापीड़ विनय-सहित उठ केवल वैशंपायन को लेकर रनिवास में प्रवेश करने योग्य राज-परिजन के बताए हुए मार्ग से अंतःपुर में गया।

माता के पास जाकर कुमार ने उसे प्रणाम किया। वह श्वेत चोली धारण करने वाली अंतःपुर की सहस्त्रों टहलनियों के बीच में सागर की तरंगों से परिवृत लक्ष्मी के समान दीखती थी। अत्यंत शांत आकृति वाली जोगिया वस्त्र धारण किये संध्या के समान सब लोगों के नमस्कार करने योग्य लम्बे कान वाली अनेक परिव्राजिकाएँ उसका मन बहला रही थीं। रानी ने राजकुमार को झट उठाकर आप ही उसका उतारा किया और उसके माथे को सूँघ कर बहुत समय तक उसका आलिंगन करती वह खड़ी रही और फिर वैशंपायन की भी योग्य निछावर करके तब वह बैठी। फिर विनय से भूमि पर बैठते चंद्रापीड़ को खींच कर उसकी इच्छा न होने पर भी हठ से उसने उसे अपनी गोद में बैठा लिया और बार-बार छाती से लगा, ललाट, छाती और कंधा पर बारंबार हाथ फेरती फेरती कहने लगी, वत्स! जैसे तुम्हारे पिता के प्रसाद से सर्वथा

आज मैं तुमको समस्त विद्या से पूर्ण देख सकी हूँ उसी भाँति मैं थोड़े ही दिनों में अनुरूप वधुओं सहित तुम्हें देखूँगी। इतना कह कर लज्जा और मुसकान के कारण नीचे झुके चंद्रापीड़ के गाल पर उसने चुम्बन किया।

फिर चंद्रापीड़ वहाँ से बाहर राजगृह के द्वार के पास खड़े हुए इंद्रायुध पर बैठ, पहिले के अनुसार ही राजा लोगों को साथ लेकर शुकनास से मिलने गया। शुकनास ने जल्दी उठकर आदर से कितने ही डग आगे आकर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनों में भरे हुए आनंद सहित चंद्रापीड़ और वैशंपायन को प्रेम-युक्त गाढ़ आलिंगन किया। राजपुत्र चंद्रापीड़ मानपूर्वक लाए हुए रत्नासन को छोड़ कर भूमि पर ही बैठा। वैशंपायन भी वैसे ही बैठा। चंद्रापीड़ के बैठने पर शुकनास को छोड़ अन्य सब नरेंद्र भी अपने-अपने आसन छोड़ भूमि पर ही बैठे। फिर थोड़ी देर चुप रहकर प्रीति से रोमांचित शुकनास राजकुमार से इस भाँति कहने लगा, वत्स चंद्रापीड़! आपको सब विद्या-संपन्न और तरुण हुआ देख आज सब गुरुजनों का आशीर्वाद सफल हुआ है। अहो! धन्य है उन प्रजाओं को जिनके आप भरत भगीरथ के समान शासक पैदा हुए हैं। वराह ने जिस प्रकार दन्त-वलय से पृथ्वी को उठाया था उसी प्रकार आप भी स्वबाहु से पिता के साथ पृथ्वी का भार कोटि-कल्प तक वहन करें।

इतना कह कर शुकनास ने गहने, कपड़े, फूल, अंगराग आदि से स्वयं ही सत्कार करके उसे विदा किया। वहां से उठकर अंतःपुर में जा वैशंपायन की माता मनोरमा से मिल कर राजकुमार बाहर आया और इंद्रायुध पर सवार होकर पिता के सदन में गया। वहां जाकर राजपुत्रों-सहित उसने स्नान भोजन आदि नित्य-

क्रिया की। फिर धीरे-धीरे दिन समाप्त होने पर गगन-सरोवर की विकसित कमलिनी के समान संध्या दीखने लगी और घर में लगे आम के पेड़ की डालियों पर लटकाए हुए पिंजरों में शुक-सारिकाओं के झुण्ड का बोलना बंद हो गया। धीरे-धीरे अश्वशालाओं में पिंजरे में बंद सिंह भी निद्रा-वश हो गए। तब चंद्रापीड़ पिता के पास थोड़ी देर बैठ कर, विलासवती से मिल अपने सौध में गया और वहां अनेक रत्नों की प्रभा से चित्रित हुए पलंग पर शेषनाग के फण-मंडल पर विष्णु के समान सो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सब अंतःपुर के अधिकारी और राजा तारापीड़ के परम प्रिय कैलाश नामक कुंचकी को उसने अपने निकट आते देखा। कैलाश के पीछे-पीछे एक अत्यंत गम्भीर आकृति की युवती चली आ रही थी जिसमें राजकुल में रहने से प्रगल्भ होने पर भी विनय की कमी नहीं थी। यौवन का कुछ-कुछ प्रकाश हो जाने से वह बाल-सूर्य सहित मानों पूर्व दिशा हो ऐसी दीखती थी। झन-झन करते मणि-नूपुर पहनने के कारण वह गुंजार करते कल-हंसों से अकुलाए हुए कमलवन की कमलिनी-सी और दिशाओं के मुख में फैलती हुई हार की किरणों में शरीर डूब जाने से क्षीर सागर में से ऊँचे वदन करके निकलती हुई लक्ष्मी के समान दीख पड़ती थी। उसके होंठ पर, ताम्बूल की एक श्याम रेखा पड़ी थी।

कंचुकी ने प्रणाम कर, आगे आ, अपना दाहिना हाथ भूमि पर टेक कर कहा, कुमार! महारानी विलासवती ने कहा है, महाराज ने पहिले कुलूतेश्वर की राजधानी को जीतने पर तभी से उसकी जिस पत्रलेखा नाम की लड़की को,

बाल्यावस्था में ही, बन्दीजनों के साथ लाकर अंतःपुर की टहलनियों में रखा और सदा जिसे अनाथ राजपुत्री जान स्नेह उत्पन्न होने से अब तक पुत्री के समान लाड़ से पाला है वही यह अब तुम्हारी ताम्बूल-वाहिनी होने के योग्य हुई है। इसलिए तुम इसे ग्रहण करो। इसे अन्य परिजनों के समान न समझ कर, बाला के समान लालन कर, अपनी चित्तवृत्ति के समान चपलता करने से रोकना और शिष्य के समान जान कर मित्र के समान इस पर पूरा विश्वास रखना। बड़े कुल के राजवंश में यह उत्पन्न हुई है, इसलिए यह ऐसे सब कामों के योग्य है। थोड़े ही दिन में यह अपने अत्यंत विनीत आचरण से तुमको संतुष्ट करेगी। इतना सुनकर सम्मानपूर्वक प्रणाम करती हुई पत्र लेखा को एकाग्र दृष्टि से बहुत देर तक देख कर चंद्रापीड़ ने, जैसी माता की आज्ञा, कह कर कंचुकी को लौटा दिया।

कुछ दीन बीत जाने पर राजा को चंद्रापीड़ का यौवराज्याभिषेक करने की इच्छा हुई। निदान अभिषेक का दिन निश्चित हुआ और जब समय पास आया तब एक दिन दर्शनार्थ आए हुए चंद्रापीड़ को विनीत होने पर भी अधिक विनीत करने के लिए शुकनास ने कहा, वत्स चंद्रापीड़! जो कुछ जानना चाहिए वह सब तुम जानते हो और सब शास्त्रों को तुमने पढ़ा है इसलिए तुमको उपदेश की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमें केवल यही कहना है कि यौवन का अंधकार स्वभाव से ही ऐसा घना होता है जिससे वह सूर्य से भगाया नहीं जा सकता, रत्न-प्रभा से हटाया नहीं जा सकता और दीपक के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता। विषय-रूपी विष के स्वाद से उत्पन्न हुआ मोह ऐसा विषम होता है जो जड़ी-बूटी

और मंत्रों से भी नहीं उतरता। इसलिए मैं तुमसे तनिक विस्तार-पूर्वक कहता हूँ। शास्त्र-रूपी जल से धुलने के कारण निर्मल होने पर भी यौवन के आरम्भ में बुद्धि प्रायः मलीन हो जाती है और विषयों में आसक्त होने से मनुष्य प्रायः अपना रास्ता भूल कर नष्ट हो जाते है। केवल तुम्हारे समान कुछ ही लोग होते है जो इससे प्रभावित नहीं होते।

गुरु-वचन निर्मल होने पर भी अयोग्य पुरुषके कान में, जल के समान, बड़ा शूल उत्पन्न करते हैं। परन्तु हाथी के शंखभरण की भाँति योग्य पुरुष के मुख को वे अधिक शोभायमान करते हैं। जैसे प्रदोषकाल का चंद्रमा संध्या समय के अंधेरे को दूर कर देता है उसी प्रकार गुरु का शान्तिजनक उपदेश अत्यंत मलीन दोषों को भी हर लेता है। अभी तुमने विषय रस का स्वाद नहीं पाया है इसलिए उपदेश ग्रहण करने का तुम को यही उचित समय है। कामदेव के शर-प्रहार से हृदय जर्जरित हो जाने पर उसमें से उपदेश चलनी में जल के समान बाहर निकल जाता है। जैसे जल में नहाने पर मैल धुल जाती है, उसी प्रकार गुरू के उपदेश से सब दोष दूर हो जाते हैं। राजाओं को इसकी विशेष आवश्यकता है, क्योंकि उनको उपदेश देने वाले जन थोड़े होते हैं।

जैसे सूजन से कान के छेद बंद हो जाते है उसी प्रकार उत्कट दर्प से राजाओं के कान बंद हो जाते हैं, और वे किसी की बात नहीं सुनते, और जो सुनें भी तो हाथी के समान आँखे बंद कर लेते हैं और उसपर कुछ ध्यान नहीं करते। पहिले लक्ष्मी को ही देखिये। मिलने पर भी यह महाकष्ट से ठहरती हैं। गुण-रूपी फंदे से सुदृढ़ बाँध कर स्थिर की जाने

पर भी यह खिसक जाती है और सरस्वती जिन पर कृपा करती है वह इनका मानो ईर्ष्या से आलिंगन नहीं करती। जैसे व्याध का गीत हिरणों का आकर्षण करता है उसी प्रकार यह इंद्रियों का आकर्षण करती है, और जैसे धुएँ से चित्र मिट जाते हैं उसी प्रकार यह सच्चरित्र को मिटा देती है। यह क्रोधावेश रूपी मगरों को उत्पन्न करने वाली नदी है। ऐसा कोई पुरुष मैं नहीं देखता जिसे लक्ष्मी ने बिना परिचय के ही गाढ़ आलिंगन देकर अनन्तर धोखा न दिया हो। ऐसी यह दुराचारिणी किसी भाँति दैवयोग से राजाओं का परिग्रह कर भी ले तो वे किसी काम के नहीं रहते।

जुआ खेलना विनोद है, पर-स्त्री-गमन चतुरता है, आखेट व्यायाम है, मद्य-पान विलास है, प्रमत्तता शौर्य है, स्वभार्या का त्याग अव्यसनिता है, गुरु-वचन का अनादर स्वाधीनता है, सेवक-जनों को अपराध करने पर दण्ड न देने से प्रशंसा होती है, नाचना, गाना, बजाना, और वेश्या में आसक्त रहना रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों पर ध्यान न देना महानुभावता है, पराभव सहन करना क्षमा है, स्वतंत्र आचरण प्रभुत्व है, मन की अस्थिरता उत्साह है और भले-बुरे में भेद न जानना निष्पक्षपात है इस प्रकार ठगने में कुशल कितने ही धूर्त राजाओं को समझाया करते हैं। वे सब दोषों को भी गुण बतलाते है परंतु आप मन में हँसते हैं और चाटुकारी करके राजाओं को ठगते है। धन-मद से राजाओं के चित्त मत्त हो जाते है और वे विवेक न होने से धूर्तों का कथन यथार्थ मान कर मिथ्याभिमान करते हैं। वे दर्शन देना भी बड़ा अनुग्रह समझते है, बात-चीत को भी पुरस्कार जानते हैं, जो नमस्कार के योग्य है

उनको नमस्कार नहीं करते, विद्वानों को विषय-भोग का सुख छोड़ धर्म में वृथा परिश्रम करने वाला समझ उनका उपहास करते हैं और बड़े-बूढ़ों के उपदेश को बुढ़ापे के प्रलाप के समान देखते हैं और जो दिन-रात हाथ जोड़ कर अन्य सब कार्य छोड़, निरन्तर देवताओं की भांति उनकी स्तुति करता है अथवा उनका माहात्म्य प्रसिद्ध करता है, उसको ही सर्वथा विश्वास-पात्र बना लेते हैं।

इसलिए, हे कुमार! ऐसी असंख्य, अति-कुटिल और कष्ट-प्रद चेष्टाओं से दारुण राज्य-शासन के व्यवहार में और ऐसे महा मोहकारी यौवनमें तुम ऐसा प्रयत्न करो जिसमें मनुष्य तुम्हारी हँसी न करें, साधु निंदा न करें, गुरु खिन्न न हों, मित्र उलाहना न दें और विद्वान शोक न करें। तुम स्वभाव से अत्यंत धैर्यवान हो और पिता ने बड़े-बड़े यत्न करके तुमको सब संस्कार कराये हैं। तुम अपने पूर्वजों से धारण किए गए कुल-क्रमागत राज्य-भार का वहन करो, शत्रुओं के सिर को नीचा करो, बंधुवर्ग की उन्नति करो और अभिषेक हो जाने के अनंतर दिग्विजय का आरम्भ कर सर्वत्र भ्रमण कर सप्त-द्वीप रूपी भूषण वाली पिता की जीती हुई पृथ्वी को फिर जीतो। शुकनास के कहने के पीछे चंद्रापीड़ उपदेश के ऐसे निर्मल वचनों से, मानो धुल गया हो, इस प्रकार हृदय में हर्षित होकर वहाँ कुछ देर ठहर अपने मंदिर में गया।

——*※*——

४—दिग्विजयी कुमार चंद्रापीड़ ।

कुछ दिन बीत जाने पर राजा ने स्वयं ही मंगल-कलश उठाकर एक अच्छे दिन पुरोहित के राज्याभिषेक की सब मंगल-सामग्री तयार कर देने पर, शुकनास और अनेक सहस्र राजाओं के साथ सब तीर्थों से सब नदियों से और सब समुद्रों से लाई हुई सब ओषधियों, सब फलों, सब मिट्टियों और सब रत्नों से परिपूर्ण, आनंदाश्रु मिश्रित, मंत्रों से पवित्र हुए जल से राजकुमार का अभिषेक किया और सिंहासन पर बैठ कर चंद्रापीड़ ने सब राजा लोगों का यथायोग्य सम्मान किया। फिर कुछ देर उपरांत दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने के समय का सूचक, प्रलयकाल की मेघ-घटा के घोष के समान घर-घर शब्द करता, सुवर्ण के डंडों से बजाया गया प्रस्थान का धौंसा इस प्रकार गर्जना करने लगा जैसे मंदराचल के आघात से समुद्र अथवा युगांत में महा-भूतों के आपस में टकराने से भूतल गर्जन करता हो। बाहर आकर चंद्रापीड़ ने जिस पर पत्रलेखा पहिले ही चढ़ कर एक आसन पर जा बैठी थी ऐसी हथिनी पर चढ़ कर चलना आरम्भ किया।

चंद्रापीड़ के चलते ही सब प्रस्थानोचित मांगलिक क्रिया हो चुकने पर, सफेद वस्त्र और सफेद फूलों से शोभित वैशंपायन पीछे चलती बड़ी सेना सहित शीघ्रता से हथिनी पर बैठ कर अपने सदन से उसके पास आ गया। फिर. युवराज निकला यह सुन कर इधर-उधर से दौड़ी हुई

सेनाओं के भार से उस समय पृथ्वी मानों चलायमान हुए पर्वतों से पीड़ित समुद्र की तरंगों में घुसी हो, इस भाँति काँपने लगी। फिर धीरे-धीरे सेना के क्षोभ से उत्पन्न हुई धूल उड़ने लगी। पृथ्वी के अनेक वर्ण होने के कारण वह कहीं बूढ़े मत्स्य की छाती के समान धुँधली, कहीं ऊँट के बाल के समान मटियाली कहीं बूढ़े हरिण के रोम के समान मलीन, कहीं धुले हुए रेशमी वस्त्र के तागे के समान पाण्डुर, कहीं पके हुए मृणाल की डंडी के समान धौली, कहीं बूढ़े वानर के बालों के समान कपिल और कहीं महादेव के बैल के जुगाली करने से पैदा हुए झाग के समान श्वेत थी। राजाओं की सेना का बड़ा भार न सहन कर सकने से पृथ्वी उस भार को उतारने के लिए इस रज के आकार में मानो फिर अमरलोक में चढ़ रही थी। निदान सब दिन धूलमय हो गया और दिशाएँ ऐसी दीखने लगीं मानो उन पर कुछ लिख दिया गया था।

पहिले दिन की यात्रा संपूर्ण कर युवराज डेरे में गए और सब राजा और प्रधान इकट्ठे होकर अनेक कथाओं से उनका मनोरंजन करने लगे। राजकुमार ने दिन के अनंतर रात्रि भी पास ही एक पलंग पर बैठे हुए वैशंपायन और दूसरी ओर अपने पास ही भूमि पर बिछे हुए पटिक पर सोती पत्रलेखा के साथ कुछ-कुछ देर पिता, माता और शुकनास की बातचीत करते-करते निद्रा न आने से प्रायः जागने में ही बिताई। फिर सबेरे उठ कर पहिले ही की भाँति कहीं ठहरे बिना प्रयाण किया और पड़ाव-पड़ाव पर बढ़ती सेना से वह धरती को जर्जरित करता नदियों को छलकाता तालाबों को खाली करता, वनों को चूर करता, ऊँचे-नीचे स्थानों को चौरस करता, गड्ढे भरता और टीलों को

नीचा करता चलता गया। इस प्रकार वह उन्नतों को नीचा करता नम्र को उन्नत करता, जगह-जगह राजकुमारों का अभिषेक करता, भेंट स्वीकार करता, स्मृतिचिह्न बनाता, आज्ञा-पत्र लिखाता, और ब्राह्मणों का पूजन करता, तीन वर्ष सब पृथ्वी में फिरा और पहिले पूर्व दिशा को, फिर दक्षिण दिशा को और पीछे पश्चिम को और सबसे पीछे सप्त ऋषियों के तारों से विचित्र दीखती उत्तर दिशा को दिग्विजय किया।
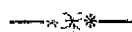
५—किरात देश में किन्नर-मिथुन के अहेर में तपस्विनी से भेंट।

राजकुमार ने इस रीति से यथाक्रम भूमि की प्रदक्षिणा कर फिरते-फिरते एक समय कैलाश के पास घूमते और हेमकूट में रहते किरातों का सुवर्णपुर नाम का निवास-स्थान जीत लिया और वहाँ अपनी सेना को विश्राम देने के लिए वह कुछ दिन तक ठहर गया। निदान एक दिन जब वह इंद्रायुध पर बैठ कर वहाँ आखेट के लिये निकला तब वन में फिरते-फिरते पहाड़ की चोटी पर से उतरा हुआ एक किन्नरों का जोड़ा उसे अचानक दीख पड़ा। इस अपूर्व दर्शन से उसको बड़ा कुतूहल हुआ और उन्हें पकड़ने की इच्छा से अपना घोड़ा आगे बढ़ाकर वह उनके पास जाने लगा परंतु वह पुरुष के दर्शन से भयभीत होकर भागने लगे। चंद्रापीड़ एँड मारकर इंद्रायुध को दूने वेग से दौड़ाता अकेला ही उनके पीछे अपनी सेना से बहुत दूर जा निकला, परंतु जिन किन्नरों के जोड़े के पीछे वह वेग से दौड़ा था वह उसके देखते-देखते ही सामने के ऊँचे पहाड़ की चोटी पर चढ़ गए। तब चंद्रापीड़ ने अपनी दृष्टि को, निराश हो, उनकी ओर से फेर लिया। उस समय घोड़े के और अपनी देह के थकावट से निकले पसीने को देखकर थोड़ी देर ठहर वह आप ही हँस कर सोचने लगा, अरे मैंने क्यों बालक के समान वृथा ही अपनी आत्मा को श्रम दिया है? इस किन्नरों के जोड़े को पकड़ने या न पकड़ने से मुझे क्या प्रयोजन था?

महावन में घोड़े की शीघ्रगामिता के कारण राजकुमार ने मार्ग भी नहीं देखा था जो पीछे लौट सके और उस प्रदेश में बड़े यत्न से भटकने पर भी कोई मनुष्य नहीं दीखा जो उसे सुवर्णपुर का मार्ग बतलाए। जब वह इस चिंता में पड़ा हुआ था उस समय, बहुत से लोगों द्वारा सुवर्णपुर पृथ्वी के सब देशों की उत्तर दिशा की अंतिम सीमा है, सुनी यह बात उसे स्मरण हुई, इसलिए केवल दक्षिण दिशा ही की ओर चलना चाहिए, यह निश्चय कर बाएँ हाथ से बाग खींच कर उसने घोड़े को मोड़ा।

घोड़े को मोड़ कर चंद्रापीड़ सोचने लगा, यह इंद्रायुध बहुत थक गया है, इसलिए इसको थोड़ी सी घास खिला कर किसी तालाब में, या नदी के जल में नहला इसकी थकावट दूर कर और स्वयं भी जल पी, किसी पेड़ के नीचे छाया में थोड़ी देर ठहर करके तब आगे चलना चाहिए। ऐसा विचार कर पानी की खोज में बारंबार इधर-उधर दृष्टि फेंकता वह आगे बढ़ा। फिर कुछ दूर जाकर उसने कैलाश पर्वत के जल के भार से मंद हुई मेघमाला और कृष्णपक्ष की रात्रियों की इकट्ठी हुई अंधकार-राशि के समान एक ओर विस्तीर्ण वृक्षों का मंडप देखा और उसने उस कुंज में प्रवेश किया। घुसते ही कुंज के बीच में उसने एक अत्यंत मनोहर, नेत्रों को प्रसन्न करने वाला सरोवर देखा। उस सरोवर में से ब्रह्मा ने बारंबार अपना कमंडलु भर कर उसके पानी को पवित्र किया था, बालखिल्य ऋषियों के झुंड ने सैकड़ों बार वहां संध्योपासना की थी, कितनी ही बार सावित्री ने जल में उतर कर देवताओं की पूजा के लिए उसमें से कमल तोड़े थे और

सप्तर्षि-मंडल ने सहस्रों बार वहाँ आकर उसको पवित्र किया था।

ऐसे सरोवर के केवल देखने से ही चंद्रापीड़ की थकावट जाती रही और उसने मन में विचार किया, अहो ! मेरा किन्नर-मिथुन का अनुसरण विफल होने पर भी इस तालाव के देखने से सफल हुआ ! फिर वह उस सरोवर के दक्षिण तट पर जा पहुँचा। वहाँ बिखरी हुई भस्म से सूचित होता था मानो स्नान करके बाहर आए हुए महादेव के गणों ने उस स्थान पर अपने मस्तकों में भस्म को लगाया था और वहाँ पैरों के बड़े-बड़े चिह्नों से अनुमान होता था मानों पार्वती का सिंह उस मार्ग से पानी पीने उतरा था।

वहाँ पहुँच कर चंद्रापीड़ घोड़े से उतर पड़ा और इंद्रायुध को वृक्ष की जड़ से बाँध कर उसने कटार से सरोवर के किनारे-किनारे उगी हुई घास काटी और इंद्रायुध के सामने डाल दिया। फिर सरोवर में आप स्नान करके लता-मंडप में पड़ी हुई शिला पर उसी क्षण तोड़े जाने के कारण शीतल और जल-कणिका से भरे हुए मृणालयुक्त कमल के पत्तों का बिछौना बिछा दुपट्टे को सिरहाने रख कर वह वहीं लेट रहा। इस प्रकार मुहूर्त भर विश्राम करने के पश्चात् उसने उसी सरोवर के उत्तर तीर की ओर होते हुए किसी दिव्य गान की भनक सुनी।

घास चरना छोड़, कान खड़े कर, उस ओर मुँह फेर, ऊँची गर्दन करके इंद्रायुध ने भी उसे सुना था। उस गान के साथ वीणा के तारों की झनकार भी सुनाई देती थी। उसे सुनकर ऐसे निर्जन वन में संगीत शब्द कहाँ से आया यह सोच उत्कंठित हो कमल के पत्तों की शैय्या से उठकर वह जिस दिशा

म से गीत-ध्वनि आती थी उसी की ओर देखने लगा। गीत-ध्वनि कहाँ से आती है यह जानने की इच्छा से उसने वहाँ जाने का विचार किया। इसलिए इंद्रायुध पर बैठ आगे दौड़ते वन-हिरनों के बिना पूछे बताए हुए मार्ग पर वह ध्वनि की ही खोज में उस सरोवर के पश्चिम तीर की वन-लेखा में होकर आगे बढ़ा और सामने आती कैलाश की आह्लादक और पवित्र पवन से संतुष्ट होकर उस प्रदेश में जा पहुँचा।

उस सरोवर के पश्चिम तीर पर चाँदनी के समान शुभ्र-प्रभा से सब प्रदेशों को लपेत करती हुई, कैलाश पर्वत के एक भाग की चंद्रप्रभा नाम की तलहटी पर बने हुए महादेव के एक शून्य सिद्धमंदिर को देख कुमार मंदिर के भीतर गया। पवन से उड़कर इधर-उधर आते केतकी के पराग से शरीर धवल हो जाने के कारण वह ऐसा लगता था मानो मंदिर में जाने के पुण्य ने उसे घेर लिया हो। वहाँ उसने चराचर के गुरु, संपूर्ण-त्रिभुवन-वंदित-चरण, भगवान चतुर्मुखी महादेव को देखा और उनकी मूर्ति के सामने ब्रह्मासन रचकर पाशुपत व्रत धारण करके बैठी हुई एक कन्या का दर्शन किया। वह कन्या देखने वाले के मन को भी, नेत्रों के मार्ग से उसके भीतर प्रवेश करके मानों लपेत कर देती थी। शरीर के आस-पास अत्यंत धवल प्रकाश फैलने से वह ऐसी लगती थी मानो क्षीर-सागर में डूबी हो, कामदेव के शरीर के लिए शिव की आराधना करके उनको प्रसन्न करने को आई हुई मानों साक्षात रति ही हो, महादेव के दक्षिण मुख की हास्य छवि मानों बाहर निकल कर बैठी हो आने वाले सतयुग के

बीज की कला मानों युवती-रूप में स्थित हुई हो अथवा बलराम की देह-प्रभा मानों मदिरा का रंग चढ़ने से गल कर गिर गई हो ! वह हाथी दाँत से ही मानों गढ़ी गई थी, चंद्रमा की किरणों की कूँची ही से स्वच्छ की गई थी और पारे की धारा से ही मानों धोई गई थी !

कंधे तक लटकती हुई जटा उसके मस्तक को शोभायमान करती थी और सूर्य के रथ के घोड़ों के खुरों से खुदे हुए नक्षत्रों के चूर्ण के समान श्वेत भस्म से उसका ललाट अलंकृत था। निरंतर गान से हिलते हुए वर्णों के समान अत्यंत स्वच्छ दन्त-किरणों से वह, महादेव को मानों, फिर से स्नान करा रही थी और मोक्ष-द्वार के पास रखे हुए कलशों के समान कांतिमान, स्तनयुग से वह हंसों के एक जोड़े सहित श्वेत गंगा के समान ज्ञात होती थी। जिसकी अँगुलियों में अंगूठियाँ थीं तथा त्रिपुण्ड लगाने से बची हुई भस्म से जो श्वेत हुआ था ऐसे दक्षिण हाथ से वह अपनी पुत्री के समान गोद में रखी हुई हाथी दाँत की वीणा बजा रही थी और वीणा के साथ-साथ महादेव की स्तुति का गान भी कर रही थी।

कुमार चंद्रापीड़ एक वृक्ष की डाली से घोड़े को बाँध कर भगवान महादेव के पास गया और भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके उस दिव्य युवती को टकटकी बाँधकर निश्चल दृष्टि से देखने लगा। उसकी रूप सम्पत्ति, कांति और शांति से विस्मित हो वह विचारने लगा, अहो ! जगत में प्राणियों को कैसे-कैसे अवसर अनसोचे ही मिल जाते हैं ! मृगया में अकस्मात किन्नर-मिथुन का व्यर्थ अनुसरण कर मैंने यह अत्यंत मनोहर, मनुष्यों की पहुँच से बाहर, दिव्यजनों के फिरने योग्य प्रदेश देखा ! फिर

वहाँ पानी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सिद्ध पुरुष जिसके जल का उपयोग करते हैं ऐसा मनोहारी यह सरोवर देखा ! फिर उसके तीर पर सोते-सोते दिव्य गीत सुना और उसका अनुसरण करने से यह मनुष्यों को दुर्लभ दर्शन वाली दिव्य कन्या देखी ! इसलिए यदि यह मेरे सामने से सहसा अंतर्धान न हो जाय, कैलाश के शिखर पर चढ़ न जाय, अथवा गगन में उड़ न जाय तो मैं उसके पास जाकर: तुम कौन हो, तुम्हारा क्या काम है, और क्यों तुमने ऐसी युवावस्था में यह व्रत ग्रहण किया है उससे अवश्य पूछूँगा ! इस प्रकार निश्चय कर वह मंडप के भीतर स्तम्भ के सहारे बैठकर गान की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगा ।

गीत अंत होने पर वीणा बंद कर वह कन्या उठी, और महादेव को प्रणाम कर, पीछे फिर, पुण्यों से मानों स्पर्श करती हो, इस भाँति चंद्रापीड़ से कहने लगी, अभ्यागत ! मैं आपका स्वागत करती हूँ । महाभाग चलिए, मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए । उसके यह वचन सुनकर चंद्रापीड़ उठा और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, भगवति ! आप की जो आज्ञा, विनीत भाव से यह कह, शिष्य की भाँति उसके पीछे-पीछे चला । लग-भग सौ डग चलने पर उसने एक गुफा देखी जिसके भीतर बहुत से मणिमय कमंडल रखे हुए थे । उस गुफाके द्वार के पास चंद्रापीड़ एक शिलातल पर बैठ गया और वह कन्या वल्कल की शैय्या के सिरहाने वीणा रखकर, पत्ते के दोने में झरने में से अर्घ्य जल ले आई । तब उसके बहुत आग्रह करने पर कुमार ने सब आतिथ्य सत्कार को विनय सहित सिर को बहुत नीचा करके स्वीकार किया ।

अतिथि का सत्कार करके, एक दूसरे शिलातल पर बैठ,

थोड़ी देर चुप रह कर उस देवकन्या ने जब राजपुत्र से उसका वृत्तांत पूछा तब उसने दिग्विजय से आरम्भ कर, किन्नर-मिथुन का अनुसरण और वहाँ आगमन तक का सब वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर कन्या उठी और अपना भिक्षा-कपाल ले, आश्रम के पीछे वृक्षों के नीचे घूमने लगी। अल्प काल ही में अपने आप गिरे हुए फलों से उसका पात्र भर गया। फिर लौटकर उसने चंद्रापीड़ से उन फलों का आहार करने के लिए कहा। अमृत-रस के समान मधुर फल भक्षण कर और हिम के समान ठंडे, झरने के जल को पीकर राज-कुमार, जब तक उस कन्या ने भी फल-मूल का आहार किया, तब तक एकांत में बैठा रहा। इस प्रकार आहार कर जब वह कन्या संध्या-काल की सब क्रिया कर चुकी और एक शिलातल पर निश्चिंत बैठी तब धीरे-धीरे उसके पास जा, थोड़ी दूर पर बैठ, चंद्रापीड़ उससे विनय-पूर्वक कहने लगा, भगवति! ऐसे कुसुम-सदृश सुकुमार नव यौवन में आपने यह कठोर व्रत क्यों ग्रहण किया है, यह मुझे बहुत अद्भुत लगता है। आपको मैंने जब से देखा है तब से मुझे इस बात का बड़ा कुतूहल है। इसलिए जो अधिक खेद न हो तो अपना वृत्तांत कह कर मुझे अनुगृहीत कीजिये।

चंद्रापीड़ के यह वचन सुनकर वह कन्या विचारों में कुछ मग्न हो थोड़ी देर चुप रह कर, लम्बी साँस लेकर, बड़े-बड़े आँसू टपका कर चुपचाप रोने लगी! उसको रोते देखकर चंद्रापीड़ उस समय चिन्ता करने लगा और अपने को ही शोक-स्मरण का हेतु होने से अपराधी समझ, उठकर उस झरने में से अँजुली भरकर उसका मुँह धुलाने के लिये जल ले आया।

उस कन्या की आंखों में से आंसू बराबर बह रहे थे तो भी राज-कुमार के अनुरोध से वह भीतर में तनिक लाल हुए अपने नेत्रों को धोकर वल्कल के पल्ले से अपना मुँह पोंछ कर, लम्बी और गरम सांस ले धीरे-धीरे उनसे बोली, राजकुमार! मेरे समान पापिनी स्त्री के जन्म से वैराग्य ग्रहण करने का वृत्तांत सुनने से लाभ नहीं है तथापि आपके कुतूहल को देखकर मैं कहती हूँ।

—*—
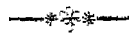
८—गांधर्व लोक में देवलोक के अग्रदूत की करुण कथा

हे राजपुत्र ! सुनिये। देवलोक में अप्सरा नाम की जो कन्या रहती हैं उनके चौदह कुल हैं जिनमें से दो कुल दक्ष प्रजापति की बहुत सी कन्याओं में से मुनि और अरिष्टा नाम की दो कन्याओं के गंधर्वों के साथ समागम होने से उत्पन्न हुए हैं; और यह दोनों कुल गांधर्व कुल कहलाते हैं यह तो आपने सुना ही होगा। इस कुल के मुनिका, चित्रसेनादि अपने पंद्रह भाइयों से गुणों में बढ़ा हुआ सोलहवां चित्ररथ उत्पन्न हुआ जिसे इंद्र ने अपना मित्र बना कर उसके प्रभाव की अधिक वृद्धि की। यहाँ से थोड़ी दूर भारतवर्ष की उत्तर दिशा के निकटवर्ती किंपुरुष देश में, हेमकूट नाम के वर्ष पर्वत पर वह चित्ररथ रहते हैं। उन्होंने ही यह चित्ररथ नाम का अत्यंत मनोहर कानन बनवाया है, अच्छोद नाम का यह बड़ा सरोवर खुदवाया है और भगवान महादेव को स्थापित किया है।

दूसरे गांधर्व कुल में अरिष्टा के तुंबरू आदि छः पुत्रों में ज्येष्ठ जगद्विख्यात हंस गंधर्व भी असंख्य गांधर्व परिवार के साथ उसी पर्वत पर रहते हैं। चंद्र-किरणों में से जो अप्सराओं का आठवाँ कुल उत्पन्न हुआ था उसमें, चंद्र की सब कलाओं के पूर्ण लावण्य से ही मानो बनाई गई हो, ऐसी त्रिभुवन के नेत्रों को आनन्द देने वाली मानों दूसरी गौरी हो ऐसी गौरी नाम की, चंद्रकिरण के समान ही श्वेत वर्ण की, कन्या उत्पन्न हुई। गौरी के साथ हंस का विवाह

हुआ और उन दोनों महात्माओं को केवल शोकातुर करने के लिए ही मैं ऐसी लक्षण-हीन पुत्री उनके उत्पन्न हुई। अन-पत्यता के कारण मेरे पिता ने मेरे जन्म-समय पुत्र-जन्म से भी अधिक उत्सव मनाया था।

अपनी बाल्यावस्था को मैंने पिता के सौध में ही बिताया। पीछे धीरे-धीरे मेरे शरीर में नवयौवन ने प्रवेश किया। एक समय की बात है जब सब जीव-लोक के हृदय को आनंददायक चैत्र मास के दिनों में नये कमल-वन खिल रहे थे, आम की कोमल कलियों का कलाप कामुकों को उत्कंठित कर रहा था और मदमत्त कामिनियों के मुख से छिड़के गए बकुल वृक्ष पुलकित हो रहे थे, तब मैं माता के साथ, बसंत के कारण अधिक विकसित कमल, कुमुद, कुवलय और कह्लार-युक्त इस अच्छोद सरोवर में एक बार नहाने के लिए आई।

इस अत्यन्त मनोहर प्रदेश देखने के लोभ से आकृष्ट हो सखियों के साथ मैं जब इधर-उधर घूम रही थी तब मुझे सहसा एक भाग में वन-पवन से न जाने कहाँ से लाई गई, सारे वन के प्रफुल्ल होने पर भी अन्य सब पुष्पों की परिमल लजाती हुई मनुष्य लोक में दुर्लभ एक दिव्य कुसुम-गंध प्राप्त हुई। यह कहाँ से आई ऐसा कुतूहल उत्पन्न होने से मैं तनिक आंख मीच कर, पगली भौंरी सी उस कुसुम-गंध से खिंचकर, चंचल हो कर, न जाने कितने ही पग आगे-आगे चली गई! मेरे चलने से हिलते मणि-नूपुर की झंकार से सरोवर में से कलहंस दौड़ने लगे!

निदान मैंने महादेव के नयनों में से निकली हुई अग्नि से जलाए गए मदन के शोक से ग्रस्त होकर तप करते, वसंत के

समान, और संपूर्ण मंडल की प्राप्ति के लिए व्रत धारण किए हुए शिव-मस्तक के चंद्र के समान, स्नान करने के लिए आए हुए एक अत्यंत मनोहर मुनि-कुमार को देखा।

उनकी जटा गोरोचन के रस में डुबाए हुए मंगल-सूत्र के समान सुकुमार और पीली तथा उनकी नासिका लंबी और ऊँची थी। नव यौवन का राग उनके हृदय में प्रवेश नहीं कर सकता था इस कारण ही मानों उनका अधर लाल था। मदन-धनुष की कुंडलाकार की हुई डोरी, अथवा तप-रूपी सरोवर की कमलिनि के मृणाल के समान उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया था। उनके एक हाथ में, डंडी-सहित वकुल-फल के समान कमंडल और दूसरे में काम के विनाश से शोकातुर हो रुदन करती रति के मानो अश्रु-बिंदुओं की ही रची एक स्फटिक की अक्षमालिका थी। आकाश-गंगा के जल में मानो धोया हुआ तथा वृद्ध चकोर के लोचन के समान लाल मंदार वृक्ष का वल्कल उनको वस्त्र का काम देता था। वह ब्रह्मचर्य का मानो अलंकार, धर्म का मानो यौवन और सरस्वती का मानो विलास और स्वयंवर-पति थे!

ऐसे उन मुनिकुमार के मुख-मंडल को बार-बार देख मैंने उनके कान में खोंसी हुई, अमृत-बिंदु टपकाती, एक अदृष्ट-पूर्व कुसुम-मंजरी देखी जो कृत्तिका नक्षत्र के ताराओं के गुच्छों के समान शोभायमान थी। अन्य सब पुष्पों की सुगंधि को ढकने वाली यही वह परिमल होगी इस प्रकार मन में निश्चय कर उस युवा मुनि को देखती-देखती मैं विचार करने लगी, अहा! विधाता के रूप-संपत्ति देने के साधनों के भंडार में कभी कमी नहीं होती। मैं इस प्रकार का चिंतन करती, लंबी साँस लेती,

निमेष-शून्य, कुछ मिंची हुई झाँई आँख से, मानों उनसे कुछ मांगती और मैं तेरे अधीन हूं, ऐसा कहती, उनके सामने हृदय को अर्पण करती, बहुत देर तक उनको देखती रही। उस समय मेरी इंद्रियाँ मुझको उठाकर उनके पास मानो लिए जारही थीं।

अपनी यह दशा देख मैंने सोचा कहाँ तो यह देदीप्यमान तेज और तप का पुंज, और कहाँ साधारण जनों को प्रिय मदन की मेरी यह चेष्टा! निस्संदेह यह कुमार मुझे यों देख कर अपने मन में हँसता होगा। फिर मुनिजनों को कुपित होना कुछ कठिन भी नहीं होता, अतः ऐसा न हो यह रुष्ट होकर मुझे शाप दे दे। यह विचार कर मैंने लौटना चाहा, और इस जाति को तो लोग पूजा करते हैं ऐसा सोच टकटकी बांधकर भूमि की ओर देखे विना ही उनको प्रणाम किया। प्रणाम करते ही मेरा विकार देखकर उनका भी धैर्य जाता रहा और, पवन जैसे प्रदीप को विचलित करता है, उसी भांति प्रेम ने उनको भी कर दिया। उस समय उनको भी रोमांच हो आया। फिर अवसर पाकर उनके सहचारी दूसरे ऋषिकुमार के पास जाकर प्रणाम-पूर्वक मैंने पूछा, भगवन! इन तरुण मुनि का नाम क्या है और किस वृक्ष की कुसुम-मंजरी इन्होंने कान में खोंस रखी है? इसमें असाधारण सुगंधि से मेरे मन में बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ है। मेरा प्रश्न सुन वह मुस्करा कर मुझसे कहने लगा, बाले! यदि कुतूहल है तो कहता हूँ सुनो।

सकल त्रिभुवन में जिनका यश विख्यात है ऐसे श्वेतकेतु नाम के एक महामुनि दिव्य लोक में रहते हैं। उन भगवान का रूप समस्त त्रिभुवन में सुंदर नल-कूबर से भी उत्तम और सुरासुरों की सुंदरियों को आनंद-दायक था। वे एक दिन जब देव-

पूजा के लिये कमल तोड़ने, श्वेत प्रवाह-युक्त मंदाकिनी में उतरे नव कमल-वन में सर्वदा रहने वाली प्रफुल्ल सहस्र पत्रवाले पुंडरीक में बैठी हुई लक्ष्मी ने उनको देखा। उनको देखते ही प्रेम-मद से आधे मिंचे हुए और आनंदाश्रु की तरंग से चपल हुई पुतली वाले लोचनों से उनके रूप का स्वाद लेते-लेते और जंभाई आने के कारण मुख पर हाथ रखते-रखते उसके मन में काम-विकार उत्पन्न हो गया। परंतु दर्शनमात्र से ही जिस पुंडरीक में वह बैठी थी उसी में एक कुमार का जन्म हुआ जिसे गोद में लेकर लक्ष्मी ने कहा, भगवन इस अपने पुत्र को ग्रहण करो। उनकी उत्पत्ति पुंडरीक में होने से श्वेतकेतु ने भी बालक के योग्य सब क्रिया करके उसका नाम पुंडरीक रखा फिर उसका यज्ञोपवीत कराके उसे सब विद्याएं पढ़ाईं। यह मुनि-कुमार वही पुंडरीक है।

देव-दानवों के क्षीर सागर को मंथन करने से जो पारिजात वृक्ष निकला था उसी की यह मंजरी है। यह ब्रह्मचर्य के विरुद्ध इनके कान में कैसे आई सो भी कहता हूँ। आज चतुर्दशी है इसलिए कैलाशवासी भगवान महादेव की पूजा करने के लिए हम दोनों जब स्वर्ग से नंदन वन के पास होकर आ रहे थे पुष्पों का आसव पीने से मत्त हुई साक्षात् नंदनवन देवी ने बाहर आकर पारिजात पुष्प की इस मंजरी को लेकर प्रणाम-पूर्वक इनसे कहा, भगवन्! संपूर्ण त्रिभुवन को दर्शनों के लिए उत्कंठित करने वाली इस आपकी आकृति के समान ही यह अलंकार है, इसलिए कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए। वनदेवी का यह वचन सुन कर अपने रूप की स्तुति से लज्जित हो नीची दृष्टि से, यह कुमार उसका अनादर करके ही चलने लगे, पर मैंने

इसको पीछे आती देख इनसे कहा, मित्र ! इसमें क्या दोष है ? जो यह प्रेम से देती है तो इसको स्वीकार करो। इतना कह यह मंजरी मैंने इनके कान में इनकी बिना इच्छा के ही हठ से खोंस दी।

उसके ऐसा कह चुकने पर मंद-मंद हँस कर पुंडरीक स्वयं ही मुझसे बोला, कुतुहलिनी ! यह प्रश्न करने का श्रम तू क्यों उठाती है ? जो तुझको इसकी सुरभि अच्छी लगती है तो तू ही इसे ले ले। इतना कह मेरे पास आकर अपने कान में से उस मंजरी को निकाल कर उन्होंने मेरे कान में पहना दी। उनके हाथ के स्पर्श के लोभ से मुझे रोमांच हो आया। मेरे गाल के स्पर्श-सुख से उनकी भी अँगुलियाँ काँपने लगीं और हाथ में से लज्जा के साथ गिरती अपनी अक्षमाला को भी उन्होंने नहीं देखा। उसे भूमि पर गिरते-गिरते रोक कर मैंने ले लिया और गले में पहन लिया। इतने में मेरी छत्र-धारिणी ने आकर मुझसे कहा, देवी स्नान कर चुकीं और घर चलने का समय हो गया है इसलिए तुम भी स्नान कर लो।

अंकुश की पहिली ही चोट करके पकड़ी हुई नई हथिनी के समान मैं उसके वचन से बिना इच्छा ही बड़े प्रयत्न से पीछे हटी और मदन-बाणकी सलाई से मानों छिद गई हो, और सौभाग्य की डोरी से मानों सिल गई हो ऐसी अपनी दृष्टि को उसके मुख से बड़े कष्ट से हटाकर नहाने चली। मेरे चलने पर पुंडरीक का भी धैर्य-स्खलन देख कर दूसरा मुनि-पुत्र कहने लगा, मित्र पुंडरीक ! यह आपको उचित नहीं है जो एक साधारण मनुष्य के समान आप व्याकुल हो रहे हैं। आप अपने को क्यों नहीं रोकते ? आपका वह धैर्य कहाँ गया, इन्द्रिय-विजय कहाँ गया और गुरु के

उपदेश कहाँ गये ? आपकी अक्षमाला हाथ में से गिरी और किसी से ले ली गई, क्या आप यह भी नहीं जानते ?

उसके यह वचन सुन मानों कुछ लज्जित होकर पुंडरीक ने कहा, मित्र कपिंजल ! मेरे विषय में तुम अन्यथा संभावना मत करो। इस कन्या का अक्षमाला ले लेने का अपराध मैं क्षमा नहीं करूंगा। इतना कह कर असत्य क्रोध से सुंदर लगते, कांपते होंठ वाले मुख-चंद्र से उन्होंने मुझसे कहा, चपले ! अक्षमाला दिए बिना तुम इस स्थान से एक पग भी मत सरकना। यह सुन कर, अपनी एक लड़ की माला को कंठ में से उतार कर, भगवन यह लीजिए अपनी माला, ऐसा कहकर कुमार के पसारे हुए हाथ में रख, पसीने में नहाई हुई भी मैं फिर स्नान करने चली गई। नहाने के पीछे बड़े-बड़े प्रयत्न से मेरी सखियाँ मुझे लौटा सकी और माता के साथ मैं उस कुमार का ही चिंतन करते किसी प्रकार घर आई।

घर आकर शोकातुर रहने के कारण मेरी समझ में नहीं आया, मैं अकेली हूँ या सखियों के साथ हूँ, और जागती हूँ अथवा सो रही हूँ। फिर कुमारियों के रहने के सौध पर चढ़ कर सब सखियों को विदा कर, मणिमय जाली-युक्त खिड़की में मुँह रख, उसी दिशा की ओर देखती मैं अकेली बहुत समय सीधी खड़ी रही। उसे तप अच्छा लगता था इसलिए तप का श्रम उठाने की मैं भी इच्छुक हुई। उसमें अपनी प्रीति के कारण ही मानो मैंने मौन-व्रत ग्रहण कर लिया।

इतने में मेरी तरलिका नाम तांबूल-वाहिनी जो मेरे साथ ही स्नान करने गई थी, पीछे से, मानो बहुत देर से आकर मुझसे धीरे से कहने लगी, भर्तृदारिके ! जो दिव्य स्वरूप मुनिकुमार

हमने अच्छोद सरोवर के तीर पर देखे थे उनमें से एक जिसने तुम्हारे कान में देव-वृक्ष की यह कुसुम-मंजरी पहिनाई थी, दूसरे में छिप कर, जब मैं आरही थी तब पीछे से मुझसे तुम्हारे विषय में पूछने लगा, बालिके ! यह कन्या कौन है, किसकी पुत्री है, और यह कहां जाती है ? तब मैंने उत्तर दिया, भगवन ! चंद्रमा की किरणों में से उत्पन्न हुई गौरी अप्सरा की यह पुत्री है और सब गंधर्वों के मुकुट-मणियों के किनारों से घिसे जाने के कारण जिनके चरण-नख चिकने हो गए हैं ऐसे गंधर्वाधिपति राजा हंस इसके पिता हैं। महाश्वेता इसका नाम है और यह गंधर्वों के वास-स्थान हेमकूट को जा रही है।

यह सुन कर, वह कुछ विचार कर, क्षणभर चुप रह, मेरे सामने एकाग्र दृष्टि से बहुत देर तक देखता रहा, फिर विनय-पूर्वक बोला, बाले ! शैशव में भी तेरी यह आकृति मंगल-कारी, निष्कपट और गंभीर अवगत होती है इसीलिए मैं प्रार्थना करता हूं। तू मेरा एक वचन मानेगी ? यह सुन कर मैंने सविनय हाथ जोड़ आदर-पूर्वक उत्तर दिया, महाराज ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ? मैं तो बहुत ही तुच्छ हूँ ! आप का जो कुछ कार्य हो उसकी निस्संदेह आज्ञा कीजिए।

मेरे यह कहने पर, निकटवर्ती तमाल वृक्ष में से एक पल्लव ला पत्थर पर दबाकर उसका रस निकाल अपने उत्तरीय वल्कल में से एक पट्टी फाड़ उस पर कनिष्ठिका उंगली के नखाग्र से लिख कर उन्होंने मुझे यह पत्रिका दी और कहा, इस कन्या को जब यह अकेली हो तब छिपा कर तू इसे दे देना। इतना कह तरलिका ने मुझे पानदान में से निकाल कर वह पत्रिका दिखाई। तरलिका के हाथ

में से उस पत्री को लेकर मैंने देखा। उसमें यह आर्या लिखी थी:—

* *दूरं मुक्तालतया बिसमितया विप्रलोभ्य मनो मे।*
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वयानीतः॥

इस आर्या को देखने से मैं विह्वल हो गई।

तरलिका ने उस कुमार को दूसरी बार देखा था इससे वह मानों सुरलोक में रह आई हो इस प्रकार मैं उसे मानने लगी। मैं बार-बार उससे पूछने लगी, तरलिके! उसने तुझसे क्या-क्या कहा था? कितनी देर तू उसके पास खड़ी रही? फिर जब गेरू के जल-प्रपात के समान लाल सूर्य-किरण कमल-वन में से निकल कर वन-गजों के झुंड की भाँति एकत्र होने लगीं, तब वह छत्र-धारिणी आकर कहने लगी, भर्तृदारिके! उन मुनिकुमारों में से एक द्वार पर खड़ा है और कहता है कि मैं अक्षमाला लेने आया हूँ।

मुनिकुमार का नाम सुनते ही मैंने एक कँचुकी को भेजकर उसे भीतर बुलवाया। क्षण-भर ही में कँचुकी के पीछे-पीछे चंद्र-प्रकाश के पीछे बाल-सूर्य-प्रकाश के समान आते वह दिख पड़ा और आदर-सहित प्रणाम कर मैं स्वयं उठकर उसके लिये आसन ले आई। फिर बैठ चुकने पर उसकी इच्छा के बिना ही हठ से मैंने उसके चरण धोए और अपने दुपट्टे के पल्ले से उसे पोंछ कर मैं उसके पास बिना कुछ बिछाए ही भूमि पर बैठ गई। थोड़ी देर ठहर कर मानों कुछ कहना हो इस भाँति उसने

---

* मेरे कामको कमल-तंतु के समान धवल एकावली से ललचा कर और आशा दिखा कर तुमने इस प्रकार बढ़ा दिया जैसे मानसरोवर में उत्पन्न हंस कमल-तंतु के समान मुक्ता लता से ठगा जाकर उसी दिशा में दूर चला जाता है।

पास बैठी तरलिका पर दृष्टि फेंकी। उसका अभिप्राय समझ कर मैं ने उस से कहा, भगवन! मुझ में और इसमें कुछ भेद नहीं है, इसलिए जो कुछ आपको कहना हो निःशंक कहिए। मेरे ऐसा कहने पर उसने कहा, राजपुत्री! मैं क्या कहूँ? लज्जा के कारण मेरी वाणी कहने को तयार नहीं होती। कहाँ कंद-मूल-फल खाने वाले शांत वनवासी मुनिजन और कहाँ मदन के विविध विलास से व्याप्त यह रागमय प्रपंच! ईश्वर वास्तव में पल भर में ही मनुष्य को उपहासास्पद बना देता है। परंतु मुझे तो कहना ही है; अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

तुम्हारे सामने ही मैं ने उसको कुपित होकर निष्ठुर वचन कहे थे। फिर उसे वहीं छोड़कर क्रोध के कारण पुष्प इकट्ठे करना छोड़ मैं वहाँ से दूसरे प्रदेश में चला गया। तुम्हारे चले आने पर थोड़ी देर के उपरांत ठहर कर, अकेला वह क्या करता होगा, यह जानने के अभिप्राय से मैं फिर लौट कर एक वृक्ष के पीछे छिपकर उस स्थान को देखने लगा। परंतु मुझे वहाँ कहीं वह दिखाई न पड़ा। तब मैं ने सोचा, कहीं काम के वशीभूत हो वह तुम्हारे पीछे तो नहीं लगा अथवा मुझको ही ढूँढ़ता-ढूँढ़ता किसी और जगह तो नहीं गया। मुझे भय होने लगा लज्जा के कारण मनुष्य चाहे जो कुछ कर डालता है अतः कहीं धैर्य-स्खलन से लज्जित हो वह कुछ अनिष्ट न कर डाले। यह सब सोच कर मैं उसे ढूँढ़ने लगा और चंदन वृक्ष की वीथिकाओं में, लता-मंडपों में और सरोवर के तीर पर इधर-उधर भली-भाँति दृष्टि फेंकता-फेंकता मैं बहुत देर तक भटकता फिरा। जब बहुत देर हो चुकी और वह न मिला तो मुझे उसके विषय में अमंगल की शंका होने लगी।

षष्ट परिच्छेद

इतने में सरोवर के समीप स्थित एक अत्यंत रमणीय वसंत की जन्म-भूमि के समान लता-कुञ्ज में मैंने उसे बैठे देखा। निश्चल होने पर भी वह अपने आचरण से चलायमान हो गया था और चुप होने पर भी वह कामदेव की अत्यंत वेदना प्रकट करता था। उसका शरीर इंद्रियों से शून्य दीखता था। ग्रीष्मऋतु के गंगा-प्रवाह के समान कृश हुआ वह कामावेश की अंतिम सीमा पर पहुँच गया था जिससे उसकी चित्त-वृत्ति पराधीन हो गई थी और उसका पहिले का आकार तनिक भी नहीं पहचाना जाता था।

ऐसी अवस्था में उसे बहुत देर तक एक-टक देख मुझे बड़ा खेद हुआ। फिर उसके पास जा उसके कंधे पर हाथ रख कर आँख मिंची होने पर भी मैंने उससे पूछा, मित्र पुंडरीक! कहो, आपको यह क्या हुआ है? तब दीर्घकाल तक बंद रहने से मानों चिपक गई हों ऐसी निरंतर रुदन करने से लाल अपनी आँखें अति प्रयत्न से खोल, लंबी साँस खींच मुझे निश्चल दृष्टि से बहुत देर तक देख कर लज्जा के कारण टूटे-फूटे अल्प अक्षरों से कष्ट-पूर्वक धीरे से वह बोला, मित्र कपिंजल! सब वृत्तांत जान कर भी तुम मुझसे क्या पूछते हो?

मैंने कहा, मित्र पुंडरीक! यह मै भली-भाँति जानता हूँ। मै केवल इतना ही पूछता हूँ कि आपने जो यह आरंभ किया है इसे भी क्या गुरु ने सिखाया है? अथवा यह किसी व्रत का रहस्य है? क्या मूर्ख के समान आप यह नहीं समझते कि इस दुष्ट मदन ने आपको उपहासास्पद बना दिया है? धैर्य धारण कर आप इस दुराचारी का तिरस्कार कीजिए। इतने में मेरे वचन को काट कर मेरा हाथ पकड़ वह मुझसे कहने लगा, मित्र! बहुत

कहने से क्या लाभ ? जिसकी इंद्रियाँ जागृत हों, मन ठिकाने हो उसको ही उपदेश देना चाहिए परंतु मेरे पास तो अब इनमें से कुछ भी नहीं रहा। उपदेश का समय अब बहुत दूर चला गया। इस समय तुम्हें छोड़ संसार में मेरा कोई अन्य बंधु नहीं है। इसलिए इस समय तुम जो कुछ योग्य समझो, करो।

उसके ऐसा कहने पर मुझे विदित हो गया अब वह लौटाया नहीं जा सकता, इसलिए मुझे इसकी प्राण-रक्षा का यत्न करना चाहिये। यह निश्चय कर के मैंने लता-गृह के उसी शिला-तल पर उसके लिए बिछौना बिछा दिया। निकट के चन्दन-वृक्षों के कोमल पत्ते पीसकर सुगंधित और ठंढा रस उसके ललाट पर चुपड़ मैंने चरणों के तलवों तक सब शरीर में लेप कर दिया। फिर, उत्तम-पुरुष-निन्दित और अकर्तव्य कर्मों से भी सर्वदा मित्र के प्राणों की रक्षा करते हैं, यह सोच चाहे जिन उपायों से हो इसके प्राण की रक्षा करनी ही चाहिए, यह निश्चित कर मैं यह लज्जा-जनक और अकरणीय प्रयत्न करने के लिये तत्पर हुआ हूँ और कहीं वह लज्जा से मुझे रोक न दे इससे मैं उससे कहे बिना ही यहाँ चला आया हूँ। अब जो इस अवसर के अनुकूल, मेरे आगमन के अनुरूप और आपके लिए उचित हो वह कीजिए।

यह सुनकर मैं मानो सुख के अमृतमय सरोवर में डूब रही हूँ या सब आनन्दों के ऊपर बैठी हूँ, ऐसी होगई और उस समय लज्जा आने के कारण मुख कुछ नीचा करके अपने मन-ही-मन में कहने लगी, बड़े भाग्य की बात है जो मेरी ही भाँति उनको भी मेरी लगन लग गई! मुझे क्या करना या कहना चाहिए यह मैं सोच ही रही थी इतने में प्रतिहारी दौड़ी हुई आकर मुझसे कहने लगी, भर्तृदारिके! परिजनों से आपके शरीर का असुख सुनकर

महारानी आपको देखने आ रही हैं। इतना सुनते ही कपिंजल उठ खड़ा हुआ और मुझ से कहने लगा, राजपुत्रि ! अब देर बहुत हो गई इसलिए मैं तो जाता हूँ पर हाथ जोड़ कर आप से एक विनय करता हूँ। मेरे प्रिय मित्र की प्राणरक्षा-रूपी दक्षिणा आप मुझ को अवश्य देना। इतना कहकर प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह सुवर्ण की छड़ी लेकर माता के आगे प्रवेश करती प्रतिहारियों से, ताम्बूल, कुसुम, पटवास और अंगराग लेकर चलते कंचुकियों से और कुब्ज, किरात, बधिर, वामन, नपुंसक के आगे हाथ में चमर लेकर चलती दासियों से, सब ओर से रुके द्वार-देश में से किसी प्रकार निकल कर चला गया। माता मेरे पास बहुत देर तक बैठ अपने सौध में लौट गईं। उन्होंने वहाँ आकर क्या किया या क्या कहा यह कुछ भी मैंने नहीं जाना।

उनके जाने पर जब पूर्व दिशा काली होने लगी और सब जीव-लोक में अंधकार प्रलय-काल के समुद्र-जल के प्रवाह के समान फैलने लगा तब मैंने तरलिका से घबराकर पूछा, अरी तरलिके ! क्या तू नहीं देखती है ? मेरा हृदय अत्यंत व्याकुल हो गया है। मुझे अपना कर्तव्य तनिक भी नहीं समझ पड़ता है, इसलिए जो उचित हो सो तू कह। उस समय चंद्रोदय के थोड़े-थोड़े प्रकाश से पूर्व दिशा धूसर होने लगी थी और कुछ ही देर में चंद्र को उदय हुआ देख मेरा हृदय अति दुःसह वेदना से विह्वल हो गया। मेरी दशा देख तरलिका मेरे चरणों में प्रणाम कर चंदन रस से गीले अपने दोनों हाथों को जोड़ कर बोली, भर्तृदारिके ! अब लज्जा या गुरुजनों के भय से कुछ लाभ नहीं। कृपा करके मुझे भेजो जिससे मैं तुम्हारे प्राण-नाथ को बुला लाऊँ अथवा तुम स्वयं ही वहाँ उठ कर जाओ। उसकी यह बात सुन मैं विह्वल

हुए अंगों से उसका सहारा लेकर जैसे-तैसे उठी, पर मेरे चलते ही अशुभ परिणाम-सूचक मेरी दाँई आँख फड़कने लगी। इससे दैव ने यह कोई दूसरा विघ्न डाला है, मुझे ऐसी शंका उत्पन्न हुई।

जिससे निज के परिजन भी न देखें ऐसी रीति से रक्त-वस्त्र का अवगुंठन डाल कर मैं उस प्रासाद-शिखर पर से उतरी और प्रमद वन के एक ओर के द्वार में से निकलकर उसके पास जाने को चली। तरलिका भी मेरे साथ थी और उससे उस काल के योग्य बातें करते-करते मैं उस प्रदेश में पहुँच गई। तब इस सरोवर के पश्चिम तट पर दूर होने से कुछ अस्पष्ट किसी पुरुष के रोने का शब्द मेरे कान में पड़ा। उसे सुनते ही भयभीत हो कर काँपते शरीर से मैं बहुत जल्दी-जल्दी उस ओर चली। चलते-चलते मैंने आधी रात होने के कारण दूर से ही स्वर पहचान लिया। आर्तनाद कर रुदन करके कपिंजल इस प्रकार विलाप कर रहा था, हाय! मैं मारा गया। अरे रे! यह क्या हो गया? अरे, दुरात्मा पापी, क्रूर, पिशाच मदन! तूने यह क्या कुकर्म किया? ओ पापिनी दुराचारिणी दुर्विनीत महाश्वेता! इस ने तेरा क्या बिगाड़ा था? हाय भगवन् श्वेतकेतो! पुत्र-वत्सल! तुम्हें ज्ञात नहीं तुम्हारे यहाँ चोरी हो गई! मित्र मित्र! मुझे लेते जाओ, मैं भी तुम्हारे पीछे आता हूँ। तुम्हारे बिना एक क्षण भी अकेला नहीं रह सकता। अरे रे! मैं तो अंधा हो गया। जीवन निरर्थक हो गया। सब निष्प्रयोजन हुआ। लोक सुख-रहित हुए। अरे! तनिक उठो तो, मुझे कुछ उत्तर तो दो मुझ पर जो तुम्हारा प्रेम था वह कहाँ चला गया?

यह सुनते ही मेरे प्राण तो मानो उड़ गए और मैं दूर से ही हाय करके रोने लगी। सरोवर के तीर पर उगी हुई लताओं

में उलझ कर मेरे ऊपर नीचे के कपड़े फटने लगे। यथाशक्ति जल्दी के कारण ऊँची-नीची भूमि देखे बिना पैर पड़ने से पद-पद पर ठोकर खाती मैं उस जगह जा पहुँची और सरोवर के तीर के पास ठंढे जल-कण रिसाते चन्द्रमणि के शिला-तल पर बिछाए हुए कुमुद, कुवलय, कमल और विविधवन-कुसुमों की सुकुमार मालाओं से बने हुए मृणाल-मय बिछौने पर सोते तत्काल मरे हुए उस महाभाग को मुझ मन्दभागिनी ने देखा। वह अति निश्चल थे मानो मेरे पैरों का शब्द सुनते थे। मन में उत्पन्न हुए क्षोभ के प्रायश्चित के लिए वे मानो प्राणायाम कर रहे थे। चमकती प्रभा से युक्त अपने अधर से मानों मुझसे कह रहे थे, देख! यह सब तेरे ही कारण हुआ है! उनका शरीर निर्मल कपूर के चूरे की भस्म से गौर हो रहा था। यह देखते ही मुझे मूर्छा से अँधेरा आ गया। मुझे जान पड़ा जैसे मैं पाताल में धँसी जा रही हूँ।

उस समय मैं कहाँ गई, क्या किया और क्या बोली इसे मैंने तनिक भी नहीं जाना। बहुत देर पीछे जब मुझे चेतना आई तब मैंने केवल यही देखा मैं अग्नि में गिरी असह्य शोक से जलती हुई दुःखिनी भूमि पर तड़पड़ा रही थी। उनका यह आकस्मिक मरण और अपना जीवन असंगत समझ आर्त-स्वर से, हाय! हाय! यह क्या हो गया? हाय माता! हाय पिता! अरी सखियो! पुकारती-पुकारती, ग्रह से ग्रहीत, पिशाच से आविष्ट, उन्मत्त अथवा भूत से पीड़ित की भाँति मैं इस प्रकार विलाप करने लगी—हाय प्राणाधार! मुझ अशरण को अकेली छोड़ यों निर्दय होकर कहाँ जाते हो? कृपा करके एक बार तो मुझसे बोलो! तनिक तो मेरी ओर देखो! मेरे मनोरथ पूर्ण

करो ! मैं तुम्हारी दासी हूँ। कहो तो, भला मेरा क्या अपराध हुआ है ? मैंने तुम्हारी किस आज्ञा का पालन नहीं किया ? अरे ! हतभागिनी विनष्ट हुई मुझ पापिनी को धिक्कार है, जिसके लिए आपकी ऐसी दशा हुई। हाय मैं आपको ऐसे छोड़ घर क्यों चली गई ? मुझे घर से क्या काम ? माता से क्या काम ? पिता से क्या काम ? अब मैं किसकी शरण जाऊँ ? अरे दैव ! करुणा कर। तुझसे प्रार्थना करती हूँ मेरे प्राण-नाथ को फिर जीवित कर दे। अरे भगवति वन-देवि ! मुझपर उपकार करके इनको जीवन दे।

अपना यह वृत्तान्त कहते-कहते भूतकाल की अति कष्टदायक अवस्था का अनुभव करती हुई महाश्वेता मूर्छा से अचेत हो गई और वेग से शिलातल पर गिरने ही को थी, उसी समय शोक-कातर चंद्रापीड़ ने शीघ्रता से सेवक की भाँति घबराहट में हाथ पसार कर उसे थाम लिया। फिर धीरे-धीरे वायु-संचरण करके उसे चेत कराया और जब महाश्वेता को चेत हो गया तब वह उससे कहने लगा, भगवति ! मुझ पापी ने आपके शोक को फिर नया कर दिया। बस, अब इस कथा को रहने दो। यह मुझसे अब सुनी नहीं जाती। कुमार के इस प्रकार कहने पर महाश्वेता लम्बे और गरम निश्वास लेकर आँखों में आँसू डबडबाती हुई दु:ख से बोली, राजपुत्र ! यह क्रूर प्राण जो उस अति दारुण और अशुभ रात्रि में मुझे नहीं छोड़ गए तो अब उनका जाना बहुत दूर की बात है। इस वज्रपात के पीछे जो एक महा आश्चर्य हुआ मैं अब उसे आप से कहती हूँ और प्राण-धारण के उस गुप्त कारण का वर्णन करती हूँ।

उस अवस्था में मैंने मरने का ही निश्चय करके अनेक

भाँति विलाप करके तरलिका से कहा, अरी कठिन-हृदये ! अब यों कब-तक रोया करेगी ? उठ, लकड़ी लाकर चिता तयार कर जिससे मैं अपने प्राण-नाथ का अनुसरण करूँ। मेरे यह कहते ही एक कुमुद-सदृश गौर, बड़े प्रमाण का, महापुरुष के लक्षणों से युक्त, दिव्य आकृति वाला व्यक्ति झट चंद्र-मंडल में से निकल कर अपने विजायठ के किनारे से अटके हुए अमृत-फेन के समान श्वेत, उत्तरीय वस्त्र को खींचता हुआ आकाश में उतरा। उसने ऐरावत की सूँड़ के समान मोटी, मृणाल-सदृश गोरी उँगलियों वाली अपनी वाहुओं से उस शव को उठा कर दुंदुभि के नाद के समान गंभीर स्वर से पिता के जैसे आदर-पूर्वक कहा, पुत्री महाश्वेता ! प्राण त्याग मत करना। फिर इसके साथ तुम्हारा समागम होगा। इतना कह उसे लेकर वह गगन में उड़ गया। यह व्यापार देख मैं तो भयभीत और विस्मित हो कुतूहल से ऊपर देखती पूछने लगी, कपिंजल ! यह क्या हुआ, किन्तु कपिंजल घबराकर उत्तर दिये बिना ही खड़ा हो, अरे दुष्ट ! मित्र को लेकर कहाँ भागा जाता है, यह कहता-कहता, वेग से अपने उत्तरीय वल्कल का फेंटा बाँध उस उड़ते हुए के पीछे अंतरिक्ष में उड़ गया। हमारे देखते-देखते ही वे सब तारागणों के बीच में चले गये।

कपिंजल के जाने से प्रियतम के मरण का मेरा शोक दूना हो गया। किंकर्तव्यता-विमूढ़ हो उस पुरुष के वचन से उत्पन्न हुई दुराशा रूपी मृगतृष्णा से मुझे उस समय यही ठीक लगा, और मैंने प्राण-त्याग नहीं किया। सवेरे उठकर उसी सरोवर में स्नान कर उनपर प्रीति होने से उसी कमंडलु, उसी वल्कल और उसी अक्षमाला को लेकर संसार को असार समझ

ब्रह्मचर्य ग्रहण कर मैंने अनाथों के शरण इन भगवान त्रैलोक्य-नाथ श्री महादेवजी का आश्रय लिया। दूसरे दिन मेरा वृत्तान्त सुनकर सब बंधुजनों को साथ लेकर मेरे माता-पिता यहाँ आए और अनेक उपायों से मुझे घर ले जाने के लिए विवश करने लगे, किंतु किसी भी प्रकार यह अपने व्यवसाय से फिरगी नहीं जब उन्हें यह निश्चित हो गया तब वे निराश हो कई दिन यहाँ रहकर संतप्त हृदय से घर लौट गए। उसी समय में उस महापुरुष को केवल आँसू गिरा कर अपनी कृतज्ञता दिखाती, उसके प्रेम में कृश हुए इस पाप से भरे दग्ध शरीर को विविध नियमों से सुखाती, तीनों संध्या समय इसी सरोवर में स्नान करके प्रति-दिवस भगवान शिव का पूजन करती सखी तरलिका के साथ दीर्घ शोक में इसी गुफा में बहुत दिनों से रहती हूँ।

इतना कह शरद मेघ के टुकड़े के समान श्वेत वल्कल के किनारे से चंद्रमा के समान मुख को ढँक कर आर्त स्वर से बहुत देर तक उसने रुदन किया। तब चंद्रापीड़ ने हृदय आर्द्र हो जाने से धीरे-धीरे उस से कहा, भगवति! कष्ट से डरने वाले सुख के लालची लोग सच्चे स्नेह के योग्य कर्म नहीं करते वरन निष्फल अश्रुपात करके ही अपना स्नेह दिखा कर रोया करते हैं। जन्म से ही जिन से आपका परिचय बढ़ता गया ऐसे प्रिय बांधव-जन आपने उन के ही लिए अपरिचित के समान छोड़ दिए और मृणाल के समान अपने अत्यंत कोमल शरीर को प्रति दिन अनुचित दुख सहकर सुखा डाला। आपने प्रेम के योग्य कौन कर्म नहीं किया जिस से रुदन करती हो?

मरे हुए प्रिय जन के पीछे प्राण-त्याग करना नितांत निरर्थक

होता है। यह मूर्खों के जाने का मार्ग है। प्राण जो अपनेआप ही न जाएँ तो उनका त्याग नहीं करना चाहिए। विचार करने से ज्ञात होता है, प्राण-त्याग असह्य वेदना को मिटाने का उपाय होता है। अतः यह केवल एक प्रकार का स्वार्थ-साधन है। इस कर्म से मरे हुए का कुछ उपकार नहीं होता। न तो वह फिर जी उठता है, न अच्छे लोक में जाता है और न परस्पर समागम ही होता है। वास्तव में प्राण-त्याग करने से दो में से एक का भी लाभ नहीं होता। आपको तो विदित ही होगा कामदेव के महादेव से उत्पन्न हुई अग्नि से जलने पर भी उनकी एकमात्र प्रिय-पत्नी रति ने प्राण का त्याग नहीं किया, और राजाओं के मुकुटों के कुसुमों से जिनका चरणासन सुगंधित हुआ था ऐसे रूप-सम्पन्न पाण्डु के किंदम मुनि की शापाग्नि से जलने पर भी यदु वंश के शूर-सेन राजा की पुत्री कुंती ने अपनी देह को नहीं छोड़ा था। बाल चंद्र के समान नयनानंद-दायक शूर अभिमन्यु के मरने पर विराट् राजा की पुत्री बाला उत्तरा ने प्राण-त्याग नहीं किए थे, और सौ भाइयों की गोद में खिलाई गई धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला अपने अत्यंत मनोहर भर्ता सिंधुराज जयद्रथ के अर्जुन के हाथ से मारे जाने पर उसके पीछे कुछ मर नहीं गई थी।

फिर, यदि किसी प्रकार अनुमरण से समागम तनिक भी संभव हो तो प्राण छोड़ भी दे। मरे हुए के साथ जीते हुए का समागम नहीं होता परंतु आपने तो समागम की वाणी को स्वयं सुना है। वे महात्मा दया करके निःसंशय उनको पुनर्जीवित करने के लिए ही उठाकर सुर-लोक में ले गए हैं। महात्माओं का प्रभाव अचिंत्य होता है। आपको यह असंभव

नहीं समझना चाहिए। ऐसा पहिले भी कई बार हो चुका है। गंधर्वराज विश्वावसु से मेनका में उत्पन्न हुई प्रमद्वरा नाम की कन्या जब साँप के काटने से मर गई तब स्थूलकेश के आश्रम में भार्गव च्यवन के पौत्र और प्रमति के पुत्र रुरु नामक मुनि-कुमार ने उसको अपना आधा जीवन दिया था। जब अर्जुन अश्वमेध के अश्व के पीछे जा रहे थे और उनके ही पुत्र बभ्रुवाहन ने शर-प्रहार करके उनके प्राण हर लिए तब उलूपी नाम की कन्या ने उनको सजीव किया था। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित जब अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र से जलकर गर्भ में से मरा हुआ निकला था तब उत्तरा के विलाप से दयालु होकर भगवान वासुदेव ने उसे प्राण-दान दिया था और उज्जयिनी में वही त्रिभुवन-वंदित चरण भगवान सांदीपनि द्विज के पुत्र को यम-गृह से निकाल कर लाए थे। यहाँ भी कुछ ऐसा ही होगा। सुख-स्वभाव से ही प्रायः क्षण-भंगुर दुःख चिरस्थायी होता है। प्राणियों का एक जन्म में किसी प्रकार से समागम हो जाता है और सहस्र जन्मांतर तक विरह रहता है। इसलिए अपनी अनिंद्य आत्मा की निंदा करना ठीक नहीं है। संसार के अति गहन मार्ग में चलते मनुष्यों को ऐसी-ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं। धीर ही आपत्ति में पार पाते हैं। ऐसे-ऐसे अनेक कोमल आश्वासन-वाक्यों से उसको शांत करके चंद्रापीड़ ने अंजुली में झरने का पानी लाकर इच्छा के बिना भी हठ से उसका मुँह धुलाया।

—*✿*—

७—प्रेम-कुमारी कादंबरी भुवन-मोहिनी !

उसी समय सूर्य भी महाश्वेता का वृत्तांत सुनने से मानो शोक-कातर होकर दिवस-व्यापार छोड़ अधोमुख हो गया। फिर जब रात आने से पक्षी निद्रा के कारण चुप हो गए तब महाश्वेता धीरे-धीरे उठकर पश्चिम संध्योपासन कर कमंडलु के जल से अपने पैर धो अपने वल्कल के बिछौने पर जा बैठी। चंद्रापीड़ भी उठकर पुष्पों सहित झरने के पानी से अंजुली दे और संध्या प्रणाम कर दूसरे शिला-तल पर लता-पल्लव का कोमल बिछौना बिछा बैठ गया। फिर उसने महाश्वेता से पूछा, भगवति! वनवास रूपी आपत्ति के समय दुःख बँटाने वाली आप की परिचारिका तरलिका यहाँ नहीं दीखती। तब महाश्वेता बोली. महाभाग! अमृत से अप्सराओं का कुल एक उत्पन्न हुआ था जिस में मदिरा नाम की एक मदजनक बड़ी बड़ी आँखों वाली कन्या उत्पन्न हुई मैं आप से यह कह चुकी हूँ। समस्त गंधर्व-कुल के मुकुटाग्र-रूपी पाद-पीठ पर चरण रखने वाले देव चित्ररथ ने उससे विवाह किया। उनकी कादंबरी नाम की कन्या और मैं जन्म से ही साथ बैठती, साथ सोती, और साथ ही जल-पान और भोजन करती थी जिस से उसके साथ मेरा अत्यन्त प्रेम हो गया। इस प्रकार हमारी बाल्यावस्था पूर्ण स्वतंत्रता में सुख से बीती। मेरा यह करुण वृत्तांत सुन कर जब तक महाश्वेता शोक में है तब तक मैं कदापि अपना विवाह नहीं करूँगी, उसने यह निश्चय कर लिया और सखियों के सामने शपथ-पूर्वक कहा जो मेरी इच्छा के बिना पिता हठ से किसी के साथ मेरा विवाह करना चाहेंगे तो

मैं भूखी रहकर, अथवा अग्नि में जलकर, अथवा फाँसी लगाकर देह का त्याग कर दूँगी।

अपनी लड़की के किए हुए इस निश्चल और निश्चय वचन को सुनकर गंधर्वराज चित्ररथ को अत्यंत परिताप हुआ और कुछ दिन बीतने पर उसे प्रफुल्ल नवयौवन में देख उन्हें क्षण भर भी चैन नहीं मिलने लगा। अंत में अन्य कोई उपाय न सूझने से महादेवी मदिरा के साथ विचार करके क्षीरोद नाम कंचुकी से उन्होंने आज मेरे पास कहलाया है, पुत्री महाश्वेते! तुम्हारे वृत्तांत से ही हमारे हृदय जल रहे हैं। इधर यह नया दुःख भी आ पड़ा है। इसलिए अब कादंबरी को मनाना तुम्हारे ही हाथ में है। यह संदेश पाकर मैंने गुरु-वचन के गौरव और सखी के प्रेम के कारण क्षीरोद के साथ तरलिका को— सखी कादंबरी! दुःखिनी को तू क्यों अधिक दुःख देती है? जो तू चाहती है मैं जीती रहूँ तो माता-पिता का वचन स्वीकार कर, यह कहला कर भेजा, इतना कह कर वह चुप हो गई। कुछ काल-अनंतर महाश्वेता को निद्रावश देख कर चंद्रापीड़ भी अपने पत्तों के बिछौने पर धीरे से लेटा और वैशंपायन, पत्रलेखा तथा राजपुत्र लोग मेरे विषय में क्या विचारते होंगे ऐसी चिंता करते-करते सो गया।

रात्रि के बीतने पर प्रातःकाल संध्या करके शिला-तल पर बैठकर महाश्वेता जब पवित्र मंत्रों का जप कर रही थी और चंद्रापीड़ प्राभातिक विधि समाप्त कर चुका था, इतने ही में तरलिका वहाँ आ पहुँची। उसके पीछे एक सोलह वर्ष के वय का केयूरक नाम का गंधर्वपुत्र गजराज के समान भारी-भारी पैर रखता हुआ आया। वह केवल एक अधोवस्त्र पहन रहा था जो सुवर्ण की

मेखला से दृढ़ बँधा हुआ था। उसका उदर छोटा, छाती विशाल और हाथ लंबे, गोल और मोटे थे। तरलिका आते ही कुतूहल होने से चंद्रापीड़ को बहुत देर तक देखकर महाश्वेता के पास जाकर प्रणाम करके सविनय बैठ गई। पीछे केयूरक भी मस्तक बहुत झुका कर प्रणाम करके महाश्वेता के संकेत से बताए हुए एक निकटवर्ती शिला-तल पर बैठ गया।

जप समाप्त होने पर महाश्वेता ने तरलिका से पूछा, क्या प्रिय सखी कादंबरी मेरा वचन मानेगी? तरलिका ने कहा, भर्तृदारिके! आपका सब संदेश आपकी प्रिय सखी से मैंने कहा परन्तु उन्होंने उसे सुनकर बड़े-बड़े आँसू गिरा जो कहलाया है वह उनका ही भेजा हुआ यह केयूरक नाम का वीणा-वाहक आपसे कहेगा। यह सुन केयूरक बोला, भर्तृदारिके महाश्वेता! देवी कादंबरी आपको दृढ़ कंठालिंगन करके कहती हैं जो तरलिका ने मुझसे आकर कहा वह क्या गुरुजनों का वचन पालने के लिए है या मेरे चित्त की परीक्षा लेने के लिए है? मैं जो घरमें रहती हूँ उस अपराध का क्या यह मार्मिक उलाहना है वा स्नेही जन के त्याग करने का उपाय है? मेरा हृदय सहज प्रेम के प्रवाह से भरा हुआ है। यह आप जानती हैं। आप मधुर-भाषिणी हैं। फिर आपको ऐसा अप्रिय भाषण किसने सिखाया? मित्र के दुःख से खिन्न हुए मन को सुख की आशा कैसी? शान्ति कैसी? और हास्य कैसा? इसलिए मैं आपको हाथ जोड़ चरण-स्पर्श करके कहती हूँ, आप मुझपर अनुग्रह करें और यह बात स्वप्न में भी फिर मन में न लावें।

यह सुनकर महाश्वेता को बहुत चिंता हुई और उसने, तुम जाओ! मैं स्वयं वहाँ आकर जो उचित होगा करूँगी, यह कह

कर केयूर को लौटा दिया। उसके जाने पर वह चंद्रापीड़ से बोली, राजपुत्र ! हेमकूट रमणीय, चित्ररथ की राजधानी, विचित्र किंपुरुष देश कौतुकपूर्ण और गांधर्वलोक बहुत सुन्दर है। कादंम्बरी अत्यंत सरल-हृदया और महानुभावा है। इसलिए जो आपको वहाँ चलने में बहुत कष्ट न हो अथवा कोई बड़ा भारी काम न बिगड़ता हो अथवा मेरा वचन प्रिय लगता हो तो यह मेरी विनती आपको निष्फल न करनी चाहिए, यहाँ से मेरे साथ ही हेमकूट चलकर और वहाँ मुझसे अभिन्न अतिशय लावण्यवती भुवन-मोहिनी कादंबरी से मिलकर उसकी कुमति से उत्पन्न हुए मोह को दूरकर एक दिन वहीं विश्राम लेकर दूसरे दिन आप लौट आइएगा। यह सुन चंद्रापीड़ ने उत्तर दिया, भगवति ! दर्शन हुआ तब से ही यह शरीर आप के अधीन है। इसलिए जो कार्य आप योग्य समझें उसके लिए निःशंक होकर आज्ञा दें। यह कह कर वह महाश्वेता के साथ चल पड़ा।

हेमकूट पहुँच कर गांधर्व राज-गृह में था, सुवर्ण-तोरण जहाँ बँधे थे ऐसी सात ड्योढ़ी लाँघ कर चंद्रापीड़ ने महाश्वेता को देखते ही दौड़ कर आते, दूर से ही प्रणाम करते प्रतिहारों के बताए हुए मार्ग से कन्याओं के अन्तःपुर के द्वार में प्रवेश किया और घुसते ही उसने लाखों स्त्रियों से भरा हुआ दूसरा मानो नारी-मय संसार हो, पुरुष हीन मानो दूसरी सृष्टि हो अथवा पुरुष-द्वेष से प्रजापति ने मानो दूसरा संसार रचा हो ऐसे उस रनिवास को देखा। ललनाओं की लावण्य-प्रभा का प्रवाह वहाँ सभी ओर व्याप्त था। उन कन्याओं की बहुलता से उनकी मुख-प्रभा से मानो इधर-उधर चंद्रबिंबों की वृष्टि होती हो ! कपोल

मंडलों के प्रकाश से वहाँ मानो सहस्रों माणिक्य दर्पण जगमगाते हों ! हथेलियों के लाल रंग से पृथ्वी पर मानो रक्त-कमलों का मेह बरसता हो ! नख-किरण चमकने से आठों दिशाएँ मानो सहस्रों मदन बाणों में छा गई हों ! ऐसी उन कन्याओं को चन्द्रापीड़ ने देखा। वहाँ कन्याओं का आलाप ही वीणा का शब्द था, भुजलता ही चंपक-माला थी, स्तन ही दर्पण थे और कोमल उंगलियों का रंग ही चरणों का महावर था। इस प्रकार के रनिवास के तनिक अंदर जाने पर वह कादंबरी के पास रहने वाली इधर-उधर फिरती दासियों के विविध प्रकार के अत्यंत मनोहर आलाप सुनता कादंबरी के भवन के पास आया।

उस भवन में जब चंद्रापीड़ आगे गया तब उसने एक श्री मंडप देखा। उसके बीच में चारों ओर मंडल बनाकर बैठी हुई सैकड़ों कन्याओं से घिरे हुए, नील वस्त्र की चादर से ढँके पलग के मध्य में सफेन तकिये पर दुहरी करके रखी हुई भुजलता के सहारे बैठी महावराह की दंष्ट्रा में लटकती पृथ्वी के समान शोभायमान कादंबरी को उसने देखा। आस-पास की रत्नमय दीवालों में उसका प्रतिबिंब ऐसा लगता था मानो दिक्पाल उसे लिए जाते थे, बड़े-बड़े मणिमय स्तंभों ने मानो उसको अपने हृदय में प्रवेश कराया था, भवन-दर्पणों ने मानो उसका पान किया था, श्री मंडप में अधोमुख से उत्कीर्ण हुए विद्याधर मानो उसको गगन में उठाकर ले जाते थे, और उसके दर्शन करने के कुतूहल से मानो चित्र के बहाने तीनों भुवन उसके आस-पास एकत्रित हुए थे ! उन्नत स्तन के कारण मुख का दर्शन न पाने के दुख से ही मानो उसका मध्य-भाग क्षीण हो गया था। उसके गाल गुलाबी स्वच्छ कांति होने से मदिरा-रस भरी हुई माणिक्य

शुक्ति के संपुट के समान, और उसकी नाक रति के वीणा बजाने के रत्न-मय अंगुरीय के समान सुंदर लगती थी। महादेव के निर्दय होकर एक मदन को जला डालने से मानों कुपित होकर वह प्रत्येक हृदय में लाखों मदन उत्पन्न करती थी। अपनी उगाई हुई लता में प्रथम पुष्प लगाने का समाचार निवेदन करने के लिये आई हुई मालिन को सब गहनों का दान देकर वह उसका सम्मान करती थी, और विविध-वन कुसुमों और फलों से भरी हुई पत्तों की दोनी लेकर आई हुई क्रीड़ा-पर्वत पर रहने वाली भिल्लिनी की भाषा न समझने से हँस-हँस कर उससे बार-बार बातें कर रही थी।

ऐसी कादंबरी की शोभा देखते ही चंद्रापीड़ का हृदय समुद्र के जल की तरह उछलने लगा। वह सोचने लगा, ब्रह्मा ने मेरी अन्य इंद्रियों को भी नेत्र-मय क्यों नहीं बनाया? इन नेत्रों ने ऐसे क्या पुण्य किए हैं जो ये इसको बेरोक-टोक देखते हैं? इस तरह सोच-विचार में ही उसकी दृष्टि कादंबरी के नयनों पर पड़ी और उसी क्षण, केयूरक वर्णित राजकुमार यही होंगे, इस प्रकार विचार करती हुई कादंबरी की भी अतिशय रूप के दर्शन के विस्मय से विस्तृत दृष्टि उस पर पड़ी और निश्चल होकर बहुत देर तक अपने लक्ष्य पर स्थिर रही। उसकी नयन-प्रभा से धवल हुआ चंद्रापीड़ उस क्षण कादंबरी को देख विह्वल हो गया और पर्वत के समान निश्चल देख पड़ा।

कादंबरी को कुमार को देखने पर पहिले रोमांच हुआ, पीछे गहनों का शब्द हुआ और अंत में वह स्वयं उठ खड़ी हुई और निश्वास चलने से उसका वस्त्र काँपने लगा। फिर वह मानो बड़े कष्ट से कितने ही पग आगे आकर

बहुत दिन में दर्शन होने से उत्कंठित हुई महाश्वेता के कंठ से स्नेह और उत्कंठा-पूर्वक लिपट गई। महाश्वेताने भी उसको कंठालिंगन दिया और कहा, सखी कादंबरी! भारतवर्ष में प्रजा-पीड़ा-हारी तारापीड़ नाम के भूपति हैं। उन्होंने असंख्य उन्नत घोड़ों की टापों से चारों समुद्रों तक अपनी मुद्रा लगा दी है। उनके यह चंद्रापीड़ नामक पुत्र हैं। दिग्विजय के लिए फिरते-फिरते यह यहाँ तक आ निकले हैं। इनको मैंने जब से देखा है तभी से यह मेरे निष्कारण मित्र हो गए हैं। ऐसे शिष्टाचार-युक्त, शुद्ध-हृदय के चतुर अकारण मित्र का मिलना दुर्लभ होता है इसलिए मैं इनको यहाँ हठ-पूर्वक ले आई हूं जिसमें इनको देखकर मेरी तरह तुम भी इनका अद्वितीय रूप-दर्शन कर प्रसन्न हो। तुम्हारे विषय में मैंने इनसे अनेक प्रकार से कह दिया है; इसलिए इनको पहिले कभी देखा नहीं, यह सोचकर जो लज्जा हो उसे छोड़ दो और जैसा तुम्हारा व्यवहार मेरे साथ है उसी भाँति इनके साथ भी करो।

महाश्वेता के इस प्रकार कहलेने पर राजपुत्र ने कादंबरी को प्रणाम कि और कादंबरी ने भी उसे प्रणाम किया। फिर महा-श्वेता के साथ वह पलंग पर बैठी और शीघ्रता से परिजनों के द्वारा सिरहाने रखी हुई सुवर्ण के पायों से चिह्नित एक छोटी चौकी पर चंद्रापीड़ बैठे। फिर महाश्वेता के सम्मान के लिए कादंबरी के चित्त का अभिप्राय समझ प्रतिहारियों ने मुँह बंद कर उसपर हाथ रख शब्द बंद करने का संकेत किया जिससे वेणु का स्वर, वीणा का घोष, गीत की ध्वनि और मागधियों का जय-शब्द सब जगह बंद हो गया। इतने में एक दासी शीघ्रता से पानी ले आई और कादंबरी ने स्वयं उठकर उससे महाश्वेता के चरण

धोए और अपने दुपट्टे से उनको पोंछकर वह पलंग पर जा बैठी। चंद्रापीड़ के चरण भी, रूप में कादंबरी के ही समान उसकी विश्वास-पात्र मद-लेखा नामक प्राण-प्रिया सखी ने उनकी इच्छा बिना भी हठ से धोए। फिर चमर की पवन से बिखरी हुई केशों की लटों को सँवारती महाश्वेता ने कादंबरी से कुशल पूछा।

कादंबरी महाश्वेता को जब तांबूल देने लगी तब महाश्वेता ने उससे कहा, सखी कादंबरी! हम सबको पहिले अपने नये अतिथि चंद्रापीड़ का सत्कार करना उचित है, इसलिए यह इन्हें दो। यह सुन तनिक मुँह फेरकर और नीचे झुकाकर उसने धीमे स्वर में कहा, प्रिय सखी! लो, तुम्हीं दे दो! पर महाश्वेता ने उसे ही देने के लिए बार-बार समझाया तब मानो ग्रामीण कन्या हो इस भाँति वह जैसे-तैसे पान देने को तयार हुई और महाश्वेता के मुख की ओर से दृष्टि फेरे बिना ही काँपते शरीर से हाँपते-हाँपते तांबूल-सहित अपना कोमल हाथ आगे बढ़ाया। चंद्रापीड़ ने भी अपना हाथ आगे बढ़ाया। उसने कंप से हिलते कंकण के शब्द से जो मानो कहता हो आज से मेरा जीवन तुम्हारे हाथ है उस पान की बीड़ी को चंद्रापीड़ के हाथ में रखा। फिर दूसरी बीड़ी लेकर उसने महाश्वेता को दी।

इतने में वहाँ सहसा एक मैना आई। उस के पीछे-पीछे एक इंद्र-धनुष समान तीन रंग का कठुला गर्दन में पहिने लाल चोंच वाला सुआ मंद-मंद गति से आया था। पास आकर वह मैना क्रोध में बोली, भर्तृदारिके कादंबरी! तुम क्यों नहीं इस गर्विष्ठ, धृष्ट, नीच सुए को मेरे पीछे-पीछे उड़ने से रोकती हो? जो तुम मेरे अपमान की चिंता न करोगी तो मैं अवश्य प्राण त्याग दूँगी। यह सुनकर कादंबरी तो मंद-मंद हँसने लगी परंतु महाश्वेता को

इस बात का पता न था इसलिए उसने मदलेखा से पूछा, यह मैना क्या कहती है ? उसने कहा, भर्तृदारिका कादंबरी की यह सखी कालिंदी सारिका है। इसका इस परिहास नाम के सुए के साथ इन्होंने पाणि ग्रहण करा दिया है, परंतु आज प्रातःकाल इसने कादंबरी की तांबूल-वाहिनी तमालिका से अकेले में इसे कुछ कहते देखा है। तभी से यह ईर्ष्या करने लगी है और कोप से रूट कर अब न उसके पास जाती है, न बोलती है, न उसका स्पर्श करती है और न उसकी ओर देखती है। हम सब ने इसको अनेक प्रकार से मनाया पर यह नहीं मानती।

यह सुन कर चंद्रापीड़ मंद-मंद हँस कर बोला, यह बात ठीक है। कादंबरी की तांबूल-वाहिनी तमालिका के साथ परिहास नाम का सुआ प्रेम में फँसा हुआ है यह बात सब ओर सुनी जाती है, परंतु देवी कादंबरी को क्या यह उचित है जो वह ऐसी चपला दुष्ट दासी को नहीं रोकती ? सपत्नी होना स्त्रियों के दुख का प्रधान कारण है। इस बिचारी में बड़ा धैर्य है जो इतने बड़े दुर्भाग्य से वैराग्य हो जाने पर भी इसने विष-भक्षण नहीं किया। यदि यह इतना बड़ा अपराध होने पर भी कदाचित् सुए के विनय से प्रसन्न हो जाएगी तो इसको धिक्कार है। कादंबरी-सहित सब कन्याएँ जो इस मर्म-वचन को समझ गई थीं, चंद्रापीड़ के इस भाषण से खिलखिलाकर हँसने लगीं परंतु राजकुमार के कोमल वचन को सुनकर परिहास सुआ कहने लगा, धूर्त राजपुत्र ! यह अत्यंत चतुर है। चंचल होने पर भी तुम्हारे अथवा अन्य किसी के धोके में आने वाली नहीं है। ऐसी वक्रोक्ति यह भी समझती है। इसलिए अब तुम चुप रहो। नागरिकों के चतुर भाषण का इस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ने का।

इस बीच में कंचुकी ने आकर महाश्वेता से कहा, आयुष्मति ! राजा चित्ररथ और रानी मदिरा तुम को मिलने के लिए बुलाते हैं। यह सुनकर उसने कादंबरी से पूछा, सखी ! चंद्रापीड़ कहाँ ठहरेंगे ? यह सुनकर, क्या अनेक स्त्रियों के हृदय-रूपी स्थान उनके रहने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, इस विचार से किंचित् मन में हँस कर कादंबरी ने प्रकट कहा, सखी ! तुम ऐसा क्यों कहती हो ? जब से दर्शन हुए तभी से इस शरीर के भी यही स्वामी हैं। अब यह जहाँ चाहें अथवा जहाँ तुम्हें अच्छा लगे वहीं यह रहें। तब महाश्वेता ने कहा तुम्हारे भवन के समीपवर्ती प्रमदवन में क्रीड़ा-पर्वत पर जो मणिमय प्रासाद है उसी में इन्हें ठहराया जाय।

यह कहकर वह गंधर्वराज से मिलने गई। चंद्रापीड़ भी उसके साथ ही बाहर निकला और कादंबरी की आज्ञा से उसके विनोद के लिए प्रतिहारी द्वारा भेजी हुई वीणा बजाने वाली, वेणु बजाने में निपुण, संगीत-कला में प्रवीण, जूआ खेलने में अनुरक्त, चित्र-कर्म में श्रम करने वाली और सुभाषित पढ़ने वाली कितनी ही कन्याओं के साथ केयूरक के बताए हुए मार्ग से क्रीड़ा पर्वत पर मणि-मन्दिर में गया। उसके वहाँ जाते ही गंधर्व-राजपुत्री सब सखीजन और परिजन को विदा कर केवल थोड़ी सी दासियों को साथ ले सौध पर चढ़ी। वहाँ जाकर वह पलंग पर लेटी और विनयवती परिचारिका दूर खड़ी होकर उसका मनोरंजन करने लगी। परंतु वह उस क्षण न जाने कहाँ से कुल-शील संबंधी अनेक ग्लानिपूर्ण चेतना आने से अत्यंत लज्जा का अनुभव करने लगी। मैंने हताश और मोहांध होकर बिना शंका के हृदय की तरलता को प्रकट कर यह क्या किया वह यह सोचने लगी, उसकी चित्तवृत्ति कैसी है इस की मुझ मूढ़ा ने परीक्षा नहीं की

और न मैं उनके दर्शन-योग्य हूँ या नहीं, यही मैंने विचार किया। पिता-माता और गंधर्व लोग यह वृत्तांत सुनकर मुझे क्या कहेंगे ? मैं अब अपनी भूल को किस भाँति छिपाऊँ ? जिनका कभी अनुमान भी नहीं हो सका था और जिनके केवल देखने से ही मेरी इंद्रियों ने मानो मुझे बाँधकर उनके अधीन कर दिया है ऐसे यह मुझे कोई विडम्बना करने के ही लिए तो नहीं आए हैं ? यदि ऐसा है तो अब मुझे उनसे कुछ भी काम नहीं।

उसने ऐसा संकल्प किया था तब तक इस संकल्प के साथ ही मानो बाहर निकलते उसके प्राण ने कंठ पर आकर आज्ञा माँगी और साँस से आई भाप ने मानो उस से कहा मूर्खे ! वह पुरुष परित्याग के योग्य है वा नहीं यह आँखें धोकर फिर से देख ले। इस प्रकार फिर उसका हृदय पहिले की भाँति चंद्रापीड़ की ओर झुका और फिर प्रेमावेश से स्वतंत्रता खोकर परवश की भाँति उठकर खिड़की की जाली में से उसी क्रीड़ा-पर्वत को देखती-देखती वह खड़ी रही। चंद्रापीड़ भी कादंबरी का मानो दूसरा हृदय हो ऐसे स्वच्छ मणि-गृह में प्रवेश करके शिला-तल पर बिछे हुए पटिक पर लेट गया। केयूरक ने उसके चरण गोद में ले लिए और वे कन्याएँ निर्दिष्ट स्थान पर उसके आस-पास आ बैठीं।

उस समय चंद्रापीड़ चित्त में व्याकुल होकर यह चिंता करने लगा, क्या गंधर्व राज-पुत्री कादंबरी के यह सर्व लोक-हृदय हारी विलास स्वाभाविक हैं अथवा भगवान मकरध्वज ने मेरे लिए कराए है ? मैं जब उसकी ओर देखता हूँ तब वह लजाकर मुझ से संकोच मान मुँह फेर मानो मेरे प्रतिबिंब को प्रवेश कराने की लालच से अपने गाल-रूपी दर्पण को

मेरी ओर कर देती है। फिर वह विचारने लगा- मन को इस प्रकार खेद देने से लाभ भी क्या है। उस धवल-नयना की चित्त-वृत्ति मेरी ओर प्रेम-मय हो गई है तो थोड़ी देर में बिना प्रार्थना ही प्रसन्न होकर भगवान कामदेव उसे प्रकट कर देगा और सब संशय दूर हो जायगा। ऐसा निश्चयकर वह उठकर बैठ गया और उन कन्याओं के साथ पासों से, गाने से, वीणा बजाने से, और सुंदर वार्ताओं और अनेक आलाप और सुकुमार कला-विलास से विनोद करने लगा। इस प्रकार वहाँ थोड़ी देर ठहर कर बाहर जाकर उपवन देखने की इच्छा से वह क्रीड़ा-पर्वत के शिखर पर चढ़ा।

कादंबरी भी उसे देखते ही- महाश्वेता के आने में देर लगी- इसलिए उसका मार्ग देखने के बहाने उस खिड़की को छोड़ अपने सौध की सबसे ऊपर की अटारी पर, पार्वती जैसे कैलाश पर्वत पर चढ़े, उस प्रकार चढ़ गई। वहाँ फेन के समान सफेद चार छोटे-छोटे पंखों को हिलाकर दासियाँ उसको पवन कर रही थीं और वह शिर पर फूलों की सुगंध से ललचाकर घूमते हुए भ्रमरों का मानो दिन में ही काला अवगुंठन ओढ़कर चंद्रापीड़ की अभि-सारिका होने के वेष का अभ्यास कर रही थी। वह कभी तमा-लिका के कंधे पर हाथ धर कर, कभी अपनी सखी मदलेखा का आलिंगन कर, कभी प्रतिहारी की छड़ी की मूँठ पर गाल रखकर और कभी कमल फेंक कर उसका प्रहार होने से भागती हुई दासी के पीछे कितने ही पग चल कर हँसती-हँसती चंद्रापीड़ को देखने लगी। चंद्रापीड़ भी उसको देखने लगा। इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया और जब प्रतिहारी ने आकर महाश्वेता के लौट आने की सूचना दी तब वह अटारी पर से नीचे उतरी।

नवम परिच्छेद

चंद्रापीड़ ने भी नीचे उतर स्नान के पीछे एक अखंडित शिला तल पर देवार्चन करके दिन का सब आहारादिक कार्य किया। फिर वह क्रीड़ा पर्वत के पूर्व भागों में पड़ी हुई एक मनोहर मरकत-शिला पर बैठा। तब एक साथ उसको कोई अत्यंत तीव्र धवल प्रकाश दीख पड़ा जो दिन को जल के समान धोने लगा। जिस दिशा में से वह प्रकाश आ रहा था उस ओर कुतूहल से उसने जो नेत्र फेंके तो बहुत सी कन्याओं के बीच में मद-लेखा को आते देखा। उसके ऊपर सफेद छतरी लग रही थी और दोनों ओर चमर झले जा रहे थे। फूँक मारने से उड़ जायँ ऐसे साँप की केंचुल के समान स्वच्छ कल्पलता के दो धुले हुए वस्त्र पहिने केयूरक आगे-आगे मार्ग बताता जाता था, और पीछे-पीछे हाथ में चमेली के फूलों के गजरे पहिने तमालिका चली आ रही थी। उसके पास ही तरलिका थी जिसके हाथ में सफेद कपड़े से ढँकी हुई एक छोटी सी टोकरी में चंद्र के सहोदर के समान प्रभा बरसाता अत्यंत शुद्ध एक हार था। वह नारायण के नाभि-कमल के मृणाल-दण्ड के समान, मंथन-श्रम होने से छोड़ी हुई वासुकी नाग की केंचुल के समान अथवा पितृगृह के वियोग से गलकर गिरे हुए लक्ष्मी के हास्य के समान था। उस हार को देखकर चन्द्रिका को लज्जित करने वाली इस धवलता का कारण यही है यह निश्चय कर चंद्रापीड़ ने दूर से ही मदलेखा का स्वागत किया।

मद लेखा आकर उसी मरकत-शिला पर थोड़ी देर बैठी। फिर उठकर उसने चंदन-रस का चंद्रापीड़ को लेप किया और उसको दोनों वस्त्र पहना कर मालती के फूलों की मालाओं से उसके शेखर की रचना की। तब हाथ में वह हार लेकर बोली, राजपुत्र! अहंकार-रहित आपकी मनोहर कांति प्रीति-परवश जन से क्या

क्या नहीं कर सकती ? आपका निष्कारण स्नेह-मय चरित्र देख कौन आपका बंधु न होगा ? आपने यहाँ पधारकर जो बड़ा उपकार किया है, उसका बदला क्या हो सकता है और आप का आगमन हम किस प्रकार सफल कर सकती हैं ? इस बहाने कादंबरी आपको केवल अपना प्रेम दिखाना चाहती है, विनय नहीं, यह हार अमृत-मंथन करके निकाले गए सब रत्नों में से शेष रत्न का है, इसलिए भगवान जलधि को यह बहुत प्रिय है. उन्होंने इसे वरुण को घर आने पर दिया था। वरुण ने गंधर्व-राज को और गंधर्वराज ने कादंबरी को। कादंबरी ने इन आभूषण को आपके शरीर के योग्य देख, चंद्र का योग्य स्थान आकाश ही है पृथ्वी नहीं, यह सोच कर आपके पास भेजा है। यद्यपि आप-जैसे सत्पुरुष अपने शरीर को गुण-गण-रूपी आभूषणों से अलंकृत मान आभरण को क्लेशकारक समझ धारण नहीं करते, तो भी कादंबरी की प्रीति का विचार होना ही चाहिए। क्या भगवान नारायण ने कौस्तुभ नामक शिला के टुकड़े को लक्ष्मी का सहोदर जानकर बहुत मान से अपनी छाती पर नहीं पहिन लिया ? नारायण कुछ आपसे बढ़कर नहीं हैं और न कौस्तुभ मणि 'शेष' से बढ़कर है। आकार की अनुकृति में कादंबरी की बराबरी लक्ष्मी भी नहीं कर सकती। आपको उसका मान तो रखना ही चाहिए। यदि आप उसका प्रणय भंग करेंगे तो महाश्वेता को दुःख के सहस्रों उलाहने देकर वह प्राण-त्याग करेगी। इतना कहकर मदलेखा ने उनके वक्ष-स्थल पर मेरु पर्वत के तट पर तारागण के समान वह हार धारण कर दिया !

तब चन्द्रापीड़ ने अत्यन्त विस्मित-भाव से कहा- मदलेखा !

मैं क्या कहूँ ? तुम बहुत निपुण हो। ग्रहण कराना जानती हो। मुग्धे ! अपना मैं कौन हूँ, इस बात का तो अब अंत ही हो गया। तुम सब सौजन्यशील कुमारिकाओं ने मुझे अपना लिया है। इसलिए जिस व्यापार में चाहो मुझे नियुक्त करो। यह कहकर चन्द्रापीड़ ने कादंबरी के विषय में बहुत देर तक बात-चीत की और फिर मदलेखा को विदा किया। उसके थोड़ी दूर जाने पर क्रीड़ा-पर्वत पर उदयाचल पर आए हुए चंद्र के समान, चंदन वस्त्र तथा हार से धवल दीखते चंद्रापीड़ को देखने के लिए कादंबरी सब परिजन को दूरकर केवल तमालिका के साथ फिर सौध के उच्च शिखर पर चढ़ी। वहाँ से पहिले की भाँति ही वह विविध भ्रविलास-रूपी तरंग से भरे हुए उद्दीपक कटाक्षों से उसका मन हरने लगी। कितनी ही वार साँस की सुगंधि से झूमते हुए भ्रमरों को वस्त्र की आँचल से झटका देकर उनकी गुंजार से वह मानो चन्द्रापीड़ को बुला रही थी, कितनी ही बार पवन से छाती के वस्त्र उड़ जाने की घबराहट में अपने दोनों हाथों को मोड़ और उनसे स्तनों को ढँक कर मानो आलिंगन का संकेत करती थी, कितनी ही बार केशपाश में से फूल लेकर अपनी अंजुली भर लीला-सहित म्रषने से मानो नमस्कार करती थी और कितनी ही बार दोनों हाथों की तर्जनियों से मोती का हार फिरा कर हृदय में उत्पन्न होती उत्कंठा को मानो सूचित करती थी।

इस प्रकार सूर्य-प्रकाश मंद पड़ कर दिवस लाल-लाल दीखने लगा तब तक कादंबरी मुँह मोड़-मोड़ कर उसको अनेक भाव उत्पन्न होने के कारण कटाक्ष से देखती-देखती वहीं खड़ी रही। फिर रवि-वियोग से बंद हुए पद्म वाले कमल-वन जब हरे दीखने लगे और अंत में जब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ने लगा, तब कादंबरी

सौध के शिखर पर से नीचे उतरी और क्रीड़ा-पर्वत पर से चंद्रापीड़ उतरा और कादंबरी के परिजनों के बताए हुए एक चंद्र-शीतल मुक्ता-शिला पर लेटा। वह लेटा ही था, इतने में केयूरक ने आकर कहा, देवी कादंबरी आप से मिलने के लिए आई हैं। यह सुनकर चंद्रापीड़ संभ्रम में उठ बैठा और उसने थोड़ी सी सखियों से परिवृत कादंबरी को मदलेखा का हाथ पकड़े आती हुई देखा। उसने साधारण स्त्री के समान केवल एक लड़ की माला पहन रक्खी थी। उस काल रमणीय लगते वेष में साक्षात् चंद्रोदय-देवता के समान आकर वह सामान्य स्त्री की भाँति भूतल पर ही बैठ गई।

यह देख कर चंद्रापीड़ भी मदलेखा के बहुत बार कहने पर भी भूमि पर ही बैठा और सब कन्याओं के बैठ जाने पर थोड़ी देर ठहर कर कहने लगा, देवि! आपकी सरलता और अभिमान-विहीन मधुर सुजनता ही मेरे समान नवीन सेवक का भी जब ऐसा आदर करती है तब धन्य हैं उन परिजन को जिस पर आपका अधिकार हो! जो सेवक आपकी आज्ञा पालने के योग्य है उसका आदर कैसा? यह शरीर तो परोपकार के ही लिए है और यह जीवन तृण के समान तुच्छ है। आपने यहाँ पधार कर जो बड़ा अनुग्रह किया है उसके बदले में तुच्छ तन और जीवन अर्पण करने में मैं लजाता हूँ। तो भी यह मैं हूँ, यह शरीर है, यह जीवन है! इनमें से जो अच्छा लगे उसका ग्रहण करके आप मेरा मान बढ़ाओ।

जिस समय चंद्रापीड़ यह कह रहा था मदलेखा ने बात काट कर तनिक हँसते-हँसते कहा, राजकुमार! आप यह क्यों कहते है? आपके कहे बिना ही हमारी सखी ने यह सब आप का अंगी-

किया है। फिर थोड़ी देर ठहर कर उपयुक्त अवसर पा उसने राजा तारापीड़, रानी विलासवती और आर्य शुकनास के संबंध में जिज्ञासा की और पूछा उज्जयिनी कैसी है? भारतवर्ष कैसा है? मर्त्यलोक रमणीय है या नहीं? इस प्रकार बहुत देर तक वार्तालाप करने के पीछे कादंबरी उठी और चंद्रापीड़ के पास सोने वाले केयूरक और अन्य परिजन को आज्ञा देकर अपने शयन-सौध के शिखर पर चली गई।

रात बीत जाने पर जब शयन-गृह के मंद हुए दीपक दुर्बल हो गए और अरुणोदय से तेजहीन होते तारे मानो डर-डर कर मंदराचल के लता-मंडपों की झाड़ी में घुसने लगे, तब चंद्रापीड़ ने शिला-तल से उठकर, मुँह धोकर, संध्या-वंदन कर पान की बीड़ी खाई और केयूरक से कहा, प्रिय! देख आओ देवी कादंबरी अभी उठी या नहीं अथवा इस समय कहाँ है? केयूरक ने शीघ्र ही लौटकर सूचना दी, देव! महाश्वेता के साथ वे मंदर-प्रासाद के नीचे आँगन में बनी हुई बैठक के चबूतरे पर बैठी है।

यह सुन राजकुमार गंधर्व-राजपुत्री से मिलने गया। वहाँ पहिले उसने महाश्वेता को देखा जिनके शुभ्र ललाट पर लेपित भस्म लग रही थी। फिर उसने कादंबरी को देखा। तब उनके निकट जाकर नमस्कार कर एक आसन पर जा बैठा और थोड़ी देर ठहर कर महाश्वेता का मुख देख मुसकुराया जिससे उसके गाल कुछ प्रफुल्लित हो गए। महाश्वेता उसका अभिप्राय समझ गई और कादंबरी से बोली, सखी चंद्रकांत मणि जैसे चंद्रमा की किरणों के संस्पर्श से पिघलता है उसी प्रकार चंद्रापीड़ तुम्हारे गुणों से आर्द्र हो रहे हैं। इसलिए ये बोल नहीं सकते है। परन्तु इनकी इच्छा जाने की हो रही है क्योंकि

पीछे छूटा हुआ समस्त राजचक्र इनका समाचार न पाकर दुःखी होगा। तुम दोनों की प्रीति तो अब दूर रहने पर भी कमलिनी और सूर्य तथा कुमुदिनी और चंद्र की भाँति प्रलय-काल तक स्थिर रहेगी। इसलिए तुम इनको जाने की अनुमति दे दो।

यह सुन कादंबरी ने कहा- जिस भाँति उनकी अंतरात्मा उसी प्रकार सब परिजन सहित मैं भी कुमार के अधीन हूं। इस कारण इसमें अनुरोध कैसा? इतना कह कादंबरी ने गंधर्व-कुमारों को बुलाकर राजकुमार को इनके देश में पहुंचा दो- यह आज्ञा दी। उस समय कादंबरी के प्रेम से स्निग्ध नेत्र और मन अपनी ओर आकृष्ट होने से राजकुमार इतना ही बोल सका, देवि! बहु-भाषी का लोग विश्वास नहीं करते इसलिए परिजन-कथा में आप मुझे भी स्मरण करना. मैं थोड़े में इतना ही कहता हूं। इतना कह कर वह वहाँ से विदा हुआ।

राजकुमार लौटकर धीरे-धीरे महाश्वेता के आश्रम के पास आया। वहाँ उसने देखा इंद्रायुध के टापों का अनुसरण करती आई हुई उसकी सेना अच्छोद सरोवर के तट पर आ पड़ी है। तब उसने पहुंचाने के लिए साथ आए हुए गंधर्व-कुमारों को विदा किया। उसी समय उसकी सेना वालों ने उसे देख लिया और आनंद, कुतूहल तथा विस्मय सहित सबने उठ उठ कर उसे प्रणाम किया। मध्याह्न का समय उसने महाश्वेता कादंबरी, मदलेखा, तमालिका तथा केयूरक के संबंध में वैशंपायन तथा पत्रलेखा के साथ वार्तालाप करने में बिताया और संध्या के उपरांत रात्रि में शय्या में कादंबरी का चिंतन करते करते समस्त रात उसने जागने में ही बिताई।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर वह विचार-मग्न

सभा-मंडप में बैठा हुआ था इतने में अकस्मात् प्रतीहार के साथ केयूरक आता हुआ दिखाई पड़ा। दूर से ही मस्तक को भूमि पर रख कर केयूरक ने प्रणाम किया। पास आने पर चंद्रापीड़ ने उसे गाढ़ आलिंगन देकर अपने निकट बैठाया। फिर सम्मान-पूर्वक वह उससे पूछने लगा, केयूरक! सखीजन-परिजन-सहित देवी कादंबरी तथा भगवती महाश्वेता सब कुशल से तो हैं? केयूरक ने बड़े आदर से उत्तर दिया, राजकुमार! वे कुशलिनी आज हुईं जो आपने ऐसा प्रश्न किया। फिर केयूरक ने नीले वस्त्र में लिपटे हुए कमल के पत्रों के एक संपुट को निकाला और थाल के बेठन को हटाकर उसमें कादंबरी के भेजे कितने ही अभिज्ञान दिखाए। उसमें मरकत के समान हरी छिली हुई सुंदर मंजरी वाली दूधिया सुपारी, सुग्गे के गाल जैसे सपेत पान, शिव-मस्तक पर शोभायमान चंद्र-खंड के समान कपूर का बड़ा टुकड़ा, और मृग-मद की तीव्र गंध से मनोहर चंदन का विलेपन था।

उन सब को समर्पण कर केयूरक ने कहा, राजकुमार! कोमल अंगुलियों के विवर में से निकलती हुई रक्त-किरणों से छाई हुई अंजुली से चूड़ामणि को स्पर्श करके देवी कादंबरी ने आपको वंदना कही है, केश-कपाल के माणिक्य की प्रभा से रंगे हुए ललाट से मदलेखा ने नमस्कार किया है और तमालिका तथा सब कन्याओं ने सीमन्त की मकरिका के अग्र भाग का कोण भूमि पर रख कर और चरण-रज-स्पर्श-सहित आपको पाद-प्रणाम कहलाया है। आपके वियोग से संपूर्ण गांधर्व राजनगर महोत्सव के उपरान्त वाले दिन के समान श्रीहत प्रतीत होता है। मेरा हृदय मेरी इच्छा के बिना भी मानो हठ से आप सरीखे निष्कारण मित्र से मिलने की इच्छा करता है और देवी कादंबरी का शरीर बहुत अस्वस्थ है।

आपके बिछौने पर पड़ा हुआ यह शेषहार उन्होंने भेजा है। इतना कहकर केयूरक ने उत्तरीय वस्त्र के पल्ले में बँधा हुआ वह हार निकाल कर चामर-ग्राहिणी के हाथ में दिया।

चंद्रापीड़ ने उन सब वस्तुओं को शिरोधार्य करके अपने हाथ में लिया और कादंबरी के पिघले हुए कपोल-लावण्य के समान शीतल स्पर्श वाले मनोहर और सुगंधित लेप का लेपन कर उस पान की खीली खाई और वह हार कंठ में पहिना। फिर थोड़ी देर पर उठकर बाएँ हाथ से केयूरक के कंधे का सहारा ले खड़े-ही-खड़े यथा-योग्य सम्मान देने से आनंदित हुए प्रधान राजा लोगों को विदाकर वह धीरे-धीरे गंध मादन हाथी को देखने चला। वहाँ थोड़ी देर ठहर कर थोड़ी सी घास उसे अपने आप ही डाल अपने प्रिय घोड़ों को देखने अश्व-शाला में गया।

वहाँ चंद्रापीड़ इंद्रायुध की पीठ पर से एक ओर खिसकी हुई काठी ठीक करता हुआ अश्व-शाला के खूँटे पर शरीर को सहारा देकर कुतूहल सहित केयूरक से बोला, केयूरक! मेरे आने के पश्चात गांधर्व राज-कुल में क्या-क्या हुआ और गांधर्व-राजपुत्री ने किस व्यापार में दिन बिताया? केयूरक ने राजकुमार के प्रश्नों का प्रत्युत्तर देते हुए कहा, राजकुमार! आपके बाहर आते ही तुरंत कन्याओं के अंतःपुर में नूपुरों की रण-रणाहट से सहस्रों हृदयों के प्रस्थान-दुंदुभी का मानो कल-कल हुआ। फिर देवी कादंबरी परिजन-सहित सौध-शिखर पर चढ़कर घोड़ों की उड़ाई हुई धूलि से धूसर दीखते आपके जाने के मार्ग को देखती रहीं। पीछे जब आप दृष्टि के बाहर हो गए तब मदलेखा के कंधे पर अपना मुँह रख कर बहुत देर तक वह वहाँ ही रहीं, अंत में खिन्न होकर वहाँ से महाकष्ट से नीचे उतर कर

थोड़ी देर तक सभा-मंडप में बैठीं और फिर जिस क्रीड़ा-पर्वत पर आप रहे थे वहाँ ही जा पहुँची। वहाँ आपके ही निवास-स्थान के चिह्नों को देखने में उन्होंने सारा दिन बिताया और सूर्यास्त के पीछे जब चंद्रमा का उदय हुआ तब वह महाकष्ट से पैर धर-धर कर मंद गति से चल कर शयन-गृह में गईं और पलंग पर लेट रहीं। वहाँ अति प्रबल शिर-पीड़ा से करवटें बदलतीं दारुण अग्नि के समान ज्वर-पीड़ा में सारी रात खुली आँखों से उन्होंने महा-कष्ट में बिताई और प्रभात होते ही मुझे बुलाकर आप का समाचार लाने के लिए आज्ञा दी।

यह सुनकर चंद्रापीड़ घोड़ा लाने के लिए कह कर बाहर आया और ज़ीन कस कर शीघ्र लाए हुए इंद्रायुध पर सवार हो पीछे पत्रलेखा को बैठा कर केयूरक के साथ हेमकूट की ओर चल पड़ा। वहाँ कादंबरी के सौध के नीचे घोड़े पर से उतर कर अश्व को द्वारपाल को सौंप कादंबरी का प्रथम दर्शन करने के लिए उत्सुक वह पत्रलेखा सहित भीतर गया। राजकुमार को देखते ही परिजनों ने प्रणाम कर तुरंत सरक कर उसको मार्ग दिया। कुछ दूर और जाकर उसने केले के तोरणों के तल में प्रवेश किया। वहाँ चंदन पंक की वेदियाँ बनाई गई थीं, पुंडरीक की घंटालियाँ बाँधी गई थीं और मल्लिका की बड़ी-बड़ी कलियों के हार लटकाए गये थे। वहाँ मृणाल की छड़ी हाथ में लेकर फूलों के सुंदर गहने धारण किए वसंत-लक्ष्मी की प्रतिमा के समान द्वारपालि-काएँ खड़ी हुई थीं। उन सबके बीच होता हुआ राजपुत्र हिम-गृह के बीच में आ पहुँचा। वह मध्य भाग मानो हिमालय का हृदय, चंदन-वन के सब देवताओं का जन्म-स्थान और माघ मास की सब रात्रियों का निवास था।

इस प्रकार के हिम-गृह के बीच में एक ओर सखियों के झुंड से घिरी हुई कादंबरी को उसने देखा। वह ऐसी लगती थी मानो भगवती गंगा सब नदियों के साथ हिमालय की गुहा की तलहटी में पहुँच गई हो। मृणाल दंड की बनी एक मंडपिका के नीचे फूलों के बिछौने पर कादंबरी सो रही थी। हृदय के साथ मानो उसके सब अवयव भी प्रियतम के पास चले गये हों इस भाँति वह दुर्बल दीखती थी और चंदन से श्वेत हुए ललाट में मानो चन्द्र ने उसका स्पर्श करके, आँसू बहाते नेत्र पर वरुण ने चुम्बन करके, अधिकाधिक श्वास छोड़ते हुए मुख पर वायु ने दंशन करके, संताप से तपे हुए अंगों में सूर्य ने वास करके और कामाग्नि से प्रज्वलित हृदय में अग्नि ने प्रवेश करके, स्वयं देवताओं ने ही सब प्रकार से मानों उसका सौभाग्य लूट लिया हो! चंद्रापीड़ को दूर से ही सम्मुख आता देख कादंबरी फूलों के बिछौने पर से उठी, तब तक राजकुमार ने निकट आकर पूर्ववत् पहिले महाश्वेता को प्रणाम किया और पीछे विनय-पूर्वक उसको नमस्कार किया। कादंबरी प्रणाम करके उसी कुसुम-शयन पर बैठ गई। प्रतीहारी ने एक सुवर्णमय बैठका लाकर रख दिया जिसके पायों में चमकते हुए रत्न जड़े हुए थे। परन्तु चंद्रापीड़ ने उसे पैर से हटा दिया और भूमि पर ही बैठा। उसी समय केयूरक ने पत्र लेखा को दिखाकर कहा, देवी! महाराज चंद्रापीड़ का स्नेह-भाजन पत्रलेखा नामकी ताम्बूलवाहिनी यही है। कादंबरी के उस ओर देखते ही पत्रलेखा ने आदरपूर्वक उसको प्रणाम किया और कादंबरी ने प्रेम से, आओ कह कर उसे अपने पास ही बैठा लिया। उसको देखते ही अत्यन्त प्रेम उत्पन्न

होने के कारण कादंबरी बार-बार स्नेह-पूर्वक अपने कर-पल्लव से उसका स्पर्श करने लगी।

थोड़ी देर में स्वागत के योग्य सब उपचार हो चुकने पर कादंबरी को ऐसी अवस्था में देख चंद्रपीड़ने युक्तिपूर्वक उसके मनोभाव जानने की इच्छा से कहा, हे देवी! तुम जो यह अविचल संतापाधीन व्याधि सहन करती हो उससे जितनी पीड़ा हमको होती है उतनी तुमको नहीं होती होगी इसलिए देह-दान से भी तुमको मैं स्वस्थ करने की इच्छा करता हूँ। तुमको काँपते देख अनुकम्पा करता हुआ और कुसुमों में पीड़ा से पड़ी तुमको देखता हुआ हृदय मानो निकल पड़ता है। तुम्हारी कृश भुजा अनंगद हुई है। गाढ़ संताप से तुम्हारी दृष्टि में स्थल कम-लिनी के समान रक्त तामरस दीखता है। तो अब स्वयंवर योग्य मंगल भूषण ग्रहण करो। बाल्यावस्था के कारण कादम्बरी मुग्धा थी किन्तु मानो कामदेव ने उस समय बुद्धि को उपदेश दिया हो राजकुमार के अर्थयुक्त भाषण को वह समझ गई किन्तु लजाकर रह गई। चन्द्रापीड़ बहुत देर तक महाश्वेता के साथ प्रीतियुक्त बातचीत करने के अनन्तर अपने डेरे पर जाने के लिये कादम्बरी के भवन में से निकला।

राजकुमार बाहर निकल कर घोड़े पर सवार हो ही रहा था तब तक केयूरक ने पीछे से आकर कहा, महाराज! पत्रलेखा के प्रथम दर्शन से ही देवी उससे अत्यन्त स्नेह करने लगी हैं इसलिये उनकी इच्छा है इसे आप यहीं छोड़ दें मदलेखा ऐसा विनय करती है। वे इसे पीछे भेज देंगी। चंद्रापीड़ने यह सुनकर उत्तर दिया केयूरक! पत्रलेखा धन्य है जो उस पर देवी की दुर्लभ कृपा हुई है सो यह यहीं रहे। इतना कह कर कुमार वहाँ

से चल पड़ा। जब वह अपनी सेना के पास आ गया तो पिता के पास से आए हुए अत्यन्त परिचित प्रिय पत्र-वाहक को देख कर घोड़े को चट रोक प्रीति से फैले हुए नेत्र सहित दूर से ही पूछने लगा, कहो! सब परिजनों के साथ पिता और सब अन्तःपुर के साथ माता कुशल पूर्वक तो है। यह सुन उसने निकट आकर प्रणाम किया और हाँ कह कर दो पत्र दिए। राजकुमार पत्रों को सिर से लगा कर उन्हें पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—प्रजा कुशलपूर्वक है, परन्तु तुमको बिना देखे बहुत दिन हो गये हैं इस कारण हमारा हृदय बहुत उत्कंठित है और सब अन्तःपुर सहित देवी भी बहुत उदास रहती हैं। इसलिए पत्र को बाँचते ही प्रस्थान कर देना। यही बात शुकनास के भेजे हुए पत्र में भी थी। राजकुमार शुकनास का भेजा हुआ पत्र भी ज्योंही पत्र पढ़ चुका वैशंपायन ने पास आकर अपने पास आए हुए भी दो पत्र उसे दिखाए। उन दोनों पत्रों का भी यही तात्पर्य था।

—**—

८—अवंति के राजकुमार का विछोही होकर स्वदेशागमन

राजकुमार ने जैसी पिता जी की आज्ञा इतना कहकर घोड़े पर बैठे ही बैठे प्रस्थान का धौंसा बजवा दिया। थोड़ी ही देर में उसके चारों ओर अश्वारोही ही अश्वारोही दीखने लगे। उन अश्वारोहियों के बीच बलाहक के पुत्र मेघनाद को चंद्रापीड़ ने संबोधन करके कहा, मेघनाद! तुम यहीं रहो और पत्रलेखा को लेकर आना। जब केयूरक पत्रलेखा को यहाँ पहुँचाने आयेगा तब तुम मेरी ओर से देवी कादम्बरी को उसके द्वारा प्रणाम सहित यह विज्ञप्ति कहला भेजना—इस प्रकार मेरे चले जाने से देवी को मेरा स्नेह कपट का मिथ्या प्रपंच ज्ञात होगा और मेरी वाणी और मन में भिन्नार्थ विदित होगा परंतु पिता की आज्ञा के कारण अब मैं क्या करूँ? पिता जी अनुल्लंघनीय आज्ञा का केवल मेरे शरीर पर ही अधिकार है। हृदय ने तो हेमकूट में रहने की वांछा से सहस्र जन्मांतर तक देवी का दास रहने के लिये विक्रय-पत्र लिख दिया है। पिता की आज्ञा से मैं इस समय उज्जैन जा रहा हूँ। जन-कथा-कीर्तन में चंद्रापीड़ चांडाल को भी कभी-कभी आप स्मरण कर लेना। चंद्रापीड़ जीवित रहेगा तो देवी के चरणारविन्दों की वन्दना करने के आनन्द का अनुभव किये बिना नहीं रह सकेगा।

इतना कहकर राजकुमार ने प्रदक्षिणा सहित शिर से महाश्वेता के चरणों की वन्दना करने, तथा मदलेखा और पत्रलेखा को गाढ़ आलिंगन कहने की आज्ञा देकर वैशंपायन से

कहा, मित्र ! अपने पक्ष के राजाओं की सेना को क्लेश न पहुँचे इस प्रकार धीरे धीरे उन्हें लेकर तुम पीछे आना। इसके उपरान्त वैशंपायन को सेना का प्रधान नियुक्त करके आप उसी प्रकार घोड़े पर बैठा बैठा राजकुमार चन्द्रापीड़ कादंबरी के नये वियोग के कारण शून्य हृदय से पत्रवाहक से उज्जैन का रास्ता पूछता-पूछता आगे बढ़ निकला।

गमनरूपी विलास के हर्ष से हिनहिनाहट करके कैलाश को कँपाती और टापों के आघात से पृथ्वी को खंडित करती, बहुत से तरुण तुरंगवाली असवारों की सेना उसके पीछे पीछे चली जा रही थी। निदान एक दिन चलते चलते वे लोग एक ऐसे शून्य वन में आए जिसमें प्रायः अत्यंत ऊँचे तरु के वृक्ष खड़े हुए थे। वहाँ हाथियों के गिराये हुए वृक्षों के पड़े रहने के कारण पगडंडी टेढ़ी हो गई थी। एक बड़े वृक्ष की जड़ में वनदुर्गा की मूर्ति खुदी हुई थी। कहीं किनारे पर लगे हुए वृक्षों में पुराने वस्त्रों और चीथड़ों की ध्वजाएँ बँधी हुई थीं। सूखी हुई कितनी ही गिरि-नदियों से उस वन का मध्यभाग असन्न हो गया था। और कहीं बटोहियों ने रेती खोदकर जो छोटी छोटी कुइयाँ खोदी थीं उनमें थोड़ा थोड़ा मलिन जल मिल जाता था। वहाँ रह रहकर कुक्कुटों और कुत्तों के शब्द सुनने से अनुमान होता था जैसे झाड़ी के बीच में कोई छोटा सा गाँव बसा हो।

ऐसे शून्य वन में दिन भर चलने के अनन्तर जब रवि का बिम्ब तिरोहित हो चला था, राजकुमार को दूर से ही एक बड़ी लाल ध्वजा दिखाई पड़ी। वन के उस प्रदेश में शाखा रहित अनेक शाल्मली तथा पलाश के वृक्ष लगे हुए थे जिनमें नई कोंपलें निकल ऊपर को चढ़ रही थीं। कहीं हरताल के समान पीले

एक बाँस के वृक्षों की बाढ़ बनाई गई थी और हिरनों के डराने के लिए तृण-पुरुष खड़े किए गये थे। एक पुरातन लाल चंदन के वृक्ष के ऊपर बँधा हुआ वह ध्वज इधर-उधर मानों पथिकों के बलिदान का रास्ता दिखाता हुआ लहरा रहा था! उस ध्वज पर कौड़ियाँ लगाकर बहुत से गोल-गोल घेरे तथा अर्द्ध-चन्द्र बनाए गए थे जिन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों अपने पुत्र यम के महिष की रक्षा के लिए उसके शिखर पर उतरे हुए सूर्य्य ने चन्द्र को उतार दिया हो! उस ध्वज पर एक आकाश चुम्बी लोह की त्रिशूलिका भी लगी हुई थी और उसकी नोंक से बँधी हुई लौह शृंखलाओं में जो घंटियाँ लटक रहीं उनके हिलने से घोर घर-घर शब्द हो रहा था। उस ध्वज की ओर थोड़ी दूर चलने के पीछे राजकुमार ने हाथी दाँत के बने हुए बाल के समान धवल कपाट के भीतर चंडी का दर्शन किया।

मंदिर के सम्मुख काले पत्थर के चौतरे पर लोह का एक महिष बैठा था जिसपर लाल चंदन की छाप लगी थी। उसे देखकर ऐसा लगता था मानों यम ने रुधिर से लाल हुआ अपना हाथ उस पर फेरा हो। आँगन में लगे हुए लाल अशोक के वृक्ष की डालियों के बीच में लाल कुक्कुट निरन्तर भरे रहते थे जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों अकाल में ही फूलों के गुच्छे लटक रहे हों! वहाँ भाला, फरसा आदि कितने ही अस्त्र धरे थे जिनमें काले चँवर का प्रतिबिंब पड़ने से ज्ञात होता था मानों सिर काटने से बाल चिपके हो!

उस मंदिर में एक बूढ़ा द्रविड़ धार्मिक रहता था जिसका पुष्ट शरीर मोटी मोटी नसों के जाल से भरा हुआ था। उनसे वह ऐसा लगता था मानों जला हुआ ठूँठ समझ गोह और

गिरगिटानों के झुंड उस पर चढ़े हों। अम्बिका के पैरों में गिरने से उसके काले ललाट पर घट्टा पड़ गया था और किसी रासायनिक के दिए हुए सिद्धांजन के लगाने से उसकी एक आँख भी फूट गई थी। इस कारण वह हर समय दूसरी आँख में अंजन लगाने के लिए एक काठ की सलाई को पतली किया करता था। बाहर निकले हुए दाँतों की चिकित्सा के लिए वह तितलौकी के पसेव को लगाता रहता था और पहुँचे की एक नस को रुई से मो लेने के कारण उसके बाएँ हाथ की उँगलियाँ सिकुड़ गई थीं। वह अदृश्य हो जाने के कितने ही मंत्रों और साधनों का संग्रह करता रहता था और दिन भर सिर हिला हिलाकर मच्छर की भनभनाहट के समान कुछ गाया करता था। लंगड़ा होने के कारण वह धीरे धीरे चलता और बहरा होने के कारण इंगितों से बातें करता था। अनेक उपायों के द्वारा वह फल गिराता था जिससे चिढ़े हुए बन्दरों ने पंजों से खसोट कर उसकी नाक पर छेद कर दिए थे। प्रति वर्ष वसन्त में होली खेलने वाले लोग एक टूटी खाट पर बिठा कर लाई हुई वृद्धा दासी के साथ उसके विवाह का स्वांग रचा करते और वह दाँत पीस-पीस कर रह जाता था। सूखी वन लताओं की एक बड़ी टोकरी फूलों को भरने के लिए और बांस की एक लम्बी फूल तोड़ने के लिये बस यही उसकी मुख्य संपत्ति थी। काले कम्मल के टुकड़े की एक टोपी भी उसके पास थी जो क्षण भर के लिए भी उसके शिर से अलग नहीं होने पाती थी।

उसी वन में चंद्रापीड़ ने पड़ाव करने का संकल्प करके घोड़े पर से उतर मंदिर में जा चंडिका को भक्ति-पूर्ण चित्त से प्रणाम किया। चलते समय प्रदक्षिणा पूर्वक फिर प्रणाम करके वह

उस शांत स्थान को देखने के चाव से इधर-उधर टहल रहा था इतने में उसने एक जगह उस द्रविड़ धार्मिक को क्रोध में ऊँचे स्वर से रोता-चिल्लाता हुआ देखा। कादंबरी के वियोग से उत्पन्न हुई उत्कंठा और उद्वेग से स्वयं पीड़ित होने पर भी उसको देख कर वह बहुत देर तक हँसा। फिर दया आ जाने से उसके साथ उपहास करते हुए अपने सैनिकों को रोक कर विनय तथा मीठे-मीठे वचनों से उसने समझा-बुझा कर उसे ठंडा किया और भगवान सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जब सब राजपुत्रों ने वृक्षों के नीचे डेरे डाल दिए और बहुत सी जगहों में सुलगाई हुई अग्नि की प्रभासे अंधकार का नाश हो जाने के कारण सब सेना का शिविर दिन के समान प्रकाशमान लगने लगा तब परिजनों द्वारा एक भाग में खड़ा किए हुए शिविर में जाकर चंद्रापीड़ भी विश्राम करने लगा परन्तु हृदय के संताप के कारण अकुलाहट होने से उसके मनको किसी प्रकार सुख नहीं मिला। वह केवल आँख मूँदकर हेमकूट और महाश्वेता का स्मरण और कादंबरी के पुन: दर्शन की अभिलाषा करता रहा। इसी प्रकार समस्त रात्रि बीत गई किन्तु उसे नींद नहीं आई। प्रात:काल उठकर उसने उस द्रविड़ धार्मिक की इच्छा के अनुसार दान देकर उसका मनोरथ पूरा किया और सेना के प्रस्थान की आज्ञा दी।

इसी प्रकार दिन भर यात्रा तथा रात्रि में रमणीय स्थानों में पड़ाव करता हुआ कुछ दिनों के उपरान्त राजकुमार उज्जयिनी की सीमा में जा पहुँचा और अकस्मात् आगमन से हृष्ट नगरनिवासियों की अर्घ-कमल के समान सहस्रों नमस्कारावलियों को स्वीकार करता हुआ उसने नगरी में प्रवेश किया। द्वार पर चंद्रापीड़

आ पहुँचे हैं यह सुनते ही राजा तारापीड़ अत्यंत आनंद के भार से मंद मंद चलते, नेत्रों में आनंदाश्रु टपकाते, पीछे पीछे सैंकड़ों राजाओं सहित पैदल ही सामने मिलने आए। पिता को दूर से देखते ही चंद्रपीड़ ने घोड़े पर से उतर कर चूड़ामणि की किरणों से व्याप्त हुए मस्तक को भूमि पर झुका कर उन्हें प्रणाम किया। पिता ने उसे गाढ़ आलिंगन किया और जब माननीयों को वह प्रणाम कर चुका तब उसे साथ लेकर वह रानी विलासवती के भवन में गए। वहाँ थोड़ी देर तक दिग्विजय की बातचीत करके चंद्रापीड़ शुकनाम से मिलने गया और मनोरमा से मिलकर विलासवती के भवन में फिर लौट आया और स्नानादिक सब क्रियाएँ उसने वहीं समाप्त की। फिर संध्या हो जाने पर वह अपने भवन को गया किन्तु कादंबरी के बिना उसे केवल अपना शरीर, भवन तथा अवन्ति नगरी ही नहीं अपितु समस्त विश्व सूना सूना सा जान पड़ने लगा।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। तब एक दिन मेघनाद पत्रलेखा को लेकर उज्जयिनी आ पहुँचा। पत्रलेखा के नमस्कार करने पर पर दूर से ही मुस्कराहट से प्रीति दिखाकर चंद्रपीड़ ने स्वभाव से प्रिय होने पर भी वह मानो कादंबरी के पास रहने से सौभाग्य लेकर आई हो इस कारण उसे और अधिक प्रिय समझ अत्यंत आदर से उसे आलिंगन किया। फिर प्रणाम करते हुए मेघनाद की पीठ पर अपना कोमल हाथ फेर कर उसने उसे बैठाया और पत्रलेखा से महाश्वेता और मदलेखा सहित देवी कादंबरी की कुशल पूछी। तब पत्रलेखा ने कहा- देव ! आप जैसे पूछते हैं सब वैसे ही हैं। अंजुलि मस्तक पर रख कर देवी कादंबरी ने सब सखीजन और परिजन सहित आपको अर्चन कहा है।

अष्टम परिच्छेद

यह सुन कर चंद्रापीड़ सब राजा लोगों को विदा करके पत्र-लेखा को लेकर मंदिर के भीतर गया और वहाँ सब परिजनो को हटा कर पत्रलेखा से पूछा, तू वहाँ किस प्रकार रही और वहाँ सखियों से तेरी क्या क्या बातें होती थीं ? राजपुत्र के यह प्रश्न सुन कर पत्रलेखा ने उत्तर दिया, देव ! आपके वहाँ से चल देने पर मैं केयूरक के साथ पीछे लौट कर पहिले की भाँति फूलो के बिछौने के पास जा बैठी और देवी के नये प्रसाद का अनुभव करती हुई जहाँ मेरी आँख वहीं देवी की, जहाँ मेरा शरीर वहीं देवी का और जहाँ मेरा हाथ वहीं देवी का कर-पल्लव देख मैं अत्यंत सुख का उपभोग करती रही। इस प्रकार सारा दिन बीत गया। फिर संध्या हो जाने पर मेरे ही सहारे हिम-गृह से निकल कर सब परिजनों को आने का निषेध कर देवी अपने प्रिय उद्यान की ओर चलीं। वहाँ एक मणि-स्तंभ के सहारे तनिक खड़ी होकर हृदय में दीर्घकाल तक विचार करके मुझसे कुछ कहने की इच्छा से पुतली तथा पलकों को निश्चल रख वह नेत्रो से मेरे मुख की ओर बहुत देर तक देखती रहीं। फिर स्वेद-जल के प्रवाह से मानों तरल हुई हों इस प्रकार वह काँपने लगीं।

उनके दुःख के कारण की उत्प्रेक्षा कर मैंने उनसे बार बार अनुरोध किया जिससे वे मन की बात कहें किन्तु लज्जा के कारण कहने की बात मानों लिख कर देना चाहती हों इस प्रकार नखाग्र से वह केतकी के पत्ते पर कुछ लिखने लगीं। साथही बोलने की इच्छा से उनके होंठ फड़क भी रहे थे। किन्तु भूमि पर निश्चल नयन रख कर वे बहुत देर तक खड़ी रहीं। फिर बहुत समय उपरान्त धीरे-धीरे मेरे मुँह की ओर दृष्टि कर देवी ने किसी भाँति बोलने का साहस किया और मुझसे कहा, पत्रलेखा ! जब

से तुझे मैंने देखा है तभी से तुझसे मेरी अपार प्रीति हो गई है। मैं नहीं जानती क्यों सब सखियों पर से खिसक कर मेरा मन तुझ पर ही विश्वास करने लगा है। इसलिए अब अन्य किसको मैं अपना दुःख बाँटूँ ? यह सब असह्य दुःखभार तुझे जताकर अब मैं अपने प्राण त्यागूँगी क्योंकि मेरी सी की चंद्र-किरणों के समान शुभ्र कुलको कलंक नहीं लगाएगी। पिता ने मेरा संकल्प नहीं किया, माता ने कन्यादान नहीं किया, और गुरुओं ने अनुमोदन नहीं किया इस कारण मैं कोई संदेशा तक नहीं कह सकती, न कुछ भेज ही सकती और न देह का विकार दिखा सकती हूँ! हाय! मुझे कुमार चंद्रापीड़ ने दीन और अनाथ के समान निन्दित होने योग्य बना दिया है। तू ही कह क्या यह महानुभावों का आचार है? हे सखी! मैं अब तुझे मिलने के लिये आमंत्रण करती हूँ और फिर प्राण परित्याग रूपी प्रायश्चित्त करके अपना कलंक धो डालती हूँ!

इतना कह कर जब देवी कादंबरी चुप हो गई। तब मैं घबराई हुई सविषाद उनसे बोली, देवि! कुमार चंद्रापीड़ ने क्या अपराध किया है और किस अविनय से तुम्हारे कुमुद-कोमल मन को खेद पहुँचाया है; यह सब मैं सुनना चाहती हूँ, इसलिए कृपा करके कहिए। उसे जानकर पहिले मैं प्राण-त्याग करूँगी फिर तुम करना। मेरे यह वचन सुनकर वे बोलीं, पत्रलेखा! ध्यान देकर सुन! मैं कहती हूँ। यह चतुर धूर्त राजकुमार प्रतिदिन स्वप्न में आकर पिंजरे की शुक-सारिका-रूप दूतियों के साथ रहस्य-संदेशा भेजता है और हठ पूर्वक मेरे चरणों को अपने अनुराग से इस प्रकार रँगता है मानो अलक्तक-रस से रँगता हो! फिर जब मैं अकेली उपवन में उसके द्वारा पकड़े जाने के भय से अकेली

भागती हूँ और पल्लवों में वस्त्र का पल्ला अंटक जाने से चलने में रुक जाती हूँ तब लता रूपी सखियाँ मुझे पकड़ कर मानों उसको अर्पण कर देती हैं; और अशोक को ताड़न करने के लिए जब मैं चरण उठाती हूं तब वह मेरे पाद-प्रहार अपने मस्तक पर ले लेता है !

उनकी ऐसी वाणी सुन कामदेव ने राजकुमार में इनके अनुराग को इतना गहरा कर दिया है यह सोचकर मुझे हर्ष हुआ और मैं हँस कर प्रकट-रूप में बोली, देवि ! जो यह बात है तो तुम कृपा करके कोप का त्याग करो और काम के अपराधों के कारण कुमार को दोष न दो। समस्त त्रिभुवन में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो कामदेव के शर-गोचर में न आया हो, न आ रहा हो, अथवा न आनेवाला हो। कुसुम का धनुष लेकर यह अपने बाणों से बलवान को भी भेद डालता है। जो कामिनियाँ इसके वश होकर अपने प्रिय के आकार बनाती हैं उनको महि-मंडल भी तुच्छ लगता है, जो प्रियतम की कथा सुना करती हैं उनको सरस्वती भी कम बोलने वाली लगती है, और जो अपने प्राण-नाथ के समागम के सुख का ध्यान करती है उनके हृदय को तो काल भी बहुत थोड़ा लगता है। अतः देवि ! निष्कारण मरण का आपका निश्चय व्यर्थ है और जब स्वयं भगवान मकरकेतु ने बिना आराधना के ही प्रसन्न होकर आपको वर दिया है तब निंदा की क्या बात है ? इसलिए आप प्रसन्न होकर मुझे कुछ संदेशा देकर भेजें जिसमें मैं जाकर आपके प्राण-प्रिय को बुला लाऊँ।

मेरी यह बात सुन हर्ष से अंतःकरण विह्वल होने पर भी कन्याओं की सहज लज्जा का अवलंबन करके वे धीरे धीरे बोलीं,

पत्रलेखा तू मुझसे बहुत प्रीति करती है यह मैं जानती हूँ किंतु बाल-भाव की कुमारियों में इतनी प्रगल्भता कहाँ जो हम ऐसा करें ? जो स्त्रियाँ प्रियतम को स्वयं संदेशा भेजती हैं अथवा पास चली जाती हैं वे साहसकारिणी होती हैं। मैं तो बाला हूँ अतः संदेशा भेजने में लज्जा अनुभव करती हूँ। फिर मुझे संदेशा भी क्या कहलाना है क्योंकि जो मैं कहूँ—तुम मुझे बहुत प्यारे हो, तो यह कहना पुनरुक्ति होगी। तुम पर मेरा अत्यंत प्रेम है—यह वेश्याओं के कहने की रीति है; तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती—यह कहना अनुभव विरुद्ध है; मैंने तुमको कस कर पकड़ रखा है—यह कहना कुलटा की प्रगल्भता है; तुम यहाँ अवश्य आना—यह कहना सौभाग्य का गर्व है: और मैं आपही तुम्हारे पास आती हूं—यह कहना स्त्री जाति की चपलता समझी जाती है! और * यदि तू कुमार को ले भी आई तो चंचलता से उत्पन्न हुई लज्जा के कारण मैं उन्हें देख न सकूँगी और आने का कष्ट न उठाने की इच्छा से या जन्म-भूमि के स्नेह से या मेरी चाह न होने से हे मेरी प्यारी सखी! तू पैरों पड़ कर प्रयत्न करके भी जो उन्हें यहाँ न ला सकी तो मेरी बची-खुची आशा भी जाती रहेगी। इसलिए तू उनको यहाँ ले आने की बात रहने ही दे।

यह कहती कहती मानो अचानक मूर्छा आ गई हो इस प्रकार आँखें बंद कर पलकों के पास इकट्ठे हुए आँसुओं को बरसाती मानो अंतर्गत संताप के वेग से गली जाती हों, गांधर्व कुमारी भुवन-मोहिनी कादंबरी यों चुप-चाप खड़ी रहीं। उस काल उनका मुख मानो स्वच्छ जल के प्रवाह में उगी हुई मृणालिका

* इस स्थल में "कादंबरी" के उत्तरार्ध का आरंभ होता है।

पर पानी के हिलोरे लगने से श्याम हुआ लाल कमल हो ऐसा लगता था।

पत्रलेखा के मुँह कादंबरी का ऐसा स्नेह के वचनों से भरा हुआ आलाप सुन कर पलक निश्चल हो जाने के कारण दुःसह दुख से उत्पन्न हुए आँसुओं से भरे हुए बड़े-बड़े नेत्र वाले कादंबरी के मुख की उत्प्रेक्षा करता करता चंद्रापीड़ स्वभाव से धीर प्रकृति होने पर भी अत्यंत व्याकुल हो गया। मानो कादंबरी के शरीर में से पत्रलेखा के कहे हुए शब्दों के साथ ही आकर शोक ने हृदय में, जीवन ने कंठ में, कंप ने अधर-पल्लव में, निश्वास ने मुख में और आँसुओं ने नेत्रों में एक साथ वास कर लिया। इस कारण कादंबरी के समान दशावाला होकर वह आँसू टपकाता टपकाता गद्गद वाणी से ऊँचे स्वर से कहने लगा, पत्रलेखा! मैं क्या करूँ? मैं समझता हूँ मुझे भी यह कोई विवेक का नाश करने वाला श्राप लगा है। यह सब मेरे विरुद्ध आचरण का ही दोष है। अतः अब मैं ऐसा व्यवहार करने में अपना प्राण तक खपा दूँगा जिससे देवी मुझे ऐसा कठिन हृदय वाला न जानें।

कुमार यह कह ही रहा था इतने ही में बेंत हाथ में लिए एक प्रतीहारी ने कहलाए बिना ही भीतर आकर प्रणामपूर्वक कहा, युवराज! देवी विलासमती कहती हैं परिजनों की बात-चीत में मैंने सुना है पत्रलेखा जो पीछे रह गई थी आज लौट आई है सो उसे देखने की मेरी इच्छा है। तुमको बिना देखे भी बहुत देर हो गई है इसलिए उसके साथ ही आओ! यह सुन चंद्रापीड़ ने अपने मन में कहा अहो! मेरा जीवन भी कैसा संदेह-दोल पर डोल रहा है! एक ओर तो जन्म-समय से बढ़ा हुआ माता

का स्नेह और दूसरी ओर प्रेम में विकल मेरा हृदय ! मन विलंब सहन नहीं करना चाहता किंतु हेमकूट और विंध्याचल के बीच में बहुत अंतर है। ऐसा विचारते विचारते माता के पास जा वह दिन उसने वहीं बिताया। फिर जब दसों दिशाओं में अंधकार करने वाली रात्रि आई, तब वह पलंग पर लेटा, परंतु आँखें बार-बार बंद करने पर भी उसे निद्रा का विनोद नहीं मिला। इस प्रकार कामाग्नि से भीतर और बाहर उबलता हुआ राजकुमार दिन-रात सूखने लगा, परंतु उसकी प्रकृति गंभीर थी इस कारण चंद्रमा से समुद्र के समान अत्यंत उल्लसित हुई आत्मा को भी उसने मर्यादा से रोक ही रखा।

धीरे-धीरे कितने ही दिन बीत गए। तब एक बार उत्कंठाओं के कारण भीतर विश्राम न मिलने से नगरी के बाहर जाकर सिप्रा नदी के तट पर होता हुआ राजकुमार पैदल ही टहलता टहलता बहुत दूर तक चला गया। स्वामिकार्तिकेय के मंदिर के पास वह पहुँचा था इतने में मतवाली चाल से अत्यंत वेग-पूर्वक आते हुए बहुत से घोड़े दूर से ही उसे दीख पड़े। उनके खुर जल्दी जल्दी पड़ने थे और वे कभी इकट्ठे हो जाते और कभी जुदे-जुदे दीखने थे। कुतूहल से घोड़ों की उसी सेना की ओर दृष्टि फेंकता-फेंकता पास खड़ी हुई पत्रलेखा को हाथ में खींचकर वह कहने लगा, पत्रलेखा ! देख-देख, सबसे आगे ही जो सवार आ रहा है वह मुझे केयूरक जान पड़ता है। सच-मुच ही कुछ ही समय में दृष्टि पड़ते ही घोड़े पर से उतर कर पास आते हुए केयूरक को उसने देखा। दूर से जल्दी-जल्दी आने के कारण धूल से उसका शरीर मलिन और श्याम हो गया था। उसे देख कर प्रीति से आओ, कहकर चंद्रापीड़ ने अपनी

पर पानी के हिलोरे लगने से श्याम हुआ लाल कमल हो ऐसा लगता था।

पत्रलेखा के मुँह कादंबरी का ऐसा स्नेह के वचनों से भरा हुआ आलाप सुन कर पलक निश्चल हो जाने के कारण दुःसह दुख से उत्पन्न हुए आँसुओं से भरे हुए बड़े-बड़े नेत्र वाले कादंबरी के मुख की उत्प्रेक्षा करता करता चंद्रापीड़ स्वभाव से धीर प्रकृति होने पर भी अत्यंत व्याकुल हो गया। मानो कादंबरी के शरीर में से पत्रलेखा के कहे हुए शब्दों के साथ ही आकर शोक ने हृदय में, जीवन ने कंठ में, कंप ने अधर-पल्लव में, निश्वास ने मुख में और आँसुओं ने नेत्रों में एक साथ वास कर लिया। इस कारण कादंबरी के समान दशावाला होकर वह आँसू टपकाता टपकाता गद्‌गद वाणी से ऊँचे स्वर से कहने लगा, पत्रलेखा! मैं क्या करूँ? मैं समझता हूँ मुझे भी यह कोई विवेक का नाश करने वाला श्राप लगा है। यह सब मेरे विरुद्ध आचरण का ही दोष है। अतः अब मैं ऐसा व्यवहार करने में अपना प्राण तक खपा दूँगा जिससे देवी मुझे ऐसा कठिन हृदय वाला न जानें।

कुमार यह कह ही रहा था इतने ही में वेंत हाथ में लिए एक प्रतीहारी ने कहलाए बिना ही भीतर आकर प्रणामपूर्वक कहा, युवराज! देवी विलासमती कहती हैं परिजनों की बात-चीत में मैंने सुना है पत्रलेखा जो पीछे रह गई थी आज लौट आई है सो उसे देखने की मेरी इच्छा है। तुमको बिना देखे भी बहुत देर हो गई है इसलिए उसके साथ ही आओ! यह सुन चंद्रापीड़ ने अपने मन में कहा अहो! मेरा जीवन भी कैसा संदेह-दोल पर डोल रहा है! एक ओर तो जन्म-समय से बढ़ा हुआ माता

का स्नेह और दूसरी ओर प्रेम में विकल मेरा हृदय! मन विलंब सहन नहीं करना चाहता किंतु हेमकूट और विंध्याचल के बीच में बहुत अंतर है। ऐसा विचारते विचारते माता के पास जा वह दिन उसने वहीं बिताया। फिर जब दशों दिशाओं में अंधकार करने वाली रात्रि आई, तब वह पलंग पर लेटा, परंतु आँखें बार-बार बंद करने पर भी उसे निद्रा का विनोद नहीं मिला। इस प्रकार कामाग्नि से भीतर और बाहर उबलता हुआ राजकुमार दिन-रात सूखने लगा, परंतु उसकी प्रकृति गंभीर थी इस कारण चंद्रमा से समुद्र के समान अत्यंत उल्लसित हुई आत्मा को भी उसने मर्यादा से रोक ही रखा।

धीरे-धीरे कितने ही दिन बीत गए। तब एक बार उत्कंठाओं के कारण भीतर विश्राम न मिलने से नगरी के बाहर जाकर सिप्रा नदी के तट पर होता हुआ राजकुमार पैदल ही टहलता टहलता बहुत दूर तक चला गया। स्वामिकार्तिकेय के मंदिर के पास वह पहुँचा था इतने में मतवाली चाल से अत्यंत वेग-पूर्वक आते हुए बहुत से घोड़े दूर से ही उसे दीख पड़े। उनके खुर जल्दी जल्दी पड़ते थे और वे कभी इकट्ठे हो जाते और कभी जुदे-जुदे दीखते थे। कुतूहल से घोड़ों की उसी सेना की ओर दृष्टि फेंकता-फेंकता पास खड़ी हुई पत्रलेखा को हाथ से खींचकर वह कहने लगा, पत्रलेखा! देख-देख, सबसे आगे ही जो सवार आ रहा है वह मुझे केयूरक जान पड़ता है। सच-मुच ही कुछ ही समय में दृष्टि पड़ते ही घोड़े पर से उतर कर पास आते हुए केयूरक को उसने देखा। दूर से जल्दी-जल्दी आने के कारण धूल से उसका शरीर मलिन और श्याम हो गया था। उसे देख कर प्रीति से आओ, कहकर चंद्रापीड़ ने अपनी

बाहुओं को दूर तक फैला कर उसका आलिंगन किया और उसके सहायकों का कुशल-प्रश्न से सत्कार करके आगे खड़े हुए केयूरक को स्पृहा से बार-बार देख कर महावत द्वारा लाई हुई हथिनी पर उसको पीछे बैठा कर तथा पत्रलेखा को साथ लेकर राजकुमार अपने सदन को गया। फिर वहाँ परिजनों को दूर हटाकर, अकेली पत्रलेखा को साथ ले, केयूरक को बुला कर वह उससे कादंबरी, मदलेखा और महाश्वेता का संदेशा पूछने लगा।

विनय-पूर्वक सामने बैठ केयूरक ने कहा, देव ! जब पत्रलेखा को मेघनाद को अर्पित करके हेमकूट को लौट कर मैंने आपके उज्जयिनी जाने का वृत्तांत कहा तब ऊपर की ओर देख, लंबे और गरम निश्वास छोड़, उठकर देवी महाश्वेता तो तप करने के लिए अपने आश्रम को चली आई और देवी कादंबरी तत्काल हृदय में मानो हथौड़े की चोट लगी हो और सिर पर मानो अकस्मात् वज्र-प्रहार हुआ हो इस प्रकार अंतर्गत पीड़ा के कारण मुँदी हुई आँखों से, मूर्छित हो, महाश्वेता के जाने का समाचार न जानती हुई बहुत देर तक वहीं बैठी रहीं। फिर आँखें खोलकर कुमार चंद्रापीड़ ने जैसा किया है वैसा क्या किसी और ने कभी किया या कोई करेगा यह कह कर, खड़ी हो, सब परिजनों को आने का निषेध करके वह पलंग पर लेटीं और चादर से सिर ढँक कर सारा दिन उसी भाँति बिता दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही मै उनके पास पहुँचा तब आँसू छलकने के कारण काँपने से व्याकुल हुई दृष्टि से बहुत देर तक वह मेरे सामने देखती रहीं। इस प्रकार उनके द्वारा देखे जाने पर मैंने समझा देवी ने मुझे जाने की आज्ञा दे दी है इसलिए मैं उनसे कुछ कहे बिना ही आपके पास चला आया हूँ।

यह सुन कर स्वयं पहुँचाई हुई पीड़ा के अपराध से मानो भयभीत हो, चुपचाप खड़े हुए केयूरक से टूटे फूटे अक्षरों में चंद्रापीड़ बड़े कष्ट से बोला- केयूरक ! जिस प्रकार मेरे फिर आने की संभावना त्याग मुझे अत्यंत कठिन-हृदय और अपने ऊपर प्रेम न करने वाला समझ देवी कादंबरी ने तुझे यहाँ आने की आज्ञा नहीं दी यह सब पत्रलेखा ने मुझ से कहा है परंतु देवी कादंबरी ने खबर मिलने की प्रतीक्षा करने वाले मुझ दास को आज्ञा देकर क्यों नहीं देख लिया जो उस अविश्वास के कारण शिरीष के फूल के समान अपने कोमल मन को ऐसी दारुण पीड़ा देना उन्होंने अंगीकार किया है ? केयूरक ! अपने मन के भावों को छिपाना रमणियों में परंपरा से चला आता है, विशेष कर उन कन्याओं में जिनमें कुछ बाल-भाव रह जाते हैं। फिर देवी स्वयं मेरे सामने लज्जा छोड़ने में समर्थ न हुईं तो भी मदलेखा तो उनका दूसरा हृदय है, सो उसने भी क्यों यह बात छिपाई और दुरात्मा काम-देव से पीड़ा पाती हुई देवी के शरीर की उपेक्षा की ? केयूरक ! यह कामदेव ऐसा चोर है जिसे दंड ही नहीं दिया जा सकता। पवित्र जनों को भी इसका स्पर्श अवश्य करना पड़ता है। इसने असंख्य प्राणियों को भस्म कर दिया है। यह बुझाई न जा सके ऐसी श्मशान की अग्नि के समान है। मैं जब वहाँ था तभी मेरे कान में यह बात डाल देनी थी। अब इसे जान कर भी मैं क्या करूँगा क्योंकि मार्ग में ही बहुत दिन लग जाएँगे। इधर देवी का शरीर मलयानिल से आहत लता-कुसुम-पात को भी सहन करने के योग्य नहीं है अतः न जाने निमेष मात्र में क्या हो जायगा ?

केयूरक ने कहा, महाराज ! धैर्य रख कर चलने की तयारी कीजिए। तब चंद्रापीड़ ने केयूरक को विश्राम करने की आज्ञा दी

और गमन की चिन्ता करने लगा। उसने सोचा जो मैं पिता-माता से बिना कहे और उनको अपना मस्तक बिना सुँघाए चला जाऊँ तो जाने पर भी मुझे सुख नहीं मिलेगा। ऐसे ही अनेक विचार में लंबी रात जागते ही बीत गई। फिर प्रातःकाल ही सेना दशपुर तक आ पहुँची. यह समाचार उसने सुना और हृदय में हर्षित हो कर बोल उठा. अहो! मैं धन्य हूँ। भगवान ने मुझ पर अपार कृपा की है जो मेरे ध्यान करते ही मेरा हृदय वैशंपायन आ पहुँचा। इस भाँति हर्ष से परवश होकर भीतर आते हुए और दूर से ही प्रणाम करते हुए केयूरक से वह बोला. केयूरक! अब तो सिद्धि को हथेली पर आई ही हुई समझो क्योंकि वैशंपायन आ गया है।

यह सुन कर, जाने में विलंब होने की चिन्ता से शून्य-हृदय होकर केयूरक कहने लगा अच्छा हुआ महाराज के हृदय को बड़ी शान्ति हुई। महाराज को अवश्य देवी की प्राप्ति होगी। परंतु वैशंपायन के आने में और उसके साथ उत्तम युक्ति का विचार करने में विलंब होगा और देवी की अवस्था विलंब सहने के अयोग्य है यह आप जानते ही हैं। इस कारण हृदय से तो आप आगे गए ही हैं और शरीर से पीछे पीछे आएँगे ही अत: अब यहाँ न पड़ा रहकर आपके आगमन रूप उत्सव का सुखद समाचार कहने के लिए यदि मैं अभी चला जाऊँ तो अति उत्तम हो। केयूरक की यह विज्ञप्ति सुन कर अंतर्गत तोष के कारण प्रफुल्लित हुई दृष्टि से प्रसन्नता प्रकट करके चंद्रापीड़ ने कहा. यह तूने ठीक विचारा है। देवी को प्राण धारण कराने के लिए तू जा, और मेरे आने का विश्वास कराने के लिए पत्रलेखा भी तेरे साथ जाए। इसे देख कर देवी को धैर्य होगा। फिर इसका भी तो देवी पर अपार स्नेह और भक्ति है।

यह कह राजकुमार ने मेघनाद को बुला कर, जिस स्थान में वह उसे पत्रलेखा को लाने के लिए छोड़ आया था उसी स्थान में प्रातः पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ आगे जाने के लिए उससे कहा। यह आज्ञा सुन कर नमस्कार करके मेघनाद के चले जाने के अनंतर केयूरक प्रणाम कर चलने के लिए उठ खड़ा हुआ तब उसे स्नेहपूर्वक आंसू भरी दृष्टि से बार बार देख कर रोमांचित बाहुओं से उसका आलिंगन कर अपने कान में से उतार कर कर्णाभूषण उसके कान में पहना, चंद्रापीड़ ने कहा, केयूरक ! तुम मेरे लिए देवी का कुछ संदेशा तो लाए ही नहीं हो इसलिए मैं तुम्हारे साथ क्या संदेशा भेजूँ ? पत्रलेखा देवी के चरणों में जाती है, यही सब कह देगी।

इतना कहते ही एकाएक उमड़े हुए वियोग से दुखित हुई तथा अमंगल की शंका से आँसुओं को रोकने में असमर्थ पैरों पर गिरने को तयार हुई पत्रलेखा के सामने आकर प्रीतिपूर्वक हाथ जोड़ कर चंद्रापीड़ कहने लगा, पत्रलेखा ! अंजुलि सहित सिर से मेरी ओर से देवी कादंबरी को प्रणाम कहना ! पहिली ही बार दर्शन होने पर भी स्वाभाविक वत्सलता के कारण देवी के अत्यंत अनुग्रह प्रकट करने पर भी सब खल मनुष्यों में प्रथम लिखे जाने के योग्य, जिस पुरुष ने देवी को प्रणाम किये बिना ही चला आ कर बुद्धि की जड़ता और लज्जा की अप्रगल्भता प्रकट की भला वह किस गुण के आधार पर परिग्रह के लिए कहेगा और उसके किस गुण के भारों से देवी उसे अंगीकार करेंगी, यह मेरी ओर से कहना। सब गुणों से हीन होने पर भी हे पत्र लेखा ! मुझे देवी के गुणों का सहारा है, अतः मैं निर्लज्ज फिर अपना मुँह दिखाने का साहस कर रहा हूँ और जिससे जगत् शून्य न हो उसी प्रका-

से जीवन धारण करनेके लिए देवी स्वयं यत्न करती रहें यह मै उनसे प्रार्थना करता हूँ।

इतना कहकर चंद्रापीड़ फिर बोला, पत्रलेखा! तुम भी मार्ग चलते में मेरे वियोग की पीड़ा की चिंता, शरीर के शृंगार का अनादर, अनजान मार्ग से गमन और अपरिचित व्यक्ति से अपने रहस्य का कथन मत करना, और सर्वदा शरीर को सँभाले रखना। क्या करूँ देवी के प्राण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं इसी कारण तुमको अकेली उनकी रक्षा के लिए भेजना पड़ा है। मेरा जीवन भी तुम्हारे ही हाथ में है इसलिए निस्संदेह तुम यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करना। फिर स्नेहपूर्वक उसका आलिंगन कर और महाश्वेताके आश्रम तक तुम इसी के साथ मुझे लिवाने आना, यह कह कर उसने उसको बिदा किया।

केयूरक के साथ पत्रलेखा के चले जाने पर बहुत दिन से जिसको नहीं देखा था ऐसे वैशंपायन को लिवा लाने के लिए आज्ञा लेने वह स्वयं पिता के पास गया। तारापीड़ दूर से ही चंद्रापीड़ को प्रणाम करते देख पूर्ण स्नेह से भरे हुए जल के भार से मन्द हुए मेघ की ध्वनि के समान स्वर से, आओ, आओ कह उसे चौकी पर बिठा यौवन के कारण लावण्य-मय दीखते उसके प्रत्येक अंग पर हाथ फेर शुकनास को दिखा कर कहने लगे- शुकनास! देखो आयुष्यमान चंद्रापीड़ की डाढ़ी चारों ओर निकलने लगी है, इस कारण देवी विलासवती के साथ सम्मति करके जगत में कुलीन और सुन्दर कन्या की खोज करो। दुर्लभ दर्शन वाले पुत्र का मुख तो मैंने देखा। अब वहू के मुख कमल के दर्शन से भी हम आनन्दित हों।

तारापीड़ के इतना कह चुकने पर शुकनास ने कहा, महाराज

ने ठीक विचार किया है। इन सहृदय कुमार ने हृदय में सब विद्याओं को स्थान दिया, सब कलाएँ सीख लीं, सब प्रजा को वश में कर लिया, राजलक्ष्मी को स्थिर कर कुटुम्बिनी की भाँति स्थापित कर लिया, अब और शेष क्या है जो इनका विवाह न किया जाय? शुकनास के ऐसे वचन से लज्जित होकर सिर नीचा करके चंद्रापीड़ विचार करने लगा, अहो यह कैसा योग में योग आ मिला जो मैं कादंबरी के साथ समागम के उपाय की चिन्ता कर ही रहा था तब तक पिता को भी वही बात सूझी!

राजकुमार यह विचार कर रहा था तब तक राजा उठकर विनय से अवनत चंद्रापीड़ के कंधे पर समग्र भूमंडल का भार उठाने से भारी हुए अपने हाथ का सहारा दे, धीरे धीरे चलते पीछे से आते शुकनास के साथ विलासवती के सदन में गए। वहाँ जाकर विलासवती से खड़े-खड़े ही यह कहने लगे, देवि! पुत्र के मुँह पर दीखती यह प्रफुल्ल यौवनारंभ के सूत्रपात की रेखा क्या हमें राजकुमार के विवाह-मंगल की तैयारी करने की सूचना नहीं दे रही है! तुम क्या सूचना करती हो कृपा करके यह कहो! फिर रानी के मुसका कर रह जाने पर उसने कहा, तुमको इतना समझाने पर भी आज लजा कर न जाने क्यों अपना मुँह फेर लेती हो और पूछने पर क्या करना चाहिए सो कुछ नहीं कहती हो? इस प्रकार के हास्यपूर्ण वचनों से अंतःकरण में सुखी होकर राजा बहुत देर तक वहाँ रुके रहे। चंद्रापीड़ ने भी वैशंपायन को लिवा लाने के लिए शुकनास ही के द्वारा अनुमति प्राप्ति की और माता के सदन में ही स्नान-भोजनादि कर वैशंपायन के पास जाने की तयारी करने के विनोद में वह दिन क्षण भर के समान बिता दिया।

९—दूसरे जन्म का नेह का बावला !

दूसरे दिन प्रातःकाल राजकुमार ने सैन्य के संचरण का संकेत करने वाले शंख बजाने की आज्ञा दी। तदनुसार बहुत देर तक ऐसा शंख-नाद हुआ जो अत्यंत ऊँचे नगर-द्वार की अटारियों के शिखरों पर मानो चढ़ने लगा, बड़े-बड़े मकानों के भीतर मानो फिरने लगा; सभा-मंडपों के आँगनों में मानो विकाश पाने लगा; और राजमार्गों में मानों फैलने लगा। उसके पश्चात सहस्रों घोड़ों पर घुड़सवार तयार होकर आए जिनके लिए राजद्वार का आँगन पर्याप्त नहीं था। चौराहा भी उनके लिए छोटा पड़ गया था, और पूरी सड़क का मार्ग रुक जाने से वे भीतर और बाहर नगरी के विस्तार को संकुचित कर रहे थे! फिर थोड़ी देर में सुसज्जित हो चौक में खड़े हुए इंद्रायुध पर चढ़ कर प्रकाशित करने के लिए आया हुआ मानो दूसरा चंद्र-मंडल हो ऐसे चंद्रापीड़ का दर्शन हुआ और असंख्य राज-पुत्र घोड़ों पर सवार हुए ही इधर-उधर से उसको प्रणाम करने लगे। नगर निवासियों के सोते रहने के कारण राज-मार्ग पर भीड़ न होने पर भी घुड़सवारों की सेना की बड़ी संख्या के कारण कठिनाई से मार्ग निकाल कर चंद्रापीड़ किसी प्रकार नगरी के बाहर निकला और सिप्रा के किनारे पहुँचा।

फिर सब दिशाओं में फैले हुए तथा वेग से बहते हुए चाँदनी-रूपी जल-प्रवाह के साथ मानों खिंचते और वैशंपायन को देखने के लिए उत्सुक हुए अपने मन के ही मानो समान दौड़ने

हुए इंद्रायुध के साथ उतनी ही पिछली रात में उसने तीन योजन यात्रा पूरी कर डाली। गगन-सरोवर का जल पीने को आए हुए मेघों के समान घोड़ों की रज के मानो समूह से पश्चिम दिग्वधू का मुख चुम्बन करता हुआ चंद्रबिंब जब फीका हो गया और रात्रि के अंत में चरने के लिए जाने वाली गायों के झुंडों से ग्राम के सीमांत की वनस्थली जब यत्र-तत्र सफेद दीखने लगी तब उस झुट-पुटे समय में चंद्रापीड़ ने अपनी सेना को देखा जो रात्रि ही में प्रयाण करके लगभग कोस भर आगे चली आई थी।

फिर चंद्रापीड़ ने अचानक ही जाकर वैशंपायन से मिलने की उत्कट इच्छा से सब राजपुत्रों को छोड़, अत्यंत वेग वाले तीन चार घोड़ों को लेकर और दुपट्टे से मस्तक को ढँक कर, विशेष वेग से चलने वाले इंद्रायुध पर बैठ सेना के पास जा पहुँचा और घोड़े पर चढ़ा-चढ़ा ही प्रत्येक डेरे में जा जाकर वह पूछने लगा, वैशंपायन का डेरा कहाँ है? तब वहाँ पास की स्त्रियों ने उसे साधारण मनुष्य जानकर बिना पहिचाने आँसुओं के कारण शून्य मुख से कहा, भद्र! क्या पूछते हो? यहाँ वैशंपायन कहाँ से आया? यह कुशब्द सुन कर हृदय भीतर से भिन्न हो जाने के कारण दूसरी किसी स्त्री से कुछ पूछे बिना, यूथ में से भटक जाने के कारण घबराए हुए हाथी के बच्चे के समान, बिना कुछ देखे बिना कुछ बोले और बिना कुछ बात किए, मैं कहाँ आया हूँ, क्या देखता हूँ, इन सब बातों की सुधि जैसे भूलकर वह मानो कोई अंधा हो इस प्रकार खोया-खोया सेना के बीच में जिस शीघ्रता से आया था उसी शीघ्रता से घोड़े को लेकर चला गया। फिर इंद्रायुध को पहिचानने से और पीछे दौड़ते राजपुत्रों के दर्शनों से चंद्रापीड़ को आया जान कर आँसुओं के कारण शून्य

दृष्टि वाले, एकत्र होकर नम्र होते अनेक क्षत्रिय राजाओं के मुख देख कर चंद्रापीड़ ने पूछा. वैशंपायन कहाँ हैं ? तब उन सब ने आपस में मत करके निवेदन किया, आप इस वृक्ष के तले उतरिए, फिर जो बात हुई है उसे हम निवेदन करेंगे।

स्पष्ट बात से भी अधिक कष्ट देने वाले उनके इस वचन से चंद्रापीड़ का हृदय इस प्रकार फट गया मानो भीतर शल्य लगा हो। तब उसे घोड़े से उतार, पटिक पर बिठा, उसके पिता के समान वय वाले, आदर के योग्य क्षत्रिय राजाओं ने उसके शरीर को सहारा दिया, पर उसको इसका कुछ ज्ञान न था। केवल सेना आ जाने से ही वैशंपायन का अभाव देख भीतर मानो गला जाता हो, जला जाता हो और दुःख से सहस्रों टुकड़े हुआ जाता हो वह ऐसा अनुभव करने लगा। फिर अत्यंत विकल होकर वह कहने लगा, हाय ! संसार रम्य होने पर भी आज अरमणीय हो गया ! उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी मेरा जन्म बिगड़ गया ! सुरक्षित होने पर भी मेरे जीवन का फल चोरी गया ! वैशंपायन के बिना मैं अपने पिता और शुकनास को कैसे मुँह दिखाऊँगा ? पुत्र शोक से विह्वल हुई माता मनोरमा को क्या कहकर धैर्य धारण कराऊँगा ?

इस प्रकार राजकुमार बहुत देर तक मुँह नीचा किए रहा। हृदय न फटने के कारण मानो अपने को वह महापातकी समझता हो, इसलिए मुँह दिखाए बिना ही धीरे-धीरे, बड़े कष्ट से उसने पूछा. मेरे चले आने पर क्या कोई युद्ध हुआ था जिससे अचानक ही यह महा वज्र पात हुआ ? ऐसा प्रश्न सुन उन सब ने साथ ही कानों पर दोनों हाथ रखकर निवेदन किया, महाराज ! विघ्न सब शांत हैं। आपके समान ही वैशंपायन अभी सौ वर्ष से

अधिक जियेगा। विषाद का कोई अवसर नहीं है। जो कुछ हुआ है उसे आप सुन लीजिए। सेना की देख भाल करके, वैशंपायन के साथ तुम सब धीरे-धीरे पीछे से आना यह आज्ञा देकर आपके लौटने पर उस दिन घास, ईंधन, आदि सब सामग्री इकट्ठी करने के कारण सेना ने गमन नहीं किया। फिर दूसरे दिन जब प्रयाण का तूर्य बजाया गया और सब सेना तयार हुई तब प्रातःकाल ही वैशंपायन ने हम से कहा, पुराणों में कहा गया है अच्छोद नाम का सरोवर बहुत पवित्र है इसलिए हम उसमें नहाकर और उसके ही तीर पर बने हुए सिद्ध स्थान में भगवान् भवानी-पति महेश्वर चंद्रशेखर को प्रणाम करके तब चलेंगे।

यह कह कर पैदल ही वह अच्छोद सरोवर के तीर गए और वहाँ अत्यंत रमणीयता के कारण सब ओर देखते फिरते एक लता-मंडप को देख रुक गए। फिर उसे देख, बहुत दिन न देखे हुए मानों किसी भाई को, पुत्र को या मित्र को देखा हो, इस प्रकार निमेष-रहित नेत्रों से देखते-देखते वे स्तंभित हो, बहुत देर तक वहीं खड़े रहे। फिर थोड़ी देर पीछे हमने उनसे कहा, दर्शनीय वस्तुओं की राशि आपने यहाँ सब देख ली इसलिए उठिये, चलिए! सब सेना तयार है, आप भी तयार हो जाइए!

हमारे यह कहने पर भी मानों हमारे शब्द न सुने हों, इस प्रकार उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, और निमेष-रहित, निश्चल तथा, आँसुओं की झड़ी लगाते, मानों चित्रित हों ऐसे, नेत्रों से केवल उसी लता-मंडप को देखते रहे। फिर आने के लिए जब बार बार हमने अनुरोध किया तब निष्ठुर शब्दों में वह हमसे बोले, आप सब सेना को लेकर जाओ। चंद्रापीड़ के भुज-बल से रक्षित महा-सेना को लेकर उनके जाने के पीछे इस जगह आपको तयार

भर भी नहीं ठहरना चाहिए। उनके यह कहने पर क्या उनको दैवयोग से ही अचानक वैराग्य तो नहीं उत्पन्न हो गया है हमें ऐसा संदेह हुआ इस कारण विनय सहित बार बार हमने फिर उनको आने के लिए समझाया और दुःखी होकर कहा, महाराज तारापीड़ के ही तुल्य मंत्री शुकनास के पुत्र, तथा देवी विलासवती की गोद में पाले गए, और इस प्रकार शिक्षित हुए आपको क्या यही योग्य है जो आपके बड़े भाई, मित्र-वत्सल स्वामी चंद्रापीड़ आपको सब सौंप कर चले गए और आप उसे अकेले छोड़ कर यहाँ अड़ रहे हैं ?

जब हमने यह कहा तब तनिक हास-युक्त वचन से उन्होंने उत्तर दिया, क्या मैं इतना भी नहीं जानता हूँ जो आप मुझे चलने के लिए समझाते हो ? चंद्रापीड़ के बिना मैं क्षण भर भी नहीं जीवित रह सकता, यह मैं जानता हूँ। तो भी क्या करूँ मित्र ! न जाने क्यों इसी क्षण से अपने इन सब अंगों पर से मेरा प्रभुत्व चला गया है, इसलिए स्वयं तो मैं जाने के लिए असमर्थ हूँ। अब जो आप बरियाईं मुझे ले जाना चाहें तो इस जगह से चले जाने पर मेरे प्राण रहेंगे यह मुझे आशा नहीं है। इसलिए आप आग्रह मत करो। आप जाओ और जीवनपर्यंत चंद्रापीड़ के दर्शन के सुख प्राप्त कर सुखी बनो। मुझ अल्प पुण्य वाले को यह सुख प्राप्त होने पर भी दैव ने मुट्ठी में से छीन लिया है। मित्र चंद्रापीड़ के ही जीवन की शपथ खाता हूँ मैं कुछ भी नहीं जानता क्यों यहाँ से जाने में मैं असमर्थ हो गया हूँ ? यह वृत्तांत आपके भी तो सामने ही है।

इतना कह क्षण भर के अनन्तर उठकर सब अत्यंत रमणीय वृक्षों के तलों में, लताओं की कुंजों में, सरोवर के तीर पर और

इस मंदिर में मानो किसी खोई हुई वस्तु को वह ढूँढ़ते हों इस प्रकार एकाग्र दृष्टि से घूमने लगे। उनको समझाने की आशा से लताओं के पास हम भी खड़े ही रहे और दिन दो पहर से भी अधिक बीत जाने पर जब स्नान, भोजन आदि के लिये हमने उनसे निवेदन किया। तब, मित्र चन्द्रापीड़ को यह प्राण अपने जीवन से भी अधिक प्रिय हैं इस कारण इनको धारण करने के लिए मुझे प्रयत्न करना ही चाहिए, यह कह कर उन्होंने उठकर स्नान किया और कंद-मूल-फल का भोजन किया। इस भाँति तीन दिन तक हम वहीं ठहरे रहे। फिर उनके आने की या उनको ले जाने की कुछ भी आशा न देख उनके भोजनादि का समुचित प्रबंध करके तथा उनके नौकर चाकरों को वहाँ नियुक्त कर तब हम यहाँ आए। हमने आगे ही से जो कोई दूत नहीं भेजा उसका एक कारण तो यह था कि आप जो राजधानी को लौटते थे इससे मार्ग में आपके पास दूत पहुँच ही नहीं सकते थे और दूसरे आप बहुत दिन पर नगर में आए थे इससे आते ही आपको फिर जाने का कष्ट देना हमें प्रिय न था।

स्वप्न में भी जिसकी संभावना नहीं थी ऐसा वैशंपायन का वृत्तान्त सुनकर चन्द्रापीड़ के हृदय में उद्वेग और विस्मय दोनों पैदा हुए और वैशंपायन के वैराग्य का क्या कारण होगा वह यह सोचने लगा। किन्तु बहुत सोचने पर भी कुछ निश्चय न करने से बहुत देर तक कुंठित हो वह उसी वृक्ष के नीचे बैठा रहा। फिर डेरे में जा वहाँ कपड़े उतार कर वह पलंग पर लेटा और शरीर मलने वाले सेवक तुरन्त वृक्षों के पत्तों से उसको हवा करने लगे और धीरे धीरे यात्रा की थकावट दूर हुई। किन्तु रात भर जागने से थका होने पर भी उसे निद्रा का सुख नहीं मिला।

उसे केवल क्षण भर के लिए नींद आई। इतना स्वल्प विश्राम करके ही तृतीय अर्द्ध याम का तूर्य जब बजा तभी स्नान-भोजन आदि के लिए वह उठ पड़ा। फिर जब सूर्य आकाश के बीच में आया और रास्ते बंद हो गए तथा पथिक सँकरी प्याऊ की कुटी के भीतर पानी पीने को इकट्ठे होने लगे और सरोवर के पंक में हाथियों के झुंड घुसने लगे तब चंद्रापीड़ उठ कर सरोवर के किनारे पर बने हुए एक जल-मंडप में गया। वहाँ से संध्या होने पर जब धूप लाल होने लगी तब वाहर आकर क्षण भर पास के राजाओं के साथ वैशंपायन की बात-चीत करके दूसरे ही पहर में चलना है, इसलिए सेना तयार करो यह सेनापति को आज्ञा दे कर तारों के उदय होते ही सब राजा लोगों को विदा करके वह अपने वास-भवन (डेरे) में गया।

बहुत दिनों से उज्जयिनी को न देखने से उत्सुक होने से बहुत से सैनिक प्रयाण का तूर्य बजने के पहिले ही चलने को तयार होने लगे। उधर चंद्रापीड़ निद्रा का विनोद न मिलने से तीसरे पहर के आरंभ में ही घुड़सवारों तथा बहुत से राजा लोगों के साथ प्रस्थान करके प्रभात स्पष्ट होते-होते उज्जयिनी पहुँच गया। फिर घोड़े से उतर कर राज-कुल की सभा में घुसते ही उसने सुना, राजा देवी विलासवती के साथ आर्य शुकनास के सदन को गए हैं। यह सुन पीछे मुड़ कर वह भी वहीं गया और वहाँ पहुँचते ही उसने सुना, हा वत्स वैशंपायन! सर्पों से भयंकर, निर्जन तथा शून्य वन में तू अकेला कैसे होगा? वत्स! जहाँ रहना तुझे अच्छा लगे वहीं मुझे भी अपने पिता से कह कर ले चल, तुझे देखे बिना मैं न जीऊँगी! तात! तूने कभी बालपन में भी मेरा अनुमान नहीं किया था, अब एक साथ ही क्यों तू ऐसा

निष्ठुर हो गया? जन्म से आज तक जिसका मुख कभी क्रोधित नहीं देखा वह तू मुझपर कैसे अकस्मात ऐसा कुपित हो गया है जो मुझे इस प्रकार छोड़ दिया है? जिसे देखे बिना तू क्षण भर भी नहीं रह सकता था उस चंद्रापीड़ पर ऐसा निःस्नेह क्यों हो गया है? ऐसे-ऐसे वचनों से विरह के शोक से विह्वल हो कर, स्वयं देवी विलासवती के द्वारा आश्वासन की गई, भवन के भीतर विलाप करती हुई मनोरमा को उसने सुना और करुण विलाप-रूपी विष से मानो अत्यंत विह्वल हो गया। फिर राजकुमार ने किसी प्रकार अपने स्वाभाविक बल के सहारे अपने को सँभाला और मंथन के पश्चात् निश्चल हुए महा समुद्र के समान अपने पिता को मुँह दिखाने में लज्जित होने से नीचे ही मुख करके प्रणाम कर उससे कुछ दूर ही बैठ गया।

उसके बैठने पर क्षण भर उसे देख गला भर आने से गद्गद हुए स्वर से, बरसने के लिये तयार हुए मेघ के समान राजा ने उससे कहा, वत्स चंद्रापीड़! भाई पर तेरी अपने जीवन से भी अधिक प्रीति है यह मैं जानता हूँ परंतु शील, ज्ञान, गुरुजनों की आज्ञा तथा विनय, सबके प्रतिकूल इस वृत्तांत को सुन कर, इसमें तेरा भी कुछ दोष है, मेरे हृदय में ऐसा संदेह होता है राजा के इतना कहते ही उसके वचन को काट कर शोक और क्रोध से एक साथ ही जिससे मुँह पर अंधकार छा गया था ऐसा शुकनास, बिजली के कारण जो देखा न जा सके ऐसे वर्षाऋतु के आरंभ के समान काँपते अधर सहित गर्जना करके बोला, महाराज! यदि चंद्रमा में गरमी हो, अग्नि में ठंडक हो और शेषनाग में पृथ्वी के धारण करने की शक्ति न हो, तो युवराज में भी दोष की संभावना हो सकती है। इसलिए इस प्रकार बिना

बिचारे उस माता-पिता के घाती, मित्र-द्रोही, कृतघ्न महापातकी के कारण आप सतयुग में अवतार लेने के योग्य गुणवान, तथा अत्यंत उदार चरित वाले अपने चंद्रापीड़ के विषय में शंका मत कीजिए। जन्म से ही जो महाराज की और देवी विलासवती की गोद में खिलाए जाने से भी वश में न रह सका उस पवन के समान चंचल स्वभाव वाले के लिए चंद्रापीड़ कर ही क्या सकता है? क्षुद्रजनों की बुद्धि दूसरों को धोखा देने के लिए होती है, उपकार के लिए नहीं और उनका उत्साह धन-प्राप्ति के लिए ही होता है यश के लिए नहीं। अधिक क्या कहूँ उनकी सब वस्तुएँ उनको दोष के लिए ही होती हैं, गुण के लिए नहीं। इसलिए यह भी ऐसा कोई अपुण्यशाली पैदा हुआ है जिसे ऐसा करके, मै चंद्रापीड़ का मित्र हूँ फिर उनका द्रोही क्यों होता हूँ यह विचार तक नहीं हुआ, आचार से भ्रष्ट होने वाले को दंड देने वाले महाराज तारापीड़ ऐसा करने से हृदय में दुखी होकर मुझसे खिन्न होंगे यह शंका भी उसके मनमें नहीं उठी; और अकेला मै ही माता के जीवन का सहारा हूँ सो मेरे बिना उस बिचारी का क्या होगा यह बात भी उस नृशंस के हृदय में नहीं आई! जिस दुरात्मा ने जन्म लेकर हम सबको सुख नहीं दिया केवल यही नहीं वरन इस प्रकार के शोक-सागर में डाल दिया, वह अवश्य ही किसी पशु-पक्षियों की योनि में पड़ेगा। इतना कह कर हेमंत-काल की कमलिनी के समान आँसुओं से भरी हुई दृष्टि तथा काँपते हुए अधर-सहित, भीतर से बाहर न निकलते क्रोध के प्रवाह के कारण मानों फटा जाता हो इस भाँति साँस छोड़कर शुकनास चुप हो गया।

उसे ऐसी अवस्था में देख तारापीड़ ने कहा, आर्य! आप

लोगों को हम जैसों का समझाना ऐसा है जैसा मेघ जल की बूँदों से समुद्र को भरना. तथापि बुद्धिमान, विवेकी, धीर सबका मन अकस्मात् दुख आ पड़ने से, वर्षा के जल से सरोवर के समान, विशुद्ध होने पर भी अवश्य कलुषित हो जाता है। इस कारण मुझे कहना पड़ा है नहीं तो लोक-रीति को तो हमारी अपेक्षा आपही अधिक जानते हैं। क्या इस संसार में कोई भी ऐसा है जिसका यौवन निर्विकार बीत गया हो? कुछ थोड़े ही पुण्यवान ऐसे होते हैं जिनके बुढ़ाई में सफेद बालों के साथ उनके चरित्र धवल भी होते हैं! तारुण्य आने पर मनुष्य अपने पथ से भ्रष्ट हो ही जाते हैं। फिर स्वप्नावस्था में भी गुरुजन के मुख से जो भली-बुरी बात बालकों के लिए निकलती है वह उनको फले बिना कदापि नहीं रहती क्योंकि जैसे गुरुजनों का आशीर्वाद वरदान रूप होता वैसे ही उनका आक्रोश शाप-रूप होता है। इसलिए कोप के आवेश में आकर वैशंपायन पर क्रोध मत करो। उसने विपरीत आचरण नहीं किया है। वह सब छोड़ कर वहाँ क्यों रह गया है इसका कारण जाने बिना उसे क्यों इस प्रकार दोष दिया जाय? उसे उसे लिवा आना चाहिए और यह वैराग्य उसे क्यों उत्पन्न हुआ है यह जानना चाहिए!

तारापीड़ के यह कहने पर शुकनास ने कहा, महाराज! अत्यंत उदारता और वत्सलता के ही कारण आप ऐसा कहते हैं। परंतु यह तो देखिए, युवराज को छोड़ कर अपने मन से एक जरा भी अन्यत्र रहने से बढ़कर विपरीत आचरण और क्या होगा? शुकनास के यह कह चुकने पर पिता की दोष संभावना से हृदय में मानो कोड़ा लगा हो इस प्रकार अश्रुपूर्ण दृष्टि सहित बैठे-बैठे ही पास सरक कर चंद्रापीड़ धीरे-धीरे शुकनास से

बोला, आर्य! वैशंपायन के साथियों के कहने से तो मैं यह समझता हूँ, मेरे दोष से वैशंपायन नहीं आया, यह बात नहीं है। तथापि पिता ने जो समझा वही और लोगों ने भी समझा ही होगा। सब लोग और विशेष करके गुरुलोग, जो कुछ समझें उसे ठीक न होने पर भी ठीक ही मानना चाहिए। लोक-मन गुण पर या दोष पर ही अवलंबित होता है और उसीसे इस संसार में बड़ाई या निंदा मिलती है। इसलिए इस दोष-संभावना के प्रायश्चित्त के लिए वैशंपायन के लिवा लाने के लिए आप मुझे पिता से जाने की आज्ञा दिला दीजिए। मेरे दोष की शुद्धि और किसी भी उपाय से नहीं होगी। जब तक वैशंपायन नहीं आएगा तब तक महाराज की यह भावना नहीं मिटेगी और मेरे गए बिना वैशंपायन आएगा भी नहीं। थोड़े लेकर अपनी देखी हुई भूमि में जाने से मुझे कष्ट नहीं होगा। इसलिए वैशंपायन को लेकर मैं आता ही हूँ ऐसा मानकर मेरे आगमन को निश्चय समझिए।

चंद्रापीड़ के यह कहने पर युवराज जाने की सूचना देते हैं, महाराज की क्या आज्ञा है, इस प्रकार शुकनास ने राजा से धीरे-धीरे पूछा। शुकनास का यह प्रश्न सुनकर तारापीड़ ने कुछ विचार कर कहा, जैसी आयुष्मान ने कही बात वैसी ही है। न तो अन्य कोई उसको ला ही सकता है और न उसके बिना यही यहाँ रह सकते हैं। वैशंपायन को बुलाने के लिए देवी विलासवती भी इसको ही भेजेंगी यह भी निश्चय है। इसलिए इसे जाने दीजिए। ज्योतिषियों से आप इसके जाने के लिए दिन और लग्न का निश्चय कर लें और तयारी करा दें। शुकनास से इतना कहकर विनय से नम्र हुए चंद्रापीड़ को आँसू भरी आँखों

से बहुत देर तक देख, पास बुला कर कंधे, सिर और दोनों बाहुओं पर हाथ फेर तारापीड़ ने कहा, पुत्र! तू ही भीतर जा कर मनोरमा सहित अपनी माता से अपने जाने का वृत्तान्त कह दे!

राजकुमार ने भीतर जा कर नमस्कार करके माता के समीप बैठ अपने दर्शन से दूने होते वैशंपायन के विरह के शोक से विह्वल हुई मनोरमा का आश्वासन किया। फिर माता के साथ जाने की बातें करके अपने सदन में गया। वहाँ ज्योतिषियों को बुला कर एकांत में बोला, आर्य शुकनास अथवा मेरे पिता आप से पूछेंगे तब आप ऐसा दिन बताना जिससे मुझे जाने में विलंब न हो। राजकुमार की ऐसी आज्ञा सुन कर ज्योतिषियों ने निवेदन किया, देव आवश्यक काम आ पड़ने पर राजा की आज्ञा ही उत्तम काल है। इसलिए दिन देखने का कुछ काम नहीं।

तदनुसार शीघ्र प्रयाण की तयारी करके जब आधी रात हुई तभी प्रस्थान मंगल के लिए प्रणाम करने के प्रयोजन से चंद्रापीड़ माता के पास गया। उसे जाने को प्रस्तुत देख पीड़ा से मानों दबली जाती हो इस प्रकार, अमंगल की शंका से प्रयत्न करने पर भी बहुत लंबे नेत्रों से आंसुओं के वेग रोकने में असमर्थ हुई विलासवती ने शोक और स्नेह के आवेग के कारण गद्‌गद कण्ठ से टूटे-फूटे अक्षरों में कहा, पुत्र! मुझे तो तेरे अब जाने से जो पीड़ा होती है, वह पहले जाने के समय नहीं हुई थी। ऐसा लगता है मानों प्राण निकले जाते हों। बुद्धि से कुछ समाधान नहीं होता। मैं नहीं जानती मैं क्या देखती हूँ जो मेरे हृदय में ऐसी पीड़ा होती है। फिर आँसुओं के वेग को रोक जैसे तैसे धैर्य धर कर उन्होंने जाने के समय की मंगल-क्रिया की और राज-

बोला, आर्य ! वैशंपायन के साथियों के कहने से तो मैं यह समझता हूँ, मेरे दोष से वैशंपायन नहीं आया, यह बात नहीं है। तथापि पिता ने जो समझा वही और लोगों ने भी समझा ही होगा। सब लोग और विशेष करके गुरुलोग, जो कुछ समझें उसे ठीक न होने पर भी ठीक ही मानना चाहिए। लोक-मत गुण पर या दोष पर ही अवलंबित होता है और उसीसे इस संसार में बड़ाई या निंदा मिलती है। इसलिए इस दोष-संभावना के प्रायश्चित्त के लिए वैशंपायन के लिवा लाने के लिए आप मुझे पिता से जाने की आज्ञा दिला दीजिए। मेरे दोष की शुद्धि और किसी भी उपाय से नहीं होगी। जब तक वैशंपायन नहीं आएगा तब तक महाराज की यह भावना नहीं मिटेगी और मेरे गए बिना वैशंपायन आएगा भी नहीं। घोड़े लेकर अपनी देखी हुई भूमि में जाने से मुझे कष्ट नहीं होगा। इसलिए वैशंपायन को लेकर मैं आता ही हूँ ऐसा मानकर मेरे आगमन को निश्चय समझिए।

चंद्रापीड़ के यह कहने पर युवराज जाने की सूचना देते हैं, महाराज की क्या आज्ञा है, इस प्रकार शुकनास ने राजा से धीरे-धीरे पूछा। शुकनास का यह प्रश्न सुनकर तारापीड़ ने कुछ विचार कर कहा, जैसी आयुष्मान ने कही बात वैसी ही है। न तो अन्य कोई उसको ला ही सकता है और न उसके बिना यही यहाँ रह सकते हैं। वैशंपायन को बुलाने के लिए देवी विलासवती भी इसको ही भेजेंगी यह भी निश्चय है। इसलिए इसे जाने दीजिए। ज्योतिषियों से आप इसके जाने के लिए दिन और लग्न का निश्चय कर लें और तयारी करा दें। शुकनास से इतना कहकर विनय से नम्र हुए चंद्रापीड़ को आँसू भरी आँखों

से बहुत देर तक देख, पास बुला कर कंधे, सिर और दोनों बाहुओं पर हाथ फेर तारापीड़ ने कहा, पुत्र ! तू ही भीतर जा कर मनोरमा सहित अपनी माता से अपने जाने का वृत्तांत कह दे !

राजकुमार ने भीतर जा कर नमस्कार करके माता के समीप बैठ अपने दर्शन से दूने होते वैशंपायन के विरह के शोक से विह्वल हुई मनोरमा का आश्वासन किया। फिर माता के साथ जाने की बातें करके अपने सदन में गया। वहाँ ज्योतिषियों को बुला कर एकांत में बोला, आर्य शुकनास अथवा मेरे पिता आप से पूछेंगे तब आप ऐसा दिन बताना जिससे मुझे जाने में विलंब न हो। राजकुमार की ऐसी आज्ञा सुन कर ज्योतिषियों ने निवेदन किया, देव आवश्यक काम आ पड़ने पर राजा की आज्ञा ही उत्तम काल है। इसलिए दिन देखने का कुछ काम नहीं।

तदनुसार शीघ्र प्रयाण की तयारी करके जब आधी रात हुई तभी प्रस्थान मंगल के लिए प्रणाम करने के प्रयोजन से चंद्रापीड़ माता के पास गया। उसे जाने को प्रस्तुत देख पीड़ा से मानों उबली जाती हो इस प्रकार, अमंगल की शंका से प्रयत्न करने पर भी बहुत लंबे नेत्रों से आसुओं के वेग रोकने में असमर्थ हुई विलासवती ने शोक और स्नेह के आवेग के कारण गद्गद् कण्ठ से टूटे-फूटे अक्षरों में कहा, पुत्र ! मुझे तो तेरे अब जाने से जो पीड़ा होती है, वह पहले जाने के समय नहीं हुई थी। ऐसा लगता है मानों प्राण निकले जाते हों। बुद्धि से कुछ समाधान नहीं होता। मैं नहीं जानती मैं क्या देखती हूँ जो मेरे हृदय में ऐसी पीड़ा होती है। फिर आँसुओं के वेग को रोक जैसे तैसे धैर्य धर कर उन्होंने जाने के समय की मंगल-क्रिया की और राज-

कुमार के मस्तक को सूँघ कर बहुत देर तक गाढ़ आलिंगन कर मानों प्राण निकले जाते हों ऐसे बहुत कष्ट से उसे छोड़ा।

माता से विदा होकर पिता को प्रणाम करने के लिए चंद्रापीड उनके भवन में गया और वहाँ भूतल पर मस्तक रख उसने पलंग पर लेटे हुए पिता के चरणों को प्रणाम किया। पिता ने लेटे ही लेटे उसको बुला कर, नेत्रों से मानों पान करते करते, प्रेम से गाढ़ आलिंगन कर अंतर्गत क्षोभ के आवेग के कारण टूटे-फूटे अक्षरों में कहा, वत्स! पिता ने तुममें दोष की संभावना की है यह जान कर मन में दुःख मत पाना। तुम शिक्षित हुए तभी से हम ने तुम्हारी परीक्षा कर ली है और तुम्हारे गुणों से ही ऐसा राज्य-भार तुम को सौंपा है, पुत्र-स्नेह से नहीं। यह राज्य अत्यंत कष्ट से वहन करने योग्य है। हमारा तो समय गया। हम धर्म-पथ से डिगे बिना बहुत वर्षों तक सदाचार से स्थित रहे। हमने लोभ में प्रजा को पीड़ा नहीं दी, अहंकार से गुरुओं को उद्विग्न नहीं किया, मद से सतपुरुषों को विमुख नहीं किया, क्रोध से प्राणियों को त्रास नहीं दिया, हर्ष से अपनी हंसी नहीं कराई और काम से परलोक नहीं खोया। सदाचार की हमने सदा रक्षा की, शरीर की नहीं। जनापवाद का हमने डर रखा, मरण का नहीं। मेरी समझ में तेरे जन्म से मैं कृतार्थ हूँ इसलिए दारपरिग्रह से तेरे प्रतिष्ठित होने पर सब राज्य भार मुझे सौंप कर, जन्म कृतार्थ होने से निवृत्त हुए हृदय से, पूर्व राजर्षियों के रास्ते पर जाऊँ अब यही मेरा मनोरथ शेष रह गया है। इसलिए वत्स, तुम यहाँ से जा तो रहे हो फिर भी ऐसा करना जिससे यह मेरा मनोरथ बहुत दिनों तक हृदय के भीतर ही न फिरता रहे।

इतना कह कर तनिक ऊँचे उठाए हुए मुख से ही, लपेटे हुए

हृदय के समान तांबूल दे, राजा तारापीड़ ने चंद्रापीड़ को बिदा किया। पिता के इस आदर से अत्यंत उन्नत होने पर भी अत्यन्त नम्र हुआ चंद्रापीड़ पास जाकर फिर प्रणाम से उन्नत होकर बाहर आया। बाहर निकल कर वह शुकनास के सदन को गया और वहाँ शुकनास को और निरंतर अश्रुपात से मलिन मुख वाली मनोरमा को प्रणाम कर तथा उसी प्रकार उनके द्वारा भी आशीर्वाद से सत्कार प्राप्त कर वहाँ से बाहर निकल तनिक भी विलंब किए बिना सवार हो जल्दी-जल्दी नगरी से बाहर निकला हृदय तड़फने के कारण प्रभात होने के पहिले ही उसने रात में उठ कर फिर चलना आरंभ किया और चलते-चलते उसी दिन से वह सोचने लगा- मैं अचानक ही वहाँ पहुँच कर लज्जा से भागते वैशंपायन के पीछे जाकर बलपूर्वक उसे कंठ से लगा, अब भाग कर कहाँ जायगा- यह कह कर उसकी व्यग्रता दूर करूँगा और महाश्वेता के आश्रम के पास सब घोड़े तथा सेना ठहरा कर उसके साथ ही हेमकूट जाऊँगा। तब वहाँ मुझे पहचान कर संभ्रम सहित दौड़ती हुई कादंबरी की दासियाँ जब इधर-उधर से प्रणाम करेंगी तब मैं प्रवेश करूँगा और उसकी सखियाँ प्रफुल्ल नयनों से मेरे आने की सूचना करके पूर्ण-पात्र लेंगी। फिर अंजुलि-युक्त प्रणाम और कंठग्रह से मदलेखा का सत्कार कर, चरणों में पड़ी हुई पत्रलेखा को उठा कर मैं केयूरक का बार-बार गाढ़ आलिगंन करूँगा। महाश्वेता मेरे विवाह की मांगलिक-क्रिया तथा सब सखियाँ जल्दी-जल्दी देवी के वैवाहिक स्नान की मंगल-विधि करेंगी और तब मैं वर्षा से अभिषिक्त पृथ्वी के समान देवी का कर ग्रहण करूँगा।

ऐसे-ऐसे सुंदर विचारों में क्षुधा, तृषा, श्रम और जागरण

की व्यथा न गिनता हुआ वह रात-दिन बराबर चलता रहा। इस प्रकार चलने पर भी दूरी बहुत होने से आधा मार्ग ही कटा था तब तक जैसे काला साँप मार्ग रोक लेता है उसी प्रकार मेघकाल ने उसे आगे न बढ़ने दिया। इस कारण न रात में, न दिन में, न गाँव में, न जंगल में, न चलने में, न ठहरने में, न वैशंपायन के स्मरण में और न कादंबरी समागम के ध्यान में, किसी भी प्रकार उसे सुख नहीं था। उस काल बिजलियाँ मानों उसको तर्जना करती थीं; बादल मानों उसको रोकते थे, और खंग के समान निर्दयता से गिरती जलधाराएँ मानों उसके सैकड़ों टुकड़े कर डालना चाहती थीं। यह सब होने पर समस्त प्राणी जिसमें अपने स्थान से नहीं हिलते ऐसी वर्षा-ऋतु में भी क्षण भर विलंब किए बिना वह आगे बढ़ता ही गया और सारी सेना उसके पीछे-पीछे चलती गई।

इतना महान् कष्ट सहन करके चलता-चलता राजकुमार कितने ही दिनों में उस अच्छोद सरोवर के पास जा पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसने, जब लज्जा के कारण वैशंपायन हमें देख कर भागने लगेगा तब तुम सब चारों ओर सावधानी से रहना, सवारों को यह आज्ञा दी। इतना कह कर आप भी घोड़े पर बैठे-बैठे ही लता, वन, वृक्ष-मूल, शिलातल तथा सुंदर मंडपों में ढूँढ़ता-ढूँढ़ता आसपास घूमने लगा। परंतु घूमते-घूमते जब कहीं भी उसके रहने का कुछ चिह्न न दीख पड़ा तब उसने विचार किया, हो न हो पत्रलेखा से मेरे आने का संवाद पाकर वह पहले से ही भाग गया हो जिससे यहाँ उसके ठहरने का चिह्न तक नहीं दीखता। तब उसने फिर सोचा कदाचित् महाश्वेता को भी इस बात की सूचना हो, इसलिए उससे मिलना चाहिए। यह विचार

फर महाश्वेता के आश्रम के पास ही अश्व-सैनिकों का डेरा डाल कर, सर्प की केंचुल के समान महीन तथा मेघ-रहित चाँदनी के समान सुंदर दो कपड़े पहन इंद्रायुध पर बैठ वह आप महाश्वेता के आश्रम में गया।

वहाँ जाकर गुहा के द्वार के पास ही सफेद चट्टान के ऊपर उसने महाश्वेता को नीचे मुख किए हुई बैठी देखा जो शोक के वेग के कारण वर्षाकाल की प्रचंड आँधी से कँपाई हुई लता के समान अवनत होती थी। उसकी ऐसी अवस्था देख कर चंद्रापीड़ ने विचारा कहीं देवी कादंबरी का तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ। इस आशंका से हृदय मानों फट रहा हो इस प्रकार होकर आँसुओं से दीन-वदन वह तरलिका से पूछने लगा, यह क्या बात है? परंतु तरलिका कुछ न बोली वरन महाश्वेता के मुख को ही देखने लगी। इतने में शोक के शांत हुए बिना ही महाश्वेता बोली- महाभाग! यह बिचारी क्या कहेगी? दुःख सहते-सहते जिसका हृदय कठिन हो गया है और जिसने दुःख सुनने के अयोग्य को भी एक बार अपना दुःख सुनाया था वही मंदभागिनी मैं महाभाग के जीवन को महान् संशय में डालने वाला यह निर्लज्ज, सुनने के अयोग्य दुःख भी सुनाऊँगी!

केयूरक से आप के जाने का वृत्तांत सुन कर वैराग्य उत्पन्न होने के कारण कादंबरी के स्नेह के बड़े दृढ़ बंधन को भी तोड़ कर जब मैं फिर यहाँ चली आई तब मैंने आप की ही समान आकृति वाले, एक ब्राह्मण युवक को आँसुओं से भरी हुई लक्ष्य-रहित दृष्टि से किसी खोई हुई वस्तु को इधर-उधर ढूँढ़ता सा यहाँ पर देखा। पहिले कभी भी देखे बिना ही मानों मुझे पहचान लिया हो: तथा चुपचाप ही मानों कुछ याचना करता

में इस प्रकार निमेष-रहित, निश्चल तथा स्तब्ध पलकों सहित आँसुओं से भरे हुए नेत्रों से मस्त हो वह मेरे पास आकर और एकाग्र दृष्टि से मुझे बहुत देर तक देखकर बोला, सुन्दरी ! जगत में जन्म, वय और आकृति के अनुकूल आचरण करनेवाले की कोई निन्दा नहीं करता; परंतु तुम्हारा यह कैसा प्रयत्न है जो चमेली के फूलों के समान सुकुमार तथा प्रणय के योग्य शरीर को तुम क्लेश से इस प्रकार खिन्न कर रही हो ? जब तुम्हारे समान ललनाएँ संसार-सुख से अलग होकर तप करती हैं तब कामदेव अपना धनुष वृथा चढ़ा रखता है, चंद्रमा का उदय व्यर्थ होता है और वसंत मास वृथा आता है !

उसके ऐसा कहने पर भी तू कौन है, कहाँ से आया है, और क्यों मुझसे इस प्रकार कहता है, यह पूछे बिना ही अन्यत्र जाकर तरलिका को बुला कर मैंने कहा, तरलिके ! यह युवक आकार से कोई ब्राह्मण ज्ञात होता है किंतु इसकी दृष्टि और वाणी से मेरे मन में कुछ अन्य ही प्रकार के भाव उठते हैं। इसलिए तू जाकर उससे कह दे वह फिर यहाँ न आए, क्योंकि जो निषेध करने पर भी यहाँ फिर आएगा तो अवश्य उसका कुछ अनिष्ट होगा। पर उसने वर्जित करने पर भी अनर्थ की भवितव्यता से मेरा पीछा नहीं छोड़ा और कई दिन के अनन्तर एक बार जब रात्रि बहुत बीत गई थी और कल्हार की सुगन्ध लाती हुई अच्छोद सरोवर की पवन मंद-मंद चल रही थी उस काल चुप-चाप पैर रख कर जल्दी-जल्दी अपनी ओर आते उसी युवक को मैंने देखा। मुझे आलिंगन करने की मिथ्या आशा से दूर से ही दोनों भुजा पसारने से वह ऐसा लगता था मानों निरंतर दिशाओं को भर डालता चाँदनी का प्रवाह उसको उठा कर लिए

जा रहा हो। अपने जीवन की तनिक भी चिंता न होने पर भी उसको इस प्रकार देख, मुझे बहुत भय हुआ और मैंने विचार किया अहो! यह बड़ी आपत्ति सामने आई। मैं यह चिंता कर ही रही थी इतने में वह मेरे पास आ गया और बोला चंद्रमुखी! यह कामदेव का सहायक चंद्रमा मुझे मारने पर उतारू हुआ है इसलिए मैं तेरी शरण में आया हूँ। मैं दीन हूँ, और अपने आप उपाय करने में असमर्थ हूँ। मुझ अशरण और अनाथ की तू रक्षा कर! मेरा जीवन तेरे अधीन है। शरणागत की रक्षा करना तपस्वियों का धर्म भी है।

यह सुनकर मेरे माथे में से मानों उसी क्षण लपटें निकलने लगीं और मेरा शरीर चरणों तक काँपने लगा, इसलिए अपने आपको भी भूलकर मैं क्रोध के आवेग से कठोर शब्दों में बोली, अरे पापी! मुझसे ऐसा कहने में तेरे माथे पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ता। तेरी जिह्वा के सहस्रों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते! भगवन् परमेश्वर, जो मैंने देव पुंडरीक के दर्शन के पीछे मन में भी किसी अन्य पुरुष का चिन्तन किया हो तो मेरे इस सत्य वचन से यह पक्षी के समान काम-वश दुष्ट किसी पक्षी-जाति में ही पड़े!

मेरे इतना कहते ही न जाने तत्काल फलदायक अपने पाप से या मेरे वचन के सामर्थ्य से ही, जड़ कटे वृक्ष की भाँति अचेत होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके मरने के पीछे विलाप करते हुए उसके परिजनों से मैंने सुना वह आपका ही मित्र था।

इतना कहकर महाश्वेता लज्जा से मुँह नीचे झुकाकर चुपचाप ही बड़े-बड़े आँसू डालकर पृथ्वी को भिगोने लगी। यह सुनकर नेत्रों के बंद हो जाने से चंद्रापीड़ की दृष्टि मग्न हो गई, और

भगवती! तुम्हारे प्रयत्न करने पर भी मुझ पुण्यहीन को इस जन्म में देवी कादंबरी की चरण-सेवा का सुख न मिला इसलिए जन्मांतर में भी तुम उसकी संवादयित्री होना। इतना कहते-कहते उनका हृदय भ्रमर का आघात पाई हुई कली के समान फट गया। यह देख चंद्रापीड़ के शरीर को सहारा देकर तरलिका ने कहा, भर्तृदारिके! अब लज्जा का क्या काम? देखिए तो! देव चंद्रापीड़ कुछ और ही हो रहे हैं! उनकी ग्रीवा मानों भग्न हो गई है. और पुतलियाँ भीतर बैठ गई हैं। यह कह कर वह आर्तस्वर से प्रलाप करने लगी।
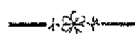
१०—शोक के मूल में मंगल की कलियाँ :

फिर भूतल पर लोट-लोट कर चंद्रापीड़ के परिजन इस प्रकार विलाप करने लगे, अरी पापिन, दुष्ट तपस्विनी तूने तो सब संसार की पीड़ा हरने वाले तारापीड़ के कुल का अंत ही कर दिया हाय ! तूने तो याचकों के मार्ग में अर्गला लगा दी। हा देव ! आपकी केवल कहानियाँ रह गईं। दयालु होने पर भी आप आज हमपर इतने निर्दय क्यों हो गए हो ? एक बार तो आज्ञा देकर भक्त-जनों की प्रार्थना पूरी करो। आपके बिना न पुत्र-वत्सल देव तारापीड़, न देवी विलासवती, न आर्य शुकनास न मनोरमा, न राजा लोग, न प्रजा-जन कोई भी एक क्षण जीवित रह सकेंगे। यह सुन-सुन कर चंचल पुतली वाले नयनों को खोल कर देखता हुआ इंद्रायुध भी चंद्रापीड़ के मुख पर दृष्टि रख कर अति दीन हिनहिनाहट से आक्रंद करने लगा।

समाचार पाते ही समुद्र की वेला के समान कादंबरी महा-श्वेता से मिलने का बहाना करके शृंगार योग्य वेष तथा आभूषण पहिन कर चंद्रापीड़ के दर्शन के लिए तड़पती हुई वहाँ आई। झनझनाते नूपुरों, खनखनाती मेखला तथा सुंदर उज्वल वस्त्रों वाली कादंबरी को देखकर देखने वालों को कामदेव की सेना का भ्रम होने लगा होगा। वहाँ आकर अमृत रहित सागर के समान तथा चंद्र रहित निशा-समय के समान प्राण-रहित चंद्रापीड़ को देखते ही अरे हाय ! यह क्या ? कह कर वह भूमि-तल पर तड़ाक से गिर पड़ी। मदलेखा ने दौड़ कर ज्यों-त्यों करके उसे सँभाला अवश्य परंतु स्वयं वह भी तो अकस्मात् गिरी विपत्ति

रूप उसी बिजली से झुलसी हुई थी। छन भर में वह भी अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। फिर बहुत देर में उसे चेतनता आई। पर कादंबरी स्तंभित हो साँस लेना भी जैसी भूली हुई सी चित्रित की भाँति खड़ी की खड़ी ही रह गई।

उसको उस प्रकार खड़ी देखकर मदलेखा पैरों पर गिर पड़ी और बोली, प्रिय सखी। कृपा करके शोक के इस भार को रुदन से दूर करो, क्योंकि अश्रुपात से इसे दूर न करोगी तो अत्यंत पीड़ा से छोटे तालाब के समान तुम्हारा हृदय अवश्य सहस्र टुकड़ों में विभक्त हो जाएगा और तुम्हारे बिना माता और पिता दोनों के कुल नष्ट हो जाएँगे।

यह सुनकर मदलेखा से कादंबरी ने हँस कर कहा, अरी पगली! यह मेरा वज्रसार के समान कठिन हृदय जब यह देख कर भी विदीर्ण न हुआ तो फिर यह फट कैसे सकता है? मेरे लिए आकर तथा प्राण त्यागकर मुझे देवने बहुत उच्च पद पर चढ़ाया और अविचल गौरव दिया तो फिर आँसू बहा कर मैं क्यों अपने को हलकी करके पतित करूँ? जिसके लिए मैंने कुल की मर्यादा नहीं गिनी, गुरुजनों की अपेक्षा नहीं की और जनापवाद का भय नहीं खाया जब उन्हीं मेरे प्राणनाथ ने मेरे लिए प्राण त्याग दिए तो इस समय तो जीना ही मरना और मरना ही जीना है। इसलिए जो मुझ पर तेरा स्नेह है और तू मेरा हित चाहती है तो तू ऐसा प्रयत्न कर जिससे मेरे माता-पिता मेरे शोक से प्राणों का त्याग न करें और मेरी सखियाँ तथा परिजन मुझे स्मरण कर राज-सदन सूना देख भाग न जाएँ।

हे मेरी प्यारी सखी! मेरे मर जाने पर मेरे आँगन में लगे हुए मेरे पुत्र के समान छोटे से आम के पौदे का जैसा मैंने विचारा था

वैसा ही मालती लता के साथ तू स्वयं विवाह कर देना। बिचारी कालिंदी मैना तथा परिहास सुग्गे को पिंजरे में रहने के दुःख से छुड़ा देना। मेरी गोद में सोने वाली नकुलिका को अपनी ही गोद में सुलाना और मेरे पुत्र बाल-हिरन तरलक को किसी तपोवन में भिजवा देना। चरणों के साथ चलने वाले हंस को कोई मार न डाले ऐसी सावधानी से रखना और जिसे घर में रहने की आन नहीं है ऐसी बलपूर्वक लाई हुई बिचारी वन मानुषी को वन में ही छुड़वा देना। मेरे वस्त्र तथा भूषण आदि का ब्राह्मणों को दान कर देना, परंतु वीणा को तो अपने ही उत्संग में प्रेम से रखना और जो कुछ तुझे रुचे स्वयं ले लेना।

यह कहती-कहती महाश्वेता के पास आकर गले से चिपट कर कादंबरी उससे बोली, प्रिय सखी! तुझे तो कुछ आशा भी है जिससे प्रति क्षण मरने से भी अधिक दुःख भोगती हुई तू जीवन धारण कर रही है, परंतु सब ओर से निराश हुई मेरे लिए क्या है? इसलिए प्रिय सखी! जन्मांतर में फिर समागम के लिए मैं तेरा आमंत्रण करती हूँ। इतना कह कर चंद्रापीड़ रूपी चंद्रमा के अस्त से शोक ग्रस्त हुई कुमुदिनी के समान कादंबरी सती होने की इच्छा से चंद्रापीड़ के चरणों की पूजा कर हाथों से उसको उठा कर गोद में लेकर बैठ गई। उसके गोद में लेते ही उसके स्पर्श से मानो संजीवन हो गया हो इस भाँति चंद्रापीड़ के शरीर में से अस्पष्ट रूप का, चंद्रमा के समान धवल ज्योति सा कुछ प्रकट हुआ और तत्काल ही अंतरिक्ष में, अमृत रस बरसाती सी यह आकाशवाणी सुनाई दी—

वत्से, महाश्वेते! मैं तेरा फिर आश्वासन करता हूँ। तेरे पुंडरीक का शरीर मेरे लोक में, मेरे तेज से पुष्ट होता हुआ, तेरे साथ

फिर समागम के लिए विनाश-रहित स्थित है। यह दूसरा मेरे तेज से युक्त स्वयं ही विनाश रहित, कादंबरी के कर स्पर्श से पुष्ट होता हुआ चंद्रापीड़ का शरीर शाप-दोष से मुक्त होने पर भी, शाप क्षय तक यहीं पड़ा रहना चाहिए। तू न इसका अग्नि-संस्कार करना, न इसे जल में डालना, और न इसे फेंकना, वरन् जब तक समागम न हो तब तक इसे यत्न से रखना।

यह वचन सुनकर पत्रलेखा जल्दी-जल्दी दौड़कर इंद्रायुध को छुड़ाकर हमारे जैसों का तो जो होना होगा सो होगा ही, परन्तु सवारी बिना महाराज अकेले दूर चले गए इससे तेरा क्षण भर भी यहाँ ठहरना अच्छा नहीं लगता, यह कहती हुई उसके साथ ही अच्छोद सरोवर में जा गिरी। उन दोनों के डूबते ही उस सरोवर के जल में से एक तापस-कुमार बाहर निकला। वह मुँह पर गिरती हुई जटा को हाथ से हटा रहा था और आँसुओं के बहाने भीतर प्रवेश किए हुए अच्छोद के जल को मानो लाल नेत्रों में धारण कर रहा था। वह मुनि-कुमार पानी में से निकल कर एकाग्र दृष्टि से देखती हुई महाश्वेता के पास आकर शोक के कारण गद्‌गद कंठ से बोला, गांधर्व राजपुत्री! जन्मांतर में आए हुए इस जन को क्या आपने पहचाना नहीं? यह प्रश्न सुन कर महाश्वेता संयमपूर्वक उठ कर उसके चरणों की वंदना करके बोली, भगवन् कपिंजल! क्या मैं ऐसी पापिन हूँ जो आप को पहचान तक न सकूँगी? कहिए आपको क्या हो गया था जो इतना समय बीत गया और आपने कुछ भी सुधि न ली?

महाश्वेता का यह प्रश्न सुन कर कपिंजल ने कहा, गांधर्व राजपुत्री! तुमको अकेली छोड़ कर मित्र-स्नेह के कारण मेरे प्यारे मित्र को कहाँ ले जाता है, यह कहता हुआ मैं उस आदमी

कर पीछे जल्दी-जल्दी उड़ता गया किंतु पीछे-पीछे दूर तक जाने पर भी उसने मुझे कुछ उत्तर नहीं दिया। घूँघट से मुँह ढँकनेवाली दिव्यांगना अभिसारिकाएँ उसे आकाश में रास्ता देती जाती थीं और चंचल पुतली-युक्त नेत्रोंवाली तारिकाएँ इधर-उधर से उसे प्रणाम करती थीं। इस प्रकार देवताओं के मार्ग में होकर, वह चंद्रलोक में गया और वहाँ महोदया नाम की सभा में एक बड़े चंद्रकांतमय पलंग पर पुंडरीक के शरीर को रख कर वह मुझसे बोला, कपिंजल! मैं चंद्रमा हूँ। संसार के हित के लिए उदय होकर मैं अपना काम करता था उस समय प्राण छोड़ते हुए तेरे इस प्रिय मित्र ने मुझ निर्दोष को शाप दिया—जैसे किरणों से तू ने मुझे प्राणप्रिया के समागम-सुख के बिना प्राणों से रहित किया है उसी प्रकार तू भी समागम-सुख के बिना अत्यंत तीव्र हृदय-वेदना का अनुभव कर प्राण छोड़ेगा। यह सुनते ही उसके शाप की अग्नि से मैं झटपट जलने लगा तब इस विवेक-हीन ने मुझ निर्दोष को क्यों शाप दिया यह विचार कर क्रोध आ जाने पर मेरी ही भाँति तू भी वियोग-दुःख भोगेगा यह शाप मैंने भी उसे दिया। परंतु क्रोध शांत होने पर स्वस्थ बुद्धि से मैंने विचारा तब मुझे विदित हुआ इसका तो महाश्वेता के साथ मेरी किरणों से जायमान अप्सराओं के कुल में गौरी से उत्पन्न हुई है संबंध है। परंतु अब तो इसे अपने ही दोष से मेरे साथ मृत्युलोक में दो बार अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, इसलिए जब तक यह शाप के दोष से नहीं छूट जाता तब तक के लिए इसके आत्मा-रहित शरीर की रक्षा करने के लिए मैं यहाँ उठा लाया हूँ और पुत्री महाश्वेता को मैंने आश्वासन कर दिया है। अब तू जाकर यह वृत्तांत श्वेतकेतु से कह दे।

यह सुनकर मित्र के बिना शोक के वेग से अंधा होकर देवताओं के रास्ते में दौड़ते समय मैंने एक अत्यंत क्रोधी वैमानिक के मार्ग को लाँघ दिया जिससे वह बहुत रुष्ट हुआ और विकराल नेत्रों से मुझे देख कर बोला, आकाश के इतने प्रशस्त मार्ग में घोड़े की भाँति उन्मत्त होकर चलते-चलते तूने मेरा उल्लंघन किया है इसलिए तू घोड़ा ही होकर मृत्यु-लोक में जन्म ले। यह सुन आँखों में आँसू भर कर और हाथ जोड़ कर मैंने उससे कहा, भगवन्! मित्र के शोक से अंधा होने के कारण मुझसे तुम्हारा उल्लंघन हो गया, अवज्ञा से नहीं। इस कारण कृपा कर इस श्राप को शीघ्र ही दूर कीजिए। तब उसने कहा, मेरा कहना अन्यथा न होगा, परंतु एक बात कह सकता हूँ। तू थोड़े काल तक भी जिसका वाहन होगा उसके मरने पर नहाकर ही श्राप से छूट जाएगा। तब मैंने उससे कहा, भगवन्! जो यह बात है तो मैं एक प्रार्थना करता हूँ वह मेरा प्रिय मित्र पुंडरीक भी चंद्रमा के साथ, श्राप के कारण, मृत्युलोक में ही जन्म लेने वाला है इसलिए आप दिव्यदृष्टि से देखकर इतनी कृपा कीजिए जिसमें घोड़ा होकर भी मेरा इसी मित्र के साथ समय बीते। यह सुन उसने मेरे ऊपर दया हो जाने के कारण क्षण भर ध्यान करके देखा और यह कहा, उज्जयिनी में पुत्र के लिए तप करते हुए राजा तारापीड़ के यहाँ स्वप्न में पहिले ही, सूचना देकर चंद्रमा पुत्र-रूप से पैदा होगा और तेरा मित्र पुंडरीक भी उसी राजा के शुकनास नामक मंत्री का पुत्र होगा। सो तू भी जाकर तारापीड़ के उस महोपकारी चंद्रात्मक राजकुमार का वाहन बनेगा।

उसका वचन सुनते ही मैं नीचे के महासागर में जा पड़ा और

वहाँ से घोड़ा होकर निकला घोड़ा बनकर भी मेरी चेतना नहीं गई थी, इसी कारण मैं इसी प्रयोजन से किन्नर-मिथुन के पीछे लगे हुए चंद्रमा के अवतार चंद्रापीड़ को इस जगत् में आया था और पहिले के अनुराग के संस्कार से ही तुम्हारी ऐसी अभिलाषा करते हुए जिस युवक को तुमने बिना जाने श्राप की अग्नि से भस्म कर डाला है वह भी तेरे सर्वस्व तथा मेरे प्यारे मित्र पुंडरीक का ही अवतार था।

यह सुनते ही महाश्वेता आर्तस्वर से छाती कूट-कूट कर प्रलाप करने लगी। उसे विलाप करती देख कपिंजल बोला. गांधर्व राजपुत्री! इसमें तुम्हारा क्या दोष है जो तुम अपनी आत्मा की निंदा करके विलाप करती हो? दोनों की भलाई करने वाला जो यह पुनीत तप तुम कर रही हो उसे करती रहो। थोड़े ही दिनों में इसी तप के प्रभाव से तुम मेरे मित्र की गोद में शोभायमान होगी! कपिंजल के ऐसा कहने पर महाश्वेता के शोक का भार कुछ शांत हुआ। फिर विषाद से दीन मुख वाली कादंबरी ने कपिंजल से पूछा, भगवन्! तुम और पत्रलेखा दोनों ने एक ही साथ इस सरोवर के जल में प्रवेश किया था पर उस बिचारी का क्या हुआ सो कृपा करके कहिए। कपिंजल ने उत्तर दिया, राजपुत्री! पानी में घुसने के पीछे मैंने उसका कुछ भी समाचार नहीं जाना इसलिए चंद्रात्मक चंद्रापीड़ का तथा पुंडरीकात्मक वैशंपायन का जन्म कहाँ हुआ और पत्रलेखा का क्या हुआ, यह सब वृत्तांत जानने के लिए मैं. जिनको लोकत्रय प्रत्यक्ष हैं ऐसे. तात श्वेतकेतु के चरणों में जा रहा हूँ। तुम यह भेद चंद्रापीड़ से पूछने पर जान सकोगी। यह कहता हुआ वह आकाश में उड़ गया।

दशम परिच्छेद

उसके जाने के पीछे कादंबरी विस्मय के कारण सब शोक भूल गई। थोड़ी देर में जब सब राजपुत्र अपने-अपने स्थान को चले गए तब उसने चुप-चाप उठ कर तरलिका तथा मदलेखा के साथ चंद्रापीड़ के शरीर को उठा कर, शीत-पवन, ताप-वर्षा आदि कष्टों से बचा रखने के लिए एक चट्टान पर रख दिया। फिर केवल मंगल-चिन्ह के लिए एक मणि-जटित कंकण को छोड़ सब शृंगार के वेष तथा गहने उसने उतार डाले और स्नान करके शुद्ध हो, धुले हुए दो स्वच्छ कपड़े पहन कर चंद्रापीड़ की मूर्ति की देवताओं के योग्य पूजा की और निराहार रह कर वह दिन बिताया। प्रातःकाल चंद्रापीड़ का शरीर चित्र के समान उन्मीलित हुआ देख, धीरे-धीरे उसे हाथ से स्पर्श करके वह पास बैठी हुई मदलेखा से कहने लगी, प्रिय सखी! मुझे तो यह शरीर वैसे का वैसा ही दीखता है। तू भी तनिक सावधानी से देख! यह सुन कर मदलेखा ने ध्यान से देख कर कहा प्रिय सखी! प्रवाल के समान लाल नख, अँगुलियाँ तथा तलुवे वाले हाथ-पैर सब वैसे के वैसे ही हैं और सहज लावण्य तथा सुकुमारता से युक्त अवयवों का सौंदर्य भी वैसाही है। इसलिए हमारी सुनी हुई वाणी तथा कपिंजल का कहा हुआ शाप का वृत्तांत सच्चा है इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

मदलेखा के ऐसा कहने पर आनंद से प्रफुल्लित होकर कादंबरी ने महाश्वेता को तथा चंद्रापीड़ के अधीन सब राजपुत्रों को भी वह शरीर दिखाया। तदनंतर सबके स्नान-भोजन कर चुकने पर स्वयं उसने भी महाश्वेता तथा परिवार के साथ फलाहार किया और फिर उसी भाँति चंद्रापीड़ के चरणों को गोद में लेकर वह दिन भी बिताया। दूसरे दिन वह मदलेखा से बोली

प्रिय सखी प्राणनाथ के शरीर की सेवा में आप-क्षय तक हमको अवश्य यहीं रहना ही होगा, इसलिए तू जाकर हमारे माता-पिता से अत्यंत अद्‌भुत यह वृत्तांत कह दे जिससे मेरे विषय में वे अन्यथा विचार करके दुखी न हों। मदलेखा ने वैसा ही किया।

फिर जब वर्षाऋतु बीत गई, नदियाँ सुख से तैरने योग्य हुईं और कीचड़ के अभाव से पगडंडियाँ सूख गईं तब एक समय चंद्रापीड़ के चरणों के पास बैठी हुई कादंबरी के निकट मेघनादने आकर सविनय कहा, देवि ! युवराज को आए बहुत दिन होने से हृदय में खिन्न हुए देव तारापीड़, देवी विलासवती और आर्य्य शुकनासने उनका समाचार लेनेके लिए दूत भेजे हैं जो यहाँ आए हैं। यह सुनते ही कादंबरी ने बिना विलंब उनको बुलवा लिया। दूतगण मेघनाद से वह सब अद्‌भुत वृत्तांत पहिले ही सुन चुके थे। अतः वहाँ जाकर दूरसे ही आँसू गिराकर तथा पाँचों अंगोंसे भूतल को स्पर्श कर चंद्रापीड़ के चरण-कमलों को वंदना करने के प्रेम से पलक खोलकर वह निश्चल वह दृष्टिसे उसके शरीरको देखने लगे।

राजकुमार के पवित्र शरीर को इस प्रकार बहुत देर तक उनको देखते हुए देख कादंबरी ने कहा, भद्रजन ! इस वृत्तांत में केवल शोक के लिए ही अवकाश नहीं है वरन् यह बड़े भारी विस्मय की भी बात है। इसलिए अब तुम समाचार सुनने के उत्सुक देव तारापीड़ के पास लौट कर जाओ, परंतु प्रत्यक्ष यह देखने पर भी उनसे केवल इतना ही कहना, हमने देव को अच्छोद सरोवर पर देखा है। यह आज्ञा सुन कर वे बोले, देवि ! हम क्या बोलें ? महाराज आदि को इस बात का अज्ञान केवल दो ही भाँति हो सकता है। या तो हम जाएँ ही नहीं अथवा जाकर भी वहाँ कुछ भी न कहें।

परंतु यह दोनों ही बातें हमारे हाथ में नहीं हैं, क्योंकि जब तक हम जीवित हैं न जाने की बात सूझ ही नहीं सकती, और जाने पर अत्यंत प्रिय पुत्र के समाचार सुनने के उत्सुक राजा, रानी तथा आर्य शुकनास के दुख के कारण आँसुओं में डूबे हुए नेत्रों वाले मुख को देख हमारा वहाँ चुपचाप खड़ा रहना असंभव ही है।

यह सुन कर कादंबरी ने मेघनाद से कहा, मेघनाद! इनके साथ किसी ऐसे जन को भेजो जिसके कहने पर विश्वास हो और जिसने यह सब वृत्तांत प्रत्यक्ष देखा हो। यह आज्ञा सुन मेघनाद ने चंद्रापीड़ के बालकपन के सेवक त्वरितक को बुला कर दूतों के साथ कर दिया।

बहुत दिनों से समाचार न पाने के कारण दुःखित हुई विलासवती चंद्रापीड़ के आने के लिए अवंति के देवताओं की पूजा के लिए वहाँ के मंदिरों में गई हुई थीं। उसी समय उन्होंने जल्दी-जल्दी दौड़ते परिजनों से सुना, युवराज का समाचार लेने के लिए भेजे गए दूत लौट कर आ गए हैं। त्वरितक के साथ दूतों को आता देख कर तथा उनसे उज्जयिनी के निवासियों को झुंड के झुंड दौड़ कर राजकुमार के साथ सेना में गए अपने-अपने प्रियजनों, बालधर्मा, पृथुवर्मा, अश्वसेन, भरतसेन, भद्रसेन, अवंतिसेन, सर्वसेन आदि के विषय में पूछताछ करते देख कर उसी माता के मंदिर में ठहर कर उन्होंने दूतों को बुलाने की आज्ञा दी। यह आज्ञा पा चुकने पर अचानक रानी का दर्शन होने से दूतों के दुःख का आवेग दूना हो गया और मानों उनका उत्साह छिन्न हो गया हो और इन्द्रियाँ उन्हें छोड़ गई हों, इस प्रकार शून्य शरीर वाले वे दूत, निर्जीव के समान, आकर संमुख

खड़े हो गए और वह प्रणाम भी न कर पाए थे तब तक विलासवती ने मानों आँसुओं के कारण अंधी होकर गिरती हों इस प्रकार भय से कितने ही पद आगे चल कर गद्गद स्वर से चिल्ला कर कहा, भद्रजनो ! मेरे लाल का जो समाचार हो मुझसे झटपट कहो । मेरे जोधा को तुमने देखा या नहीं ?

यह प्रश्न सुन कर तत्काल भर आते आँसुओं को, भूतल पर मस्तक रख कर प्रणाम करने के बहाने, गिरा कर और फिर महाकष्ट से सामने मुँह उठा कर, उन्होंने विनयपूर्वक कहा, देवि ! अच्छोद सरोवर के तीर पर हमने युवराज को देखा है। शेष समाचार यह त्वरितक निवेदन करेगा। उनके इतना कहते ही आँसुओं से छाए हुए मुख से विलासवती बोलीं, अरे ! अब यह विचारा और क्या कहेगा ? विषाद से दीन मुखों से, यत्नपूर्वक रोके हुए आँसुओं से, तथा दुःखी नेत्रों से, जो कहने को था वह क्या तुमने ही नहीं कह दिया ? यह कह कर वह दारुण विलाप करने लगी, हा वत्स चंद्रानन ! तुझे क्या हुआ जो तू नहीं आया ? पुत्र ! तू जब जा रहा था तभी मैंने हृदय की शंका से फिर तेरा मुख देखना दुर्लभ है यह जान लिया था। हाय ! मेरी जैसी अन्य कौन पापिन होगी जिसके एकमात्र पुत्रको असमय में ही इस प्रकार बल-पूर्वक पकड़ कर विधाता न जानें कहाँ ले गया ? इस प्रकार विलाप करते-करते उसे मूर्च्छा आ गई। तब विलासवती के सहस्रों परिजनों ने दौड़ कर यह समाचार राजा से कहा। यह सुन मंदराचल के घूमने से मथित हुए महासागर के समान तारापीड़, घबराहट के साथ, शुकनास सहित हथिनी पर बैठ बाहर निकला और नगर की देवी के मंदिर के पास आकर उतरा।

दशम परिच्छेद

वहाँ आकर राजा ने अपने आँसू भरे शोकातुर मुख को मोड़ कर दासियों को आधे खुले नेत्रोंवाली उष्णकाल की कमलिनी के समान विलासवती पर, चंदन और जल छिड़कती हुई देखा। यह देखकर राजा बहती हुई आँसुओं की धारा से शेष मूर्च्छा को दूर करने के लिए रानी के पास बैठ कर अपने स्पर्शरूपी अमृत बरसाते हुए हाथों को उसके ललाट, नेत्रों, गालों तथा छाती पर फेर कर गद्गद् स्वर से कहने लगा, देवि! यदि वत्स चंद्रापीड़ का यथार्थ में कुछ अनिष्ट हुआ है तब तो हम दोनों जिएँगे ही नहीं, इसलिए पुत्र के लिए साधारण लोगों के योग्य विकलता दिखा कर क्यों अपने को तुच्छ बनाती हो? अप्राप्य वस्तु छाती कूटने से भी अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं हो सकती। तनिक सोचो तो। भला हमको मिला क्या नहीं? वत्स का अत्यंत दुर्लभ जन्मोत्सव हमने किया, गोद में बैठा कर उसका मुँह हमने देखा, चित लेटे हुए उसका चुंबन करके मस्तक पर चरण हमने रखे, बालकपन के अस्पष्ट तथा मनोहर तोतले बोल हमने सुने, खेलते में उसकी बाल-लीला हमने देखी, विद्या पढ़ कर गुणवान् होने पर हृदय में आनन्द हमने पाया, यौवन आने पर उसकी दिव्य शोभा तथा शक्ति को प्रत्यक्ष हमने देखा और अभिषेक के पश्चात् दिग्विजय से आकर प्रणाम करने पर उसके अंगों का आलिंगन हमने किया! हाँ, उसको बहू समेत अपने पद पर प्रतिष्ठित करके तपोवन में हम न जा सके, यही हमारी इच्छा पूरी होने को रह गई। परंतु सभी इच्छाओं की प्राप्ति महापुण्य करने से ही हो सकती है। फिर पुत्र को हुआ क्या यह तो अभी तक किसी ने स्पष्ट कहा ही नहीं।

यह कह कर राजा ने सब समाचार विस्तार में जानने के हेतु

त्वरितक को बुलवाया और शीघ्र ही त्वरितक ने आकर पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। तब राजा ने स्नेह के कारण उसके माथे पर हाथ फेर कर कहा, कहो, त्वरितक ! कुमार को क्या हुआ जो वह मेरे, अपनी माता के और मंत्री के लिखने पर भी अभी तक यहाँ नहीं आए ? राजा का यह प्रश्न सुन त्वरितक प्रस्थान से लेकर जो-जो हुआ था सब कह डाला। तब राजा चंद्रापीड़ का हृदय फटना सुनते ही क्षुभित हो शोक-सागर में गिर कर विह्वल हो गया और हाथ लम्बा कर आर्त स्वर से त्वरितक से बोला, भाई ! अब बस करो। जो कहने को था सो तुमने सब कह ही दिया और मैंने भी जो सुनने को था सो सब सुन ही लिया। मेरी जिज्ञासा पूर्ण हुई, कान कृतार्थ हुए और हृदय भी आनंदित हुआ। हा वत्स ! तू ने अकेले ही हृदय फटने की वेदना का अनुभव किया। हाय ! वैशंपायन के लिए प्राण देकर उस पर तूने पूरी प्रीति दिखाई, पर हम दुखिया ऐसे क्रूर हैं जो तेरा हृदय फटने पर भी अब तक निर्विकार बने हैं। देवि ! हमारा हृदय वज्र से भी अधिक कठिन है, इसलिए उठो। प्रिय पुत्र अकेला ही बहुत दूर न पहुँचे तब तक हम उसके पीछे जाने का प्रयत्न करें। इस प्रकार कह कर राजा ने मंत्री से कहा, अरे शुकनास ! अभी क्या शोक में तुम खड़े ही हो ? यही तो स्नेह दिखाने का समय है। सेवकों को महाकाल के मंदिर के पास जल्दी चिता तयार करने की आज्ञा दो। इस प्रकार आर्त स्वर से प्रलाप करता हुआ तारापीड़ विलासवती को हाथ का सहारा दे रहा था तब त्वरितक ने बड़ी दीनता से कहा महाराज ! हृदय फटने पर भी युवराज अभी शरीर से जीवित हैं और उनका तथा शाप-दोष से जिस प्रकार वैशंपायन का जन्म हुआ यह सब

अद्‌भुत वृत्तांत आप धीरज धरकर पहिले सुन लें।

यह विलक्षण बात सुन तारापीड़ ने निमेष-रहित नेत्रों से ध्यान देकर जो-जो त्वरितक ने देखा-सुना या अनुभव किया था वह सब सुना और फिर मुँह मोड़, विचार से निश्चल हुई पुतलीवाली दृष्टि उसने शुकनास के मुँह पर डाली। मित्र स्वयं दुखी होने पर भी अपना दुख छिपा कर मित्र का दुख दूर करने का यत्न करते हैं, इसी कारण शुकनास ने भी स्वयं अविचलित हो राजा से कहा, महाराज ! जिसमें देवता, पशु, पक्षी तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं ऐसे इस सुख-दुखमय विचित्र संसार में कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो असंभव हो। पुराण, रामायण महाभारत आदि सब शास्त्रों में अनेक प्रसंग के शापों के वृत्तांत मिलते हैं। महेंद्रपद प्राप्त करनेवाले राजर्षि नहुष को अगस्त्य के शाप से, अजगर होना पड़ा था वशिष्ठ-पुत्र के शाप से सौदास राक्षस हो गया था, शुक्राचार्य के शाप से ययाति जवानी में ही बूढ़ा हुआ था और पिता के शाप से त्रिशंकु चांडाल बना था। औरों को तो जाने दीजिए यह आदि देव भगवान अज स्वयं ही जमदग्नि के पुत्र हुए थे। इसलिए मनुष्य-लोक में देवताओं का जन्म लेना असंभव नहीं है। अतः इस विषय में आप या महारानी तनिक भी शोक न करें, वरन् मंगल-क्रियाओं को आरंभ करें।

शुकनास के ऐसा कहने पर राजा ने दुखित अवस्था में ही उत्तर दिया, मित्र ! आपने जो कुछ कहा उसे अन्य कौन समझ सकता है तथा अन्य कौन हमें समझा सकता है ? परंतु वैशंपायन का दुख देख कर मेरे पुत्र का हृदय फट गया यह घटना मेरी दृष्टि के सामने फिर रही है और इसके संमुख और सब

घटनाएँ तुच्छ जान पड़ती है इस कारण जब तक पुत्र का मुख प्रत्यक्ष नहीं देख लूँगा तब तक मेरे चित्त का समाधान नहीं हो सकेगा। अतएव जीवन धारण करने के लिए वहाँ जाने के अति-रिक्त इस समय अन्य कोई भी उपाय मुझे नहीं दीख पड़ता है।

तारापीड़ के यह कहने पर पुत्र के कारण बहुत देर से दुःखित हुई विलासवती लज्जा छोड़, हाथ जोड़ ऊँचे स्वर से कहने लगी, आर्यपुत्र! जो जाना है तो विलंब क्यों करते हो? हम लोग बाहर निकले ही हैं। चलने की आज्ञा कीजिए। ठीक उसी समय शुकनास के एक अत्यंत विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मण ने पास आकर आशीर्वादपूर्वक कहा, देवि! सब ओर से इस बात का कल-कल सुन कर हृदय में व्याकुल हुई मनोरमा देवी दौड़ती-दौड़ती यहाँ तक आ गई हैं, परंतु महाराज की लज्जा से यहाँ न आकर माता के मंदिर के पीछे खड़ी हैं और पूछती हैं, दूत क्या समाचार लाए हैं?

इस प्रश्न को सुन कर राजा तारापीड़ शोक से मानो विदीर्ण हो गए और सौगुने बढ़े हुए शोक से विलासवती से बोले, देवि! तुम्हारी प्रिय सखी ने दोनों पुत्रों के संबंध में अभी कुछ भी नहीं सुना है। सुनते ही बिचारी कदाचित् प्राणों को ही छोड़ बैठेगी। इसलिए उठो और धैर्यपूर्वक, सब समाचार तुम स्वयं कह कर इस प्रकार अपनी प्रिय सखी का आश्वासन करो जिसमें आर्य शुकनास के साथ वह भी चले। यह कह कर उसने परिजन सहित विलासवती को उठाकर वहाँ भेजा और आप शुकनास के साथ जाने की सामग्री तयार कराई। इस प्रकार राजा के चलने पर चंद्रापीड़ के स्नेह से तथा अद्भुत बात को देखने के कुतूहल से और आगे गए हुए पिता, पुत्र, भाई, मित्र और स्वजनों

से मिलने की इच्छा से उज्जयिनी के असंख्य लोग चलने को तयार हो गए किंतु राजाने सबको छोड़, थोड़े ही परिवार सहित प्रयाण किया और अनवरत चलते-चलते थोड़े ही दिनों में अच्छोद सरोवर के पास जा पहुँचा।

महाश्वेता ने शीघ्र ही चंद्रापीड़ के गुरुजनों का वहाँ आना सुना और सुनते ही वह दौड़ कर लज्जा से गुहा के भीतर चली गई। कादंबरी भी यह सुन दौड़ती हुई सखियों के शरीर का सहारा लेती-लेती चुप-चाप मूच्छी के अंधकार में जा गिरी। जिस समय उन दोनों की ऐसी अवस्था हो रही थी उसी समय शुकनास का सहारा लेकर राजा आश्रम में जा पहुँचा। उसके पीछे मनोरमा के सहारे चलती, आँसू भरी अत्यंत लंबी दृष्टि आगे दौड़ाती, मेरा पुत्र कहाँ है, यह पूछती-पूछती पगली सी रानी विलासवती भी आ पहुँची और बहुत प्रलाप करती हुई पास आकर, बार-बार उसके अंग को गाढ़ आलिंगन दे, सिर सूँघ, गालों का चुंबन कर, उसके चरणों को मस्तक पर रख वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। उनको रोती देख तारापीड़ अपनी पीड़ा को भूल गए। उन्होंने चंद्रापीड़ को आलिंगन किए बिना ही अपनी प्रजा की पीड़ा हरने में समर्थ हाथों से उसको सहारा देकर कहा, देवि! यद्यपि यह हमारे पुण्य से पुत्र-रूप में प्राप्त हुए हैं तो भी यह देवता-मूर्ति हैं, इसलिए इनका सोच नहीं करना चाहिए। शोक करने से कुछ होता भी नहीं। अतः धैर्य रख कर मनोरमा तथा शुकनास को धैर्य बँधाओ, क्योंकि उनका वैशंपायन परलोकवासी हो गया है और जिसके प्रभाव से पुत्र के फिर जीवन पाने पर महोत्सव किया जाएगा। वही यह गंधर्व-राजपुत्री तुम्हारी बहू हमारे आने से शोक-तरंग में डूब कर मूच्छित हो गई

है और प्रिय सखियों के अनेक उपचार करने पर भी इसको चेतना नहीं आरही है। इसलिए इसे उठा कर गोद में बैठाओ और सचेत करो।

राजा के ऐसा कहने पर, कहाँ है मेरे पुत्र को जिलाने वाली मेरी बहू, यह कहती हुई विलासवती झट पास जाकर अचेतन अवस्था में ही अपने हाथ से गोद में लेकर, मूर्च्छा से मुँदे नेत्रों की दूनी शोभावाला उसका मुँह देख, चंद्रकला के समान शीतल अपना गाल उसके गालों पर, ललाट ललाट पर और नेत्र नेत्रों पर रखती, तथा हाथ हृदय पर फेरती कहने लगी, धीरज रखो बेटी। तुम्हारे बिना आज तक मेरे चंद्रापीड़ का शरीर कौन धर सकता था? तुम तो मानो अमृतमय हो।

चंद्रापीड़ का नाम लेने से तथा चंद्रापीड़ के समान ही विलासवती के स्पर्श से चेतना आने पर भी कादंबरी ने लज्जा से मुँह नीचा ही कर रखा और क्या करना चाहिए यह उसको न सूझ पड़ा। कादंबरी को सचेतन देख, चंद्रापीड़ को ही फिर जीवित हुआ मान, राजा ने उसके अंग का गाढ़ आलिंगन किया तथा चुंबन करता, देखता, स्पर्श करता हुआ वह कुछ समय ठहर कर फिर मदलेखा को बुलाकर बोला, हमें केवल दर्शनों का सुख ही प्राप्त करना था सो मिल गया। इसलिए जिस प्रकार इतने दिनों से बहू पुत्र के शरीर का उपचार करती रही है बराबर आगे भी करती रहे और हमारे आने की बाधा से वा लज्जा से इस कार्य को स्थगित न करे।

यह कह कर वह वहाँ से बाहर आया और अपने डेरे में न जाकर तपस्वी के रहने योग्य आश्रम के पास ही एक शुद्ध नव-लता-मंडप में जाकर अपने समान दुःख वाले सब राजा लोगों

को बुला कर संमानपूर्वक बोला, आप यह न समझना कि शोक के आवेग के कारण ही मैं आज तपस्वी-जीवन अंगीकार करता हूँ। मैंने यह विचार पहले ही किया था। वहू सहित चंद्रापीड़ का मुख देखने पर राज्य का भार उसे सौंप, किसी आश्रम में जाकर बुढ़ापा व्यतीत करने की मेरी प्रबल लालसा थी, किंतु भगवान् यम ने या पहले किए हुए मेरे विपरीत कर्मों ने उसे पूर्ण न होने दिया। चंद्रापीड़ के राज्यशासन से उत्पन्न हुआ सुख भाग्य में नहीं लिखा था। धन्य है उनको जो बुढ़ापे में शरीर क्षीण होने पर, पुत्र को अपना भार सौंप कर, हल्के शरीर से परलोक-गमन का साधन करते हैं। रहा प्रजा का पालन सो आपके अखंडित भुजाओं के आधार पर प्रथम की भाँति अब भी स्थिर ही है। अतः अब कुछ परलोक-सुख का उपार्जन करना चाहता हूँ। इसी लिए इस विषय में आपसे प्रार्थना करता हूँ।

इस प्रकार अपना यह विचार कर राजा तारापीड़ ने अपने अधीन सब उचित सुखों का भी परित्याग कर वनवास के अनुचित दुख को अंगीकार किया और वृक्षों के तले को ही राज-भवन मान कर, रनिवास की स्त्रियों की प्रीति को लताओं में लाकर, परिचित-जनों का स्नेह हिरनों में लाकर और पुत्र-स्नेह वृक्षों में रख कर, तपस्वियों के योग्य क्रियाएँ करता निरंतर सायंकाल तथा प्रातःकाल चंद्रापीड़ के दर्शन का सुख पाता हुआ वह तारापीड़ विलासवती, शुकनास तथा परिवार सहित वहीं रहने लगा।

११—अंतिम अध्याय—बिछोहियों का मिलन !

इतनी कथा कह कर भगवान जाबालि ने बुढ़ापे के कारण शोभारहित ज्ञात होती मुसकान के साथ हारीत आदि सब सुनने-वालों से कहा, आप सब चित्ताकर्षक कथा-रस की यह आकर्षण-शक्ति देखिये, जिसे कहना मैंने आरंभ किया था, उसे छोड़ कर कथा के रस से, कहते-कहते मैं बहुत दूर पहुँच गया। जो जन काम से विह्वल होकर अपने किए हुए अविनय से ही दिव्य लोक से भ्रष्ट होकर मृत्युलोक में वैशंपायन नाम का शुकनास का पुत्र हुआ था वही यह फिर अपने ही अविनय से कुपित हुए पिता के शाप से तथा महाश्वेता के सत्य के प्रभाव से सुग्गों की जाति में आ पड़ा है। भगवान जाबालि के इस प्रकार कहते ही बालक होने पर भी मुझे, मानों सो कर उठा हूँ इस भाँति, पूर्व जन्म में प्राप्त की हुई अपनी सब विद्याएँ जिह्वाग्र हो गईं और बात-चीत के लिए मुझे मनुष्य के समान यह स्पष्ट वर्ण; और अर्थयुक्त वाणी आ गई और मनुष्य-शरीर के बिना भी उसी तरह मुझको चन्द्रापीड़ से वही स्नेह, महाश्वेता पर वही अनुराग और उसे प्राप्त करने की वही उत्सुकता उत्पन्न हुई। इस प्रकार अन्य जन्म का सब वृत्तांत बुद्धि में उपस्थित होने के कारण उत्सुक होकर, भूतल पर शिर रख, बहुत देर पीछे, मानो मर्यादा के प्रतिकूल अपने आचरण के सुनने से उत्पन्न हुई लज्जा से पाताल में धँसा जाता हूँ, मैंने किसी भाँति भगवान जाबालि से विनयपूर्वक कहा; भगवन्! आपकी कृपा से मुझे सब ज्ञान का उदय हो गया है

और पूर्व जन्म के हमारे सब बांधव अब स्मरण आ गये हैं, जिससे उनकी स्मृति से मेरा हृदय फटा जाता है। जिसका हृदय मेरी मृत्यु को सुनते ही फट गया था उस चंद्रापीड़ का स्मरण होने से जितना दुख मुझको होता है उतना अन्य किसीके स्मरणसे नहीं होता है। इसलिए उसके जन्म का वृत्तांत कहने की भी कृपा कीजिये जिससे मेरा इस पक्षिजाति में जन्म उसके साथ एकही जगह रहने के कारण दुखदायक न हो।

तब मुझे देख कर भगवान जाबालि ने स्नेह तथा कोप के साथ उत्तर दिया, दुरात्मन! हृदय की जिस तरलता ने तुझे इस दशा को पहुँचाया है तू अब भी उससे क्यों लिपटता है? अभी तो तेरे पूरे पंख भी नहीं आए हैं। इसलिए पहिले चलना सीख, फिर मुझसे पूछना। यह सुनकर भी भूतल पर सिर रख, प्रणाम कर उस महर्षि से मैंने प्रार्थना की, भगवन्! पक्षि-जाति में वर्तमान हुआ मैं अपुण्यवान् अपने-आप कुछ भी नहीं कर सकता। मेरे मुख में वाणी भी आप की ही कृपा से अभी हुई है और पूर्वकाल का ज्ञान भी चित्त में अभी आया है। अब जो आपकी कृपा से दूसरे जन्म में दूसरा शरीर मिलने से मुझे अवस्था को बढ़ानेवाले कर्मों का अवसर मिला तो किस प्रकार कर्म करने से मुझे महान् पुण्यों द्वारा प्राप्त होनेवाली यह अक्षय अवस्था फिर मिलेगी, कृपा करके आप यह कह दीजिये।

मेरी यह विनती सुन सब दिशाओं में दृष्टि डाल कर उन्होंने कहा, यह भी तुझे विदित हो जायगा। अब इस कथा को रहने दे। कथा के रस के आकर्षण से अब सवेरा होने को है यह हमें ज्ञात ही नहीं हुआ। पंपा सरोवर के पास सोये हुए, पक्षियों के जगने की सूचना देता हुआ कोलाहल सुनाई दे रहा है, और रात्रि

के संपर्क से शीतल तथा हिलते हुए वन-कुसुमों की परिमल लाती हुई यह प्रभात-पवन चलने लगी है। अतः अब हवन का समय हो गया है। यह कहते-कहते ही सभा का विसर्जन कर वे स्वयं उठ गए और उनके उठने पर सब तपस्वी अपने-अपने स्थान को चले गये। हारीत ने अपने हाथ से मुझे उठाकर अपनी पर्ण-शाला में ले जाकर शैया के एक भाग में धीरे से रख दिया और प्राभातिक क्रिया करने के लिये बाहर गया। उसके जाने पर सब कार्य करने में असमर्थ तिर्यग्जाति में पड़ने का मुझे हृदय में बड़ा दुख हुआ। मैं नाना प्रकार की चिंता करने लगा। इस संसार में अनेक जन्मों में किए हुए पुण्यों से मिलने वाला मनुष्य-शरीर दुर्लभ है, उसमें फिर सब जातियों से बढ़कर ब्राह्मणत्व, उससे भी बढ़कर मोक्ष-पद के पास पहुँचाने वाला मुनित्व और उससे भी कुछ अधिक दिव्य लोक में निवास। इसलिए जिसने इतने ऊँचे स्थान से निज दोषों के कारण ही अपने को गिराया वह सब क्रिया-विहीन जीव अब इस तिर्यग्जाति से अपना किस प्रकार उद्धार करेगा? केवल दुख भोगने के लिए ही पैदा हुए इस शरीर को सुख तो मिलता नहीं है, इस कारण इस शरीर का त्याग कर दूँ। इस तरह जीवन का त्याग करने की चिन्ता से जब मैंने आँखें बंद कर लीं उसी समय हँसते हुए मुख से मानों मेरा आश्वासन करता हुआ हारीत भीतर आकर कहने लगा, भाई वैशंपायन! तुम्हारे भाग्य की वृद्धि हो। तुम्हारे पिता भगवान श्वेतकेतु के पास से कपिंजल तुम्हें ढूँढ़ता-ढूँढ़ता यहाँ आ पहुँचा है।

यह सुनते ही उसके पास उड़ जाने की उत्कंठा से मैंने हारीत से पूछा, वह कहाँ है? उसने कहा, पिता जी के पास है। तब मैंने फिर उससे कहा, मुनि-कुमार! जो यह बात है तो मुझे भी वहाँ

ले चलिए; उसे देखने के लिए मेरा हृदय तड़प रहा है।

मैं यह कह ही रहा था इतने में आकाश से उतरने के वेग के कारण जिसकी जटा अस्त-व्यस्त हो गई थी, ऐसे उस कृतज्ञ कपिंजल को मुझ अकृतज्ञ ने, अपने सम्मुख खड़ा देखा। उसे देखते ही मेरी आँखों में से आँसू बहने लगे और इतना सा होने पर भी फूत्कार करके मैं बोला, मित्र कपिंजल! दो जन्मो के वियोग के अनंतर भी तुझे देखकर, झटपट उठ कर तथा दूर से ही दोनों भुजा पसार कर गाढ़ आलिंगन करके, हाय! मैं कब सुखी हूँगा? क्या हाथ पकड़ कर कभी मैं तुझे आसन पर बिठाऊँगा और जब तू सुख से बैठेगा तब तेरे अंगों को दाब कर मैं थकावट दूर करूँगा? इस प्रकार मैं अपने विषाद में चिंता कर रहा था तब तक मुझे दोनों हाथों से उठा कर तथा मेरे विरह के दुख से दुर्बल हुई अपनी छाती से लगा कर बहुत देर तक मानों भीतर प्रवेश कराता हो इस भाँति मेरे आलिंगन के सुख का अनुभव करके मेरे चरण-मस्तक पर रख कपिंजल. शोक के बड़े वेग के कारण, साधारण मनुष्य की नाईं रोने लगा। मैं उसको रोता देख फिर बोला, मित्र कपिंजल! संसार से बाँधने वाले तथा मोक्ष-मार्ग को रोकने वाले दोषों ने मेरी भाँति तेरा स्पर्श नहीं किया है इसलिए तू मूढ़ जनों के रास्ते क्यों चलता है? तू रो मत। कृपा करके बैठ जा और सब बात जैसी हुई है वैसी मुझसे कह। मैंने जब यह कहा, तब हारीत के शिष्य की लाई हुई पत्तों की एक चटाई पर बैठकर मुझे गोद में ले, हारीत के लाए हुए जल से मुँह धोकर वह कहने लगा, मित्र! पिता कुशलपूर्वक हैं। हमारा यह वृत्तांत उन्होंने पहिले ही दिव्य चक्षु से देख लिया था और इसकी प्रतिक्रिया के लिए कर्म आरम्भ कर दिए थे। उस कर्म

का आरम्भ हुआ ही था तब तक मैं अश्वजाति से छूट कर पिता के पास गया। उस समय मेरी आँखों में आँसू डबडबा रहे थे। दूर से ही मुझे देखकर उन्होंने बुलाया और बोले, वत्स कपिंजल! तू अपने दोष की शंका छोड़ दे। तेरा मित्र जाबालि महामुनि के आश्रम में पहुँच गया है और उसे जन्मांतर का स्मरण हो गया है इसलिए तू उससे मिलने चला जा और मेरे आशीर्वाद के साथ उससे कह, जब तक यह कर्म समाप्त हो तब तक वह जाबालि के ही चरणों में रहे। तेरे दुख से दुखी हुई तेरी माता लक्ष्मी भी उसी कर्म में सहायता कर रही है। इतना कह सूक्ष्म रोम-वाले मेरे अंग पर बार-बार हाथ फेर कर मेरे लिए वह हृदय में बहुत खेद का अनुभव करने लगा।

उसको खिन्न होते देख कर मैंने कहा, सखे कपिंजल! तू खिन्न क्यों होता है? हाय! तूने भी मुझ पुण्यहीन के कारण घोड़ा बन कर पराधीन वृत्ति में बड़े-बड़े दुख भोगे हैं। सोम-पान के योग्य इस मुख के फेन-सहित रुधिर बहाकर तीक्ष्ण बाग की रगड़ तुमने कैसे सहन की होगी? कोमल पत्तों के बिछौने पर सोने से सुकुमार हुई पीठ सदा जीन धरी रहने से घायल हुए बिना कैसे रही होगी? ऐसी बातचीत करता हुआ मैं उस समय अपने पक्षि-जाति का दुख भूल गया और कुछ समय तक सुख का अनुभव करता रहा। फिर जब दोपहर होने को हुआ तब हारीत ने कपिंजल के साथ मुझे यथोचित भोजन कराया। भोजन करके थोड़ी देर ठहर कपिंजल वहाँ रहने के विषय में मुझसे तथा हारीत से बार-बार कह कर, मेरा आलिंगन कर विस्मय के कारण उन्मुख हुए मुनिकुमारों के देखते-देखते ही अन्तरिक्ष में होकर अदृष्ट हो गया। उसके जाने के पश्चात् हारीत ने मेरा आश्वासन

किया और मेरे पास एक अन्य मुनिकुमार को बैठा कर स्वयं बाहर चला गया।

सावधान चित्त से हारीत के मेरा पालन करने से थोड़े ही दिनों में मेरे पर निकल आए और उड़ने की शक्ति भी आई तब मैंने मन में विचार किया, अब चलने के योग्य तो मैं हो ही गया हूँ। अतः चंद्रापीड़ की उत्पत्ति कहाँ हुई है अब यह जानना रह गया है। महाश्वेता भी वहीं तो है। अतः ज्ञान हो जानेपर भी उसके दर्शन बिना मैं दुःख में क्यों रहूँ ? यह निश्चय करके एक बार प्रातःकाल मैं इधर-उधर घूमने के लिए बाहर निकला और उत्तर दिशा की ओर उड़ चला। परन्तु उड़ने का अभ्यास बहुत दिन का न होने के कारण थोड़ी ही दूर जाने पर मेरे अंग थकावट से ढीले हो गए और मैं घने, हरे पत्तों के भार से झुकी हुई लताओं के कुंज पर जाकर बैठ गया। थोड़ी ही देर में वहाँ मुझे थकावट के कारण नींद आ गई।

नींद टूटने पर मैंने देखा यह क्या ! मैं एक अटूट जाल से बँधा हुआ था और मेरे आगे शरीर तथा वाणी से कठोर एक पुरुष खड़ा था जिसकी क्रूरता का अनुमान पहिले देखे या सुने बिना ही मुझे हो गया। उसको देख सब आशा छोड़ कर मैंने पूछा, भद्र ! तुम कौन हो और तुमने मुझे क्यों पकड़ा है ? यदि केवल कौतुक से ही बाँधा हो तो अब बहुत हुआ, मुझे छोड़ दो। यह सुन कर उसने कहा, महात्मन् ! मैं क्रूर कर्म करने वाला हूँ, जाति से चांडाल हूँ। मैंने तुम्हें मांस के लोभ से या कुतूहल से नहीं पकड़ा है, चांडालों के बेड़े का अधिपति मेरा स्वामी यहाँ से थोड़ी ही दूर पर उस जगह रहता है जहाँ चांडालों ने घर बना रखे हैं। उसकी लड़की की कौतुक की अवस्था है जाबालि के

आश्रम में एक विशेष तथा विचित्र गुणोंवाला महा आश्चर्यकारी सुआ रहता है यह बात उस लड़की से किसी दुरात्मा ने कही। यह बात सुनी तभी से, कौतुक उत्पन्न होने के कारण, तुम्हें पकड़ने के लिए उसने मेरे जैसे बहुत से नौकर भेज रखे हैं, पर यह मेरा ही सौभाग्य है जो पुण्य के प्रभाव से आज तुम मेरे हाथ आए हो। आज मैं तुम्हें उसके पास ले जाऊँगा। यह कह कर मुझे ले वह चांडालों के वाड़े की ओर चला।

जब वह मुझे लेकर थोड़ी दूर पहुँचा तब आगे दृष्टि फेंकते ही मानों केवल पाप का हाट हो ऐसी चांडालों की बस्ती मैंने देखी। वह दूर से ही पहचान ली जाती थी, क्योंकि वहाँ चांडालों के बालक, मानों पिशाचग्रस्त हो इस प्रकार क्रूरता के काम कर रहे थे। इधर-उधर से बिसाँयध फैलाते धुएँ से वहाँ बहुत से मकान बने हैं ऐसा अनुमान होता था। पर बाँसों के घने बन के बीच में आ जाने से वह दिखाई नहीं देते थे। वीथियों में हड्डियाँ मिले हुए कूड़े के ढेर के ढेर पड़े थे। वे तेल का काम प्रायः चर्बी से लेते थे, उनके बिछौने प्रायः चमड़े के थे, परिवार प्रायः कुत्तों का था और उनका पुरुषार्थ प्रायः स्त्री और मद्य में था। मुझे उस चांडाल ने उस समय कुरूप आकार और वेष से बैठी हुई उस कन्या के पास ले जाकर, मैं इसको ले आया, दूर 'ठहर कर ही प्रणामपूर्वक कहता हुआ मुझे उसके सामने धर दिया।

मुझे देखते ही उस कन्या का मुँह खिल गया और अच्छा किया कह कर उसके हाथ में से मुझे अपने हाथों में ले वह कहने लगी, अरे पुत्र! अब तो तू हाथ में आ गया है! अब कहाँ जायगा? तेरी सब स्वच्छंद वृत्ति मैं दूर कर दूँगी। ऐसा कह कर काठ के पिंजरे का द्वार खोल कर महाश्वेता के समागम के मेरे मनोरथों

के साथ ही मुझे भीतर करके द्वार बंद कर उसने मुझसे कहा, अब यहाँ आराम से रह! इस प्रकार घिर जानेपर मैंने अपने मनमें कहा, हाय! यहाँ तो मैं बड़े संकट में आ पड़ा। मैंने सोचा, यदि मैं अपना वृत्तांत कह कर सिर से प्रणाम कर इससे छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करूँगा तो मेरा जो गुण दोष बनकर मेरे बंधन का कारण हुआ है उसी की पुष्टि होगी और जो मैं चुपचाप रहूँगा तो डर है कहीं क्रोधित होकर यह मेरी दशा इससे भी अधिक कष्टदायक न कर दे। मैं चुपचाप रहूँगा तो संभवतः दुखी होकर वह किसी दिन मुझे छोड़ देगी। मैं दिव्यलोक में से भ्रष्ट हो मृत्यु-लोक में पैदा हुआ, तिर्यग्जाति में पड़ चांडाल के हाथ में गया और अब पिंजरे में बंद होकर इस प्रकार का दुख भोग रहा हूँ। मेरी यह सब दुर्दशा इंद्रियों को न रोकने के दोष से ही है इसलिये वाणी ही को नहीं सब इंद्रियों को मुझे नियम में रखना चाहिए, विचारकर मैंने चुप रहने ही का निश्चय किया। इससे वह तर्जना करती, मारती और मेरे पंखों को तोड़ती तो भी मैं कुछ न बोलता। केवल ऊँचे स्वर से चीत्कार करता था।

उसके अन्न-पानी ले आने पर भी मैंने उस दिन कुछ आहार नहीं किया। दूसरे दिन मेरे आने का समय बीत जाने पर हृदय में खिन्न होकर वह कन्या अपने एक हाथ में अनेक प्रकार के पक्के-कच्चे फल और दूसरे में सुगंधित ठंडा पानी लेकर आई। फिर भी मैंने कुछ ग्रहण नहीं किया। तब मुझको देख कर स्नेह से वह कहने लगी, वत्स! क्या पूर्व जाति का स्मरण होने से ही तू हमारा आहार नहीं लेता है? पक्षिजाति में वर्तमान होने से इस समय तेरे लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं है। सर्वोत्तम जाति में जन्म लेकर जिसने ऐसा कर्म किया जिससे उसे पक्षियों की जाति में पतित

होना पड़ा, वह अब यह सब क्या विचार करता है? तूने पहिले ही विवेक के अनुसार आचरण क्यों नहीं किया? देख, तू तो पक्षी है। अपनी जाति के अनुसार आचरण करने में तुझे कुछ दोष नहीं है। जिन लोगों के लिए भक्ष्याभक्ष्य का नियम है उनको भी आपत्काल में अभक्ष्य के उपयोग से प्राण धारण करना चाहिए, ऐसा शास्त्रों में लेख है। फिर मैं तेरे आहार के लिए कोई ऐसा पदार्थ तो लाई नहीं हूँ जिसके खाने में तुझे इस प्रकार का कोई विचार हो क्योंकि फलों को लोग चांडाल के हाथ से भी लेते हैं और सुना जाता है पानी भी चांडाल के बासन में से भूमि पर गिर पवित्र हो जाता है।

मुझे चांडाल-जाति के लोगों में दुर्लभ इस वचन को सुन कर बड़ा विस्मय हुआ और मैंने घृणा छोड़ कर, जीवन की तृष्णा से भूख-पियास को शान्त करने के लिए भोजन कर लिया, परन्तु मौन नहीं छोड़ा। इस प्रकार रहते-रहते कितने ही दिन बीतने पर मैं तरुण हो गया। एक दिन प्रातःकाल मैंने आँखें खोलीं तो देखा मैं इस सोने के पिंजरे में बैठा हूँ और चाण्डालों का वह घेरा देवताओं के नगर के समान हो गया है। यह देख कर विस्मित हो, अरे! यह क्या हुआ, यह कुतूहल से पूछने की इच्छा से जब मैं मौन छोड़ने ही वाला था तब तक वह चांडाल-कन्या मुझे लेकर आपके चरणों में आ गई। इसलिए यह कौन है? क्यों इसने अपना चांडाल होना प्रकट किया है और यह मुझे बाँध कर क्यों यहाँ लाई है इन विषयों को जानने के लिए आपके ही समान मेरा भी कुतूहल बना हुआ है।

यह सुन कर राजा शूद्रक को और भी कुतूहल हुआ और उसने उस चांडाल-कन्या को बुलाने के लिए सामने खड़ी हुई प्रतीहारी

को आज्ञा दी। तत्काल प्रतीहारी के बताए हुए मार्ग से वह कन्या आई और राजा के प्रश्न करने पर उसके सामने भूमि से कुछ ऊपर खड़ी-खड़ी ही मानों अपने तेज से उसका पराभव कर रही हो इस भाँति प्रगल्भता से वह बोली, भुवन-भूषण-तारा रमण, कादंबरी-लोचनानन्द-चन्द्र, इस दुर्बुद्धि का तथा अपना पूर्व जन्म का सब वृत्तांत आपने सुन ही लिया। इस जन्म में भी जैसे यह पिता के निषेध करने पर भी कामांध होकर पिता की आज्ञा को टाल कर बहू के पास जाने को निकला था सो भी इसने आप ही कह दिया है। मैं ही इस दुरात्मा की माता लक्ष्मी हूँ। जब इसकी यह गति हुई तो दिव्य चक्षु से इसे इस तरह प्रस्थित हुआ देख कर इसके पिता ने मुझसे कहा, जो कोई अविनय के रास्ते में जाता है वह परिताप के बिना पीछे नहीं लौटता। यह तेरा पुत्र कहीं इस पक्षि-जाति से भी नीचे न गिरे इस लिए जब तक यह कर्म समाप्त हो तब तक इसको पकड़ कर तू मृत्यु-लोक में ही रख, और जिससे इसको कर्म की पूरी-पूरी ग्लानि हो ऐसा उपाय कर। तदनुसार इसको शिक्षा देने के लिए ही मैंने यह सब किया था। अब यह सब कर्म समाप्त हो गया है और शाप के अन्त होने का समय निकट है। अब शाप के अन्त में आप और यह दोनों अभिन्न हृदय साथ ही साथ सुखपूर्वक रहेंगे। अतः आप और यह दोनों एक साथ ही जन्म-जरा आदि अनेक दुखों से पूर्ण इस शरीर को छोड़ कर प्रियजनों के समागम का सुख भोगिए। इसी हेतु मैं इसे आपके पास लाई हूँ। यह कह कर वह अपने झनझनाते गहनों के स्वर से अन्तरिक्ष को शून्य करती हुई पृथ्वी से झट आकाश में उड़ गई और लोग आँखें फाड़-फाड़ कर उसकी ओर देखते रह गए।

लक्ष्मी का यह वचन सुनते ही राजा को पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई। तब वह अधीर होकर बोला, मित्र वैशंपायनाख्य पुंडरीक! अच्छा हुआ जो हम दोनों के श्राप का अंत आज एक साथ ही हुआ। इतना कहते-कहते ही उसका शरीर काँपने लगा, नेत्र आँसू बहाने लगे और मुख की कांति एक साथ ही फीकी पड़ गई। बार-बार आती मूर्च्छा के बहाने मानों शरीर त्यागने का अभ्यास हो रहा था। अन्त में आप्तजनों के योग्य सेवा-उपचार करते रहने पर भी शीघ्र ही उसका शरीर काठ के समान हो गया। लगभग उसी समय महाश्वेता के लिए उत्कंठित हुए पुंडरीकात्मा वैशंपायन की दशा भी राजा शूद्रक के ही समान हो गई।

उसी काल में कामाग्नि का मानों उद्दीपन करने के लिए सरस पल्लव-युक्त लताओं को नाचना सिखाने में चतुर दक्षिण पवन बहने लगा और चैत्र-मास का आरंभ हुआ जो चंचल लाल पल्लव-वाले अशोक वृक्षों को कँपाने लगा, मंजरी के भार से आम के छोटे-छोटे वृक्षों को झुकाने लगा तथा कुरुबकों के साथ बकुल, तिलक, चंपक तथा कदंबों को कलियों से लादने लगा। इस प्रकार उस बसंत-काल में सायंकाल के समय जब दसों दिशाएँ श्याम हुईं तब नहा कर, कामदेव की पूजा कर कादंबरी ने अत्यंत सुगंधित ठंडे जल से चंद्रापीड़ को स्नान कराया, और सुगंधित फूलों के हार उसके केश-कलाप में गूँथे। फिर अशोक के फूलों के गुच्छे का कर्णपूर एक कान में पहना कर निमेष-रहित तथा प्रेम से स्निग्ध हुई दृष्टि से उसका मानों पान करती हो इस भाव से बहुत देर तक देखती हुई और उत्कंठा से बार-बार साँस लेकर काँपती-काँपती बहुत समय तक वह खड़ी रही। निदान

एकांत में अपने चित्त के भावों को रोकने में अशक्त हुई कादंबरी सहसा उसके ऊपर गिर कर, आँखें मींच कर मानों वह जीवित हो इस प्रकार उसके गले से लिपट गई। उसी समय दिन के ताप से बन्द हुआ कुमुद जैसे शरत्काल की चांदनी से प्रफुल्लित हो उठता है उसी प्रकार चंद्रापीड़ के हृदय में भी साँस चलने लगी और प्रातःकाल जैसे मंदमंद कमल की कली खिलती है उसी भाँति कानों तक पहुँचते हुए उसके नेत्र भी खुल गए और ऐसा लगा मानों वह सोते से उठ गया हो।

ऐसे ही सब अंगों की चेष्टा क्रमशः प्राप्त कर चंद्रापीड़ निज कंठ से लगी हुई कादंबरी को बहुत दिनों के विरह से दुर्बल हुई बाहुओं से गले से चिपका कर पूर्व परिचित स्वर से हर्षित करता हुआ कहने लगा- भीरु ! भय मत करो, आज तुम्हारे विरह का दुख देने वाला शूद्रक नाम का अपना मानुषी शरीर त्यागकर मैं तुम्हारे ही कंठालिंगन से जीवित हो गया हूँ। तुम्हारी प्रिय सखी महाश्वेता का भी प्रियतम मेरे साथ ही श्राप से छूटा है। इस प्रकार चंद्रापीड़ के कहते ही चंद्रलोक में अंग में लगी हुई अमृत परिमल फैलाता हुआ जिस वेष में महाश्वेता की उत्कंठा में मरा था उसी वेष में वैसे ही कंठ में एक लड़ की माला धारण किए हुए कपिंजल का हाथ पकड़े पुंडरीक आकाश में से उतरता दिखाई पड़ा। उसको दूर से देखते ही चंद्रापीड़ का वक्षःस्थल छोड़ कर, कादंबरी दौड़कर; महाश्वेता की गर्दन से लिपट गई और पुंड-रीक के आगमन-महोत्सव की बधाई जब तक देने भी न पाई थी तब तक पुंडरीक उतर आया और परमोपकारी चंद्रापीड़-स्वरूप चंद्र के पास जा पहुँचा। चंद्रापीड़ ने उसको आलिंगन करके कहा, सखे पुंडरीक ! यद्यपि पूर्व-जन्म के संबंध से तुम मेरे

जामाता हो तो भी पिछले जन्म में उत्पन्न हुए मित्र-स्नेह के सद्भाव से ही तुमको मेरे साथ व्यवहार करना चाहिए।

तब इस आनंद के उत्सव की सूचना देने तथा चित्ररथ और हंस को बधाई देने के लिए केयूरक तुरंत हेमकूट गया। मदलेखा भी दौड़ कर बाहर गई और मृत्युंजय का मंत्र जपने में लगे हुए तारापीड़ के तथा विलासवती के पैरों में गिर कर अत्यंत आनंद से चिल्ला कर कहने लगी, महाराज! देवी के साथ आपको बधाई है। युवराज वैशंपायन के साथ जीवित हो गए। यह सुन कर विलासवती को कंठ से अवलंबन कर, बुढ़ापे की सिकुड़न से शिथिल हुई बाहु से दुपट्टे के पल्ले को ऊँचा करते प्रफुल्लित मुखवाले अनेक आश्रित राजाओं के साथ मलय-पवन से प्रकंपित कमलाकर के समान वह कहाँ हैं-कहाँ हैं बार-बार मदलेखा से पूछते, अपनी ही भाँति हर्ष में मग्न हुए शुकनास को आलिंगन करते वहाँ आ पहुँचे और चन्द्रापीड़ को उसी प्रकार पुंडरीक के गले से लगा हुआ देख अत्यंत आनंद से शुकनास से कहने लगे, अहा! यह भाग्य की बात है जो पुत्र के फिर जीवित होने के उत्सव का सुख मैंने अकेले ही नहीं भोगा। हर्ष में इस भाँति निमग्न हुए पिता को देख संभ्रम-सहित पुंडरीक को छोड़ कर चंद्रापीड़ पहले के समान ही भूतल पर मस्तक रख, उनके चरणों में गिर पड़ा।

रानी विलासवती भी आनंद के कारण अपने अंग में नहीं समाती थीं। बार-बार चंद्रापीड़ के मस्तक, ललाट और गाल का चुंबन कर, वह बहुत देर तक उसका गाढ़ आलिंगन करती रहीं। फिर माता के पास से मुक्त होने पर शुकनास के पास जाकर चंद्रापीड़ ने बार-बार नमस्कार करके उसे प्रणाम किया।

शुकनास ने उसे अनेक आशीर्वाद दिए। तब क्रम से पास जाकर उसने यह तुम्हारा वैशंपायन है यह कह कर विनय के कारण तथा नम्र मुखवाले पुंडरीक को माता-पिता, शुकनास और मनोरमा को दिखाया। उसी समय कपिंजल ने पास आकर शुकनास से कहा, मित्र भगवान श्वेतुकेत ने कहा है, मैंने तो पुंडरीक का केवल संवर्धन किया है पर पुत्र तो यह आपका ही है और इसका भी आपके ऊपर स्नेह है इसलिए इसे वैशंपायन ही मान कर अविनय से रोकना, और न्यारा समझ कर उपेक्षा मत करना। श्राप से छूट जाने पर भी यह जो आपका है इसीलिए इसे अपने पास नहीं बुलाया है।

यह सुनकर शुकनास ने विनय से नम्र हुए पुंडरीक के कंधे पर हाथ रख कर, कपिंजल से कहा, भगवान ने यह संदेश ही क्यों भेजा? इसपर मेरा पूरा स्नेह रहेगा यह आप उनसे कह देना। फिर वहुत समय तक पूर्व जन्म के वृत्तांत के स्मरण की अनेक बात-चीत करने में परस्पर दर्शन सुख से सबके नेत्र प्रफुल्लित हुए और रात कब बीत गई यह ज्ञात ही नहीं हो पाया। प्रातःकाल मदिरा और गौरी सहित गांधर्व राज चित्ररथ और हंस दोनों भी वहीं आए और उन्होंने अपनी सलज्ज पुत्रियों को देख हृदय में विपुल हर्ष पाया। जामाता के दर्शन से उनका मुख प्रफुल्लित हो गया और तारापीड़ तथा शुकनास के साथ दृढ़ हुए संबंध के योग्य वार्तालाप करते करते उनका महोत्सव मानों सहस्र गुना बढ़ गया। तब चित्ररथ ने तारापीड़ से कहा, राजन्! अपना सदन पास होने पर भी वन में यह महोत्सव क्यों किया जाय? यद्यपि हमारे धर्म-संगत विवाह का आधार आपस की रुचि पर ही है तो भी लौकिक व्यवहार को तो मानना ही चाहिए।

इसलिए हमारे यहाँ ही चला जाय। यह सुन महाराज चंद्रापीड़ ने सप्रेम उत्तर दिया, गांधर्व राज! जहाँ संपत्ति का अधिक सुख मिले वही स्थान वन होने पर भी राजसदन है। सो ऐसा संपत्ति का सुख मुझे और कहाँ मिला? और फिर अब तो मैंने सब भवन ही आपके जामाता को दे दिए हैं। इस हेतु मित्र! मुझ विरक्त को यहीं छोड़ साथ राजकुमार को लेकर अपने आनंदमय नगर को जाइए। यह सुन चित्ररथ चंद्रापीड़ को लेकर हेमकूट गए और कादंबरी के साथ ही अपना सब राज भी चंद्रापीड़ को अर्पित कर दिया। हंस ने भी पुंडरीक को महाश्वेता के साथ अपनी सब समृद्धि दे दी और वे दोनों आनंद के महासागर के शांत तट पर तैरने लगे।

तब एक समय जन्म से ही जिसकी अभिलाषा थी ऐसे परम प्रिय श्रेष्ठ हृदयवल्लभ के मिलने से आनंदित हुई कादंबरी सब स्वजनों के बीच में पहुँच कर सुखी होने पर भी आँखों में आँसू भर कर दीन मुख से चंद्रापीड़-रूप चंद्रमा से राजसदन में पूछने लगी, हे आर्य पुत्र, हम सब तो मर कर भी फिर से जी उठे और परस्पर संयुक्त हुए, परंतु यह बिचारी पत्रलेखा जो हमारे बीच में नहीं दीखती है उस अकेली का क्या हुआ? यह नहीं जान पड़ा? यह सुन कर चंद्रापीड़-मूर्ति चंद्रमा ने हृदय में प्रसन्न हो उत्तर दिया, प्रिये! यहाँ वह कहाँ? वह तो मेरे दुःख से दुःखित हुई रोहिणी थी, जो मुझे शाप से ग्रस्त हुआ सुनकर मैं अकेला मृत्यु-लोक में रहने का दुःख कैसे भोग सकूँगा यह सोच मेरे वर्जित करने पर भी पहले से ही मेरे चरणों की सेवा करने के लिए जन्म लेकर मृत्युलोक में चली आई थी। मेरा जन्मांतर होने पर भी मेरी मृत्यु के साथ ही शरीर त्याग कर

वह फिर मृत्यु-लोक में जन्म लेना चाहती थी, पर मैंने हठपूर्वक उसे रोक कर चंद्र-लोक में भेज दिया। इस कारण उससे तुम्हारी चंद्र-लोक में ही भेंट होगी।

इस प्रकार फिर हेमकूट में दस दिन रह कर चंद्रापीड़ सास-ससुर से विदा हो पिता के पास आ गया। वहाँ आकर उसके वियोग में साथ ही क्लेश भोगने वाले राजा लोगों को अपना सा ही सुखी करके, वह राज्य का सब भार पुंडरीक को सौंप, सब कामर यागने वाले माता-पिता के चरणों की सेवा करता हुआ कभी जन्म-भूमि के स्नेह से उज्जयिनी में, कभी अनुपम तथा अत्यंत रमणीय हेमकूट में, कभी रोहिणी के बहुत आदर के कारण अमृत के परिमल के संस्कार से सुगंधित ठंडे प्रदेशों से मनोहर लगते चंद्रलोक में तथा कभी पुंडरीक की प्रीति से दिन-रात प्रफुल्लित हुए कमलों से युक्त जल वाले लक्ष्मी के रहने के सरोवर में और कभी कादंबरी की रुचि के अनुसार अन्य विविध रमणीय स्थानों में वास करता हुआ, सदा नये-नये नाना प्रकार के सुख भोगता था और कादंबरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता पुंडरीक के साथ और पुंडरीक भी चंद्रमा के साथ परस्पर सब कालों में अवियुक्त रह कर सब सुख का अनुभव करते-करते आनंद की अंतिम सीमा पर पहुँच गए !

* इति शुभम् *

मुद्रक—काशी प्रसाद भार्गव, सुलेमानी प्रेस, मछोदरी पार्क, बनारस।

कादंबरी-परिचय

—*❀*—

[शब्द-कोश]

(अ)

अकरणीय : न करने योग्य कर्म

अक्षमाला : जपमाला

अग्निसंस्कार : दाहकर्म; मृतक को जलाना

अग्रभाग : सिरा; ठेपुनी

अङ्गराग : केसर चंदन आदि अंग-लेप

अङ्गीकार : मानलेना; अभ्युपगम करना,

अङ्गुरीय : मुंदरी (मुद्रिका); अंगूठी

अचानक : अकस्मात्; अनायास,

अचिन्त्य : वह वस्तु जिसका विचार न हो सके

अञ्जलियुक्त : अञ्जली जोड़कर

अटवि : पिछली अवस्था में जहाँ घूमते हैं; जंगल

अतिथि : मार्ग में चलता चलता घर में आ गया यात्री, अभ्यागत

अतिशय : हाथ को लाँघने वाला; बड़ा

अदृष्ट : न देखा गया; पुण्य और पाप रूप भाग्य

अदृष्टपूर्व : पहिले कभी न देखा गया

अद्वितीय : अपने समान दूसरे के बिना

वह फिर मृत्यु-लोक में जन्म लेना चाहती थी, पर मैंने हठपूर्वक उसे रोक कर चंद्र-लोक में भेज दिया। इस कारण उससे तुम्हारी चंद्र-लोक में ही भेंट होगी।

इस प्रकार फिर हेमकूट में दस दिन रह कर चंद्रापीड़ सास-ससुर से विदा हो पिता के पास आ गया। वहाँ आकर उसके वियोग में साथ ही क्लेश भोगने वाले राजा लोगों को अपना सा ही सुखी करके, वह राज्य का सब भार पुंडरीक को सौंप, सब कामद यागने वाले माता-पिता के चरणों की सेवा करता हुआ कभी जन्म-भूमि के स्नेह से उज्जयिनी में, कभी अनुपम तथा अत्यंत रमणीय हेमकूट में, कभी रोहिणी के बहुत आदर के कारण अमृत के परिमल के संस्कार से सुगंधित ठंडे प्रदेशों से मनोहर लगते चंद्रलोक में तथा कभी पुंडरीक की प्रीति से दिन-रात प्रफुल्लित हुए कमलों से युक्त जल वाले लक्ष्मी के रहने के सरोवर में और कभी कादंबरी की रुचि के अनुसार अन्य विविध रमणीय स्थानों में वास करता हुआ, सदा नये-नये नाना प्रकार के सुख भोगता था और कादंबरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता तुंडरीक के साथ और पुंडरीक भी चंद्रमा के साथ परस्पर सब कालों में अवियुक्त रह कर सब सुख का अनुभव करते-करते आनंद की अंतिम सीमा पर पहुँच गए!

* इति शुभम् *

मुद्रक—काशी प्रसाद भार्गव, सुलेमानी प्रेस, मछोदरी पार्क, बनारस।

कादंबरी-परिचय

—*※*—

[शब्द-कोश]

(अ)

अकरणीय : न करने योग्य कर्म

अक्षमाला : जपमाला

अग्निसंस्कार : दाहकर्म; मृतक को जलाना

अग्रभाग : सिरा; ढेपुनी

अङ्गराग : केसर चंदन आदि अंग-लेप

अङ्गीकार : मानलेना; अभ्युपगम करना,

अङ्गुरीय : मुंदरी (मुद्रिका); अंगूठी

अचानक : अकस्मात्; अनायास,

अचिन्त्य : वह वस्तु जिसका विचार न हो सके

अञ्जलियुक्त : अञ्जुली जोड़कर

अटवि : पिछली अवस्था में जहाँ घूमते हैं; जंगल

अतिथि : मार्ग में चलता चलता घर में आ गया यात्री, अभ्यागत

अतिशय : हाथ को लाँघने वाला; बड़ा

अदृष्ट : न देखा गया; पुण्य और पाप रूप भाग्य

अदृष्टपूर्व : पहिले कभी न देखा गया

अद्वितीय : अपने समान दूसरे के बिना

शब्द-कोश

अधर : ऊपर और नीचे का होठ

अधिकाधिक : अधिक और फिर अधिक

अधिपति : रक्षा करने वाला; स्वामी

अधीन : वश में आया हुआ

अधोमुख : जिसका मुख नीचे की ओर हो

अधोवस्त्र : नीचे का वस्त्र, धोती=(अधोपट)

अनन्तर : जिसके बीच फरक न हो; पश्चात् ; तदुपरि

अनपत्यता : संतान रहित होना

अनर्थ : अनिष्ट; जिसका प्रयोजन न हो

अनवरत : निरंतर; लगातार

अनिन्द्य : जो निंदा के योग्य न हो

अनिष्ट : सुख का विरोधी

अनुकृति : जिसमें अनुकरण किया हुआ हो;

अनुग्रह : विरूप, निर्धन और उन्मत्त को दान और मान से पूरण करना।

अनुमति : मानलेना (Consent)

अनुमरण : चिता पर चढ़कर स्त्री का शरीर छोड़ना

अनुराग : अत्यंत प्रीति

अनुरोध : सेवा करने योग्य स्वामी आदि की अभिलाषा को पूरी करने की इच्छा

अनुल्लंघनीय : जो मेटने के योग्य न हो; जिसको लाँघा न जा सके

अनुसरण : पीछे जाना

अंतःकरण : भीतर का इंद्रिय जो मन, बुद्धि, चित्त आदि पदों से बोला जाता है।

अन्तःपुर : राजाओं की स्त्रियों के निवास योग्य घर

अन्तरिक्ष : जो स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में देखा जाता है

शब्द-कोश

अन्यथा · झूठ

अपितु : यद्यपि

अपुण्यशाली . जो पुण्यवान न हो; पापी

अप्राप्य : जो पाने के योग्य न हो

अभक्ष्य जो खाने के लिए उचित न हो

अभिज्ञान : यह वही है इस प्रकार का ज्ञान कराने के लिये कोई चिह्न; "चिन्हा" (उदाहरणार्थ राजा दुष्यंत की शकुन्तला को दी हुई मुँदरी)

अभिप्राय . आशय; सम्मति

अभिमान · धन आदि द्वारा दर्प; अहंकार

अभिषिक्त · जिसका अभिषेक [मंत्र पूर्वक स्नान] हुआ हो

अभिसारिका . नायक को मिलने के लिए संकेत स्थान (सहेट) में आ पहुँचने वाली स्त्री

अभ्यागत : जो पहिले नहीं देखा गया; अतिथि

अभ्युदय : मन से चाहे गए कामों का प्रकट होना

अमङ्गल · कुशल से रहित

अम्बर : शब्द का आश्रय; आकाश

अरमणीय : जिसमें मन न रमे

अरुणोदय : सूर्योदय से पहिले की चार घड़ियाँ

अर्गल : किवाड़ बन्द करने की कल

अर्चन · पूजा

अर्धयाम : आधा याम; दिन का सोलहवाँ भाग, याम=प्रहर; प्रहर=पहर; दिन का आठवाँ भाग

अलंकृत : अलंकार, आभरण या आभूषण से सज्जित

अलक : जुल्फ; काकुल; अङ्गोयुत केश; कुन्तल

शब्द-कोश

अलक्त : लाह का रंग; आलता

अल्प : तनिक; थोड़ा, किञ्चित्

अवकाश : अवसर; अभ्यन्तर स्थान

अवगुण्ठन : घूँघट; मुख छिपाने का कपड़ा

अवज्ञा : अनादर

अवधान : जिसके होने पर और विषयों से मन हट जाता है; गर्भाधान

अवन्तिका : उज्जयिनी, मालव देश की राजधानी

अवयव : शरीर के भाग

अवलम्बन : आश्रय, सहारा

अवस्था . आयु; दशा

अविचल : जो चंचल न हो; स्थिर

अवियुक्त : जिसका वियोग न हो; मिला रहकर

अशरण . अनाथ

अश्रुपात : आँसू बहाकर

अश्वारोही : सवार; घोड़े पर चढ़ने वाला सैनिक

असङ्गत : जो औचिती से शून्य हो; अयुक्त

अस्त : फेंका गया, समाप्त

अस्वस्थ : व्याधित; बीमार; जिसे असुख या कुठाट हो

अहेरी : शिकारी; (आखेटिक=खटिक)

(आ)

आकार : मूर्ति; मनका अभिप्राय

आकृष्ट : खिंचा हुआ

आक्रन्द : बड़े जोर से रोना

आक्रोश . चिन्ता या निन्दा; शाप; चिल्लाना
आखेट . प्राणियों को भय देनेवाली मृगया
आग्नेयास्त्र अग्निबान या अग्निगोला
आघात · परस्पर चोट करना
आचरण . स्वभावगत व्यवहार
आभरण . सजावट; गहना
आयुष्मान छोटे को आशीर्वाद सहित विशेषण; चिरंजीव
आयुष्मती : जैसे पुरुष के लिये आयुष्मान् का प्रयोग वैसे ही स्त्री के लिये आयुष्मती का प्रयोग
आराधना . प्रसन्न करना
आर्तस्वर : पीड़ित स्वर
आर्द्र . जिसमें जल मिला हो; ओदा
आर्या . संस्कृत का एक छंद
आलाप · बातचीत; संगीत के सात स्वर
आलिङ्गन प्रीति पूर्वक आपस में मिलना
आविष्ट , भूत आदि से दबाया गया
आवेग शोक; चिन्ता
आवेश : क्रोध
आशङ्का : भय
आश्वासन डरे हुए का डर दूर करने के लिये धैर्य देना
आसव : मद्य
आहत : चोट दिया गया
आहार : गले के नीचे करना; भोजन
आह्लाद : प्रसन्नता; आनंद; मोद

(इ)

इङ्गित : आशय; अभिप्राय, संकेत

इन्द्रनील . जो दूध में डालने से उसे नीला बनादे; पन्ना; मरकत मणि, नीलम

(उ)

उत्कट . अत्यन्त, अतीव

उत्कण्ठा . इष्ट लाभ के पूरा करने के लिए मन की चिन्ता, चाही हुई वस्तु में देरी का सहन न होना

उत्कीर्ण · फेंका गया

उत्तरीय : शरीर के ऊपर वाले भाग पर धारण करने वाला कपड़; दुपट्टा (द्विपट)

उत्प्रेक्षा समानता

उत्संग : गोद (क्रोड़); (कौरा); (उछंग)

उदयाचल : उदय पर्वत, पूर्व दिशा का पर्वत

उदर नाभि और स्तनो का बीच

उदार : गंभीर; बड़ा

उद्दीपन : चमकाना; चमकानेवाला

उद्वेग : चित्त का व्याकुल होना

उन्नत : ऊँचा उठा; महान

उन्मत्त : उन्मादवाला; पागल

उन्मीलित : खुला हुआ

उन्मुख : जिसका मुँह ऊपर हो

उपचार : सेवा

शब्द-कोश

उपयुक्त : ठीक ठीक रचा गया

उपेक्षा : "यह मेरे लिये न हो" इस प्रकार की इच्छा, उदासीनता

उल्लासित : उल्लास=चमक या आह्लाद पाया हुआ

उल्लंघन : लाँघना

उष्णकाल : निदाघ गर्मी का समय

(ए)

एकमात्र : अकेला

एकाग्र : अनन्यासक्त चित्त

(ऐ)

ऐरावत : समुद्र से निकला इन्द्र का हाथी

(क)

कङ्कण : कर-भूषण; ककनी

कञ्चुकी : राजाओं के अन्त:पुर का अधिकारी

कटाक्ष : आँख के सिरे से देखना; अपाङ्ग दर्शन

कठिन : कड़ा

कठुला : माला

कण्ठालिंगन : गले से लगना

कदाचित् : किसी न किसी समय

कनिष्ठ : अनेक में जो सब से छोटा हो

कपिल : पीला रंग

कपोल : गाल

कमण्डलु : जो पानी की सजावट को ग्रहण करे, मिट्टी या लकड़ी का पात्र जो भिक्षु लोग हाथ में रखते हैं।

शब्द-कोश

कर्णपूर : जो कानको भरता है; कर्णाभरण, कर्णाभूषण; कनफूल

कलकण्ठ : जिसके गले में मीठी आवाज हो;
हंस; कोकिल

कलाप : मोर की पूँछ; समूह

कलुषित : पाप-युक्त

कल्हार : सफेद कमल

काठी : घोड़े की पीठ पर जीन आदि

कान्ति : शोभा; चमक

कामावेश : विषय की इच्छा की उफान में

कायिक : जो शरीर से किया जाय

किङ्किणी : क्षुद्र-घंटिका; करधनी

किन्नर : कुत्सित नर; नर का मुख और घोड़े का शरीर; देवताओं के गवैया

किं पुरुष : हिमालय और हेमकूट के बीच एक पर्वत माला

किरात : भील

कुक्कुट : मुर्गा

कुण्ठित : सुस्त

कुतूहल : अपूर्व वस्तु को देखने में यत्न करना

कुब्ज : जिसमें थोड़ी सी कोमलता हो, कुबड़ा

कुमुद : कैरव, कल्हार; सफेद कमल

कुम्भ : हाथी के शिर के दो मांस के गोले

कुरर : टिटिहिरी; कुंज पक्षी

कुरुबक : एक पुष्प वृक्ष

कुलटा : भोग वा भीख के लिए घर घर में घूमने वाली स्त्री

कुवलय : नीला कमल

कृतघ्न : जो किए को नाश करता है; उपकारी का उपकार न मानने वाला

शब्द-कोश

कृतार्थ : जिसने काम कर लिया

कृत्तिका : एक तारा; कचपचिया

कुमुद-कोमल : कमल जैसा कोमल

कौस्तुभ : विष्णु की छाती पर बड़े तेजवाली मणि

क्रूर : निर्दय

क्लेश : रोग

क्षुधा : भूख

क्षुभित : चारों ओर से हिलाया गया

क्षोभ : व्यर्थ इधर-उधर हिलना

(ख)

खड्ग : गैंडे की सींग

खिन्न : दुख में पड़ा हुआ

खेद : मन की घबराहट

(ग)

गगन : आकाश

गर्विष्ठ : गर्व करने वाला

गहन : जंगल; जहाँ प्रवेश करना कठिन हो

गाढ़ : दृढ़

गुहा : गुफा

गोरोचन : प्रसिद्ध सुगंध वाला द्रव्य

गोह : (गोधा); छिपकली जाति का एक जीव

गौरव : बड़प्पन

ग्रह : सूर्य आदि ९ ग्रह

ग्रहीत : पकड़ा हुआ

ग्रीवा : गरदन (फारसी गरेबाँ)

ग्लानि : दिल का टूटना

(घ)

घण्टालिका : घण्टियाँ

घाती : हत्या करनेवाला

(च)

चन्द्रकान्त : चाँद जिसका प्यारा है; एक प्रकार की मणि जो चाँदको देखकर पिघलती है

चन्द्रशेखर . शिव

चन्द्रात्मक चन्द्रमा जिसकी आत्मा हो

चरित : स्वभाव

चामर ग्राहिणी : चमर डुलाने वाली सेविका

चाव : उत्साह

चिन्तन : ध्यान

चीत्कार : डरावनी पुकार

चूड़ामणि : शिर की मणि

चेष्टा : शरीर का व्यापार

(ज)

जनापवाद : जनता द्वारा निन्दा

जन्मान्तर · दूसरा जन्म

जरा : वह अवस्था जिसमें शरीर ढीला हो जाता है; बुढ़ाई

जर्जरित : जुलजुल; बूढ़ा

जलधि : समुद्र

शब्द-कोश

जाग्रत : जागा हुआ

जामाता : दामाद

जाल : जिससे ढाँकते हैं

जिह्वा : जीभ

जीर्ण : जरा प्राप्त; बूढ़ा

जीवन पर्यन्त : जीवन भर

जोधा : योद्धा; पुत्र के लिए सम्बोधन

(झ)

झुटपुटा : सन्ध्या के समय की हल्की अन्धियारी; गोधूलि-बेला, झोलामाली

(ठ)

ठूँठ : डाल व टहनी से शून्य

(त)

तत्काल : हो रहा समय; तुरन्त

तत्पर : उसमें गया; लीन

तदनुसार : उसके अनुसार

तरल : कामी

तरलता : काम वासना

तरल नयना : चंचल नेत्रों वाली

तरुण : नूतन, नया

तर्जना : डरवाना

तागड़ी : करधनी

तापस कुमार : अल्पवय वाला तपस्वी

तामरस : कमल

ताम्बूल : पान

तारुण्य : यौवन

तिरोहित : छिपा हुआ

तिलक : तिलवृक्ष; चंदन आदि का तिलक (चिह्न)

तूर्य : तुरही

तृण पुरुष : धोख (Scarecrow)

तृषा : प्यास

तोष : तृप्ति

(द)

दंष्ट्रा : दाढ़; चौभड़

दक्षिणा : प्रतिष्ठा

दग्ध : भस्मीकृत; जलाया हुआ

दंशन : डँसना

दर्पण : रूप की परछाईं देखने का आधार

दर्शनीय : देखने योग्य

द्रविड़ : दक्षिण देश का अनार्य

दार-परिग्रह : पत्नी को स्वीकार करना

दारुण : दुस्सह

दिग्वधू : दिशाएँ ही मानों वधू हों

दिव्य : स्वर्ग की वस्तु

दिव्याङ्गना : स्वर्ग की अप्सरा

दीर्घ : लम्बा

दुरात्मा : दुष्ट चित्तवाला

दुर्विनीत : जो उद्दंड हो

देवार्चन : देवता की वन्दना

दैवयोग : संयोग

द्यूत : जूआ

(ध)

धर्मसंगत : धर्म के अनुकूल

धवल : सफेद रंग

धीर : नम्र

धूसर : काला

धृष्ठ : प्रगल्भ; ढीठ

ध्वज : झंडा

(न)

नकुलिका : नेवली

नर्मवचन : परिहास की बात

नसेनी : सीढ़ी (*निःश्रेणी*)

निदान : अन्त

निपुण : दक्ष

निमग्न : डूबा हुआ

निमेष : आँख के फुरकने का स्वाभाविक काल

निरन्तर : निरवधि; असीम; लगातार

निराहार : बिना भोजन

निर्दिष्ट : दिखलाया हुआ

निर्विकार : जिसका स्वभाव नहीं बदलता

निवृत्त : लौट गया; छूट गया; लिपटा हुआ

निवेदन : आदर पूर्वक बतलाना
निश्चल : अचल
निश्वास : मुख और नाक से निकली हुई वायु
निषेध : मना करना; वर्जित करना
निष्ठुर : कठोर
निःस्नेह : बिना मोहवाला
नूपुर : पाँवटा; पाजेब; पादाङ्गद
नृशंस : क्रूर; निर्दय

(प)

पङ्क : कीचड़
पटिक : गलीचा
पत्रवाहक : पत्र ले जाने वाला
पथिक : पथ में जाने वाला
पद्म : कमल
पयोधर : बादल; कुच
परवश : पराधीन
परशु . फरसा
पराग : फूलों का रज
पराभव : तिरस्कार; विनाश
परिग्रह : स्वीकार
परिचारक : सेवक; भृत्य
परिजन : पालन करने योग्य लोग
परिताप : शोक
परिमल : केसर चंदन आदि की सुगंध

शब्द-कोश

परिव्राजक : सन्यासी

पर्याप्त : यथेष्ट; पूरा

पलित : बुढ़ाई से बालों का सफेद होना

पल्लव : नवीन पत्ता

पसेव : पसीजन

पाणिग्रहण : जिसमें हाथ पकड़ा जाता है; विवाह

पाद प्रहार : पैर से चोट करना

पार्श्व : काँख के नीचे का भाग; पाँस

पाशुपत : महादेव का भक्त; एक व्रत

पिन्जर : *पिंजड़ा*

पिशाच : जो मांस को खाता है

पुण्डरीक : सफेद कमल

पुनीत : पवित्र

पुरुषार्थ : अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति

प्रणय : प्रीति

प्रतिकूल : विरुद्ध

प्रतिगृह : स्वीकार करना

प्रतिमा : एक समान करना, मूर्ति

प्रतिहार, प्रतीहार : द्वारपाल

प्रतीक्षा : अपेक्षा; आशा; इन्तिजारी

प्रत्यक्ष : आँखों के सामने

प्रत्युत्तर : उत्तर का उत्तर देना

प्रदक्षिणा : चारों ओर सम्मानार्थ घूम कर प्रणाम करना

प्रदीप : दीपक

प्रदोष : सायंकाल

प्रपञ्च : उलटापन; प्रतारणा

प्रवाल : मूँगा

प्रभात : प्रातः काल

प्रमाण : कद

प्रयाण : चलदेना

प्रयोजन : उद्देश्य

प्रलाप : पागलों का वचन

प्रवीण : जो वीणा से ऊँचे गावे; चतुर

प्रशस्त : प्रशंसा के लायक

प्रसङ्ग : मेल, सम्बन्ध-विशेष

प्रसव : गर्भ का छूटना

प्रसाद : देवता को निवेदन किया हुआ

प्रस्थान : यात्रा

प्रस्थित : गया हुआ

प्रहार : चोट लगाना

प्राचीर : नगर-रक्षा के लिए चारो ओर खिंची ऊँचीं दीवाल

प्राभातिक : प्रातः काल की

प्रायश्चित : पाप दूर होने के लिए चांद्रायण व्रत आदि कर्म

प्रासाद : जिसमें मन बहुत प्रसन्न होता है; देवताओं वा राजाओं का गृह

प्रिय : भर्ता; पति; स्वामी

प्याऊ : जहाँ जल पिलाया जाता है

(ब)

बधिर: बहिर

बरियाई बलपूर्वक

बलि : पूजा की भेंट

बहुभाषी : बहुत बोलने वाला

बहुलता : प्रचुरता; आधिक्य

बान्धव : पिता और माता के संबंध वाला

बालभाव : बच्चों का सा व्यवहार

बाला : सोलह वर्ष की स्त्री

बावला : बहुत बोलने वाला; वातुल; बाउर; बौड़हा;

बिजायठ : भुजबन्द

बेठन : ढँपनेवाला

बैठका : बैठने का निश्चित गृह (drawingroom);
बैठने के लिए पीढ़ा आदि (seat)

(भ)

भर्त्ता : स्वामी; पालन करने वाला

भर्तृदारक : राजकुमार

भर्तृदारिका : राजकुमारी

भवितव्यता : जो अवश्य होनेवाला है, होनहार

भास्कर : जो प्रकाश का कर्ता है; सूर्य

भीरु : डरनेवाला; भयशील

भूतल : पृथ्वी

भ्रमर : मधुकर; भौंरा

भ्रष्ट : अधःपतित

भ्रूविलास : भौंहों को आशय विशेष से घुमाना

(म)

मकरध्वज : मछली के झंडेवाला; कामदेव

मकरिका : माँग की पाटी पर धारण किया जानेवाला मकर के आकार का गहना
मञ्जरि, मञ्जरी : नई उत्पन्न हुई कोमल बल्लरी
मत : माना गया; जाना गया
मद्य : जिससे मस्त होते हैं; मदिरा
मनोरथ : मनही रथ है जहाँ, इच्छा
मंदभागिनी : अभागिन
मरकत : हरीमणि; पन्ना; नीलम
महानुभाव : जिसका महान आशय हो
महाभाग : बड़े भाग्य वाला
महावर : *महावर्ण*; आलता (*आलक्तक*)
महिष : भैंसा
महोत्सव : निरन्तर सुख देनेवाला काम
माणिक्य : लाल रंग का रत्न
मानुषी : मानवी; मनुष्य का
मुग्धे : मुग्धा (मोहिता) नायिका को सम्बोधन; भोली-भाली !
मुद्रा : प्रत्यय कारिणी; विश्वास जमाने वाली; मोहर; आकृति
मुहूर्त : १२ क्षण का समय
मूर्छा : जागने पर भी बाहर की इन्द्रियों के व्यापार से शून्य होने की दशा
मृणाल : कमल के फूल की डंठल का सूत
मेरु : एक प्रसिद्ध पौराणिक पर्वत-माला
मौन : वाणी के व्यापार से रहित होना;
मुनिपना : चुप रहना

(य)

यथोचित : जैसा उचित हो

याचना : माँगना याञ्चा
युक्ति : अनुमान; उपाय
युगान्त : युगों का अन्त; प्रलय
योनि : उत्पन्न होने की जगह

(र)

रक्त : शरीर की सात धातुओं में से रुधिर नामी धातु; लाल
रमणी : जिससे आनन्द भोगते हैं; नारी
रम्य : सुन्दर; रमण के योग्य
रहस्य-संदेश : गुप्त संदेश
राग : रञ्जन; रँगना; प्रसन्न होना; प्रेम
राजचक्र : राजा का वातावरण; राज-समाज
राशि : समूह
रुद्राक्ष : मानों रुद्र की आँख है; एक वृक्ष
रोहिणी : अश्विनी से चौथा नक्षत्र

(ल)

लक्षण : जिससे जतलाया जाता है
लग्न : राशियों का उदय; लगा हुआ
लता-कुसुम-पात : लता से फूलों का चूना
ललना : स्त्री
ललाट : अलक के नीचे का भाग—मस्तक
लवण : नमक; *लोन*
लालसा : गर्भवाली स्त्री की इच्छा; अतिशय इच्छा
लावण्य : सौंदर्य; सलोनापन; *लोना*
लीला : क्रीड़ा; विलास

लोकत्रय : तीनों लोक
लोक-हृदय-हारी : भुवन मन मोहन
लोचनानन्द : नेत्रों को आह्लाद कारक

(व)

वकुल : एक पुष्प वृक्ष
वक्रोक्ति . काव्य में काकु वचन; टेढ़ी उक्ति
वज्रसार : कठोर वज्र
वत्स : बच्चा; बच्छ-बछड़ा
वदन : जिससे बोला जाता है
वन्दन : स्तवन; प्रणाम
वर्जित : निषिद्ध; मना किया हुआ
वर्ष पर्वत : वह पर्वत जहाँ वर्षा के चिह्न दीखते हैं अर्थात् जहाँ तक वर्षा हो सकती है
वल्कल : छिलका; बोकला
वहन : ढोना
वाचिक : वाणी से किया हुआ
वाधा : रुकावट
वामन : जिसकी अवस्था बड़ी किन्तु प्रमाण (कद) छोटा हो
वासुकि : जो रत्न से शब्द करता है; सर्पराज
वाहक : ले जाने वाला
विकल : विरुद्ध कला हो जिसकी; घबराया हुआ
विकार : बिगाड़; अन्तर
विक्रय : बेचना
विघ्न : व्याघात; अन्तराय; रोक

विज्ञप्ति : सादर प्रार्थना; विज्ञापन

विडम्बना : निरादर

वितान : चन्दोआ

विद्याधर : एक प्रकार का देवता

विधाता : प्रजापति; ब्रह्मा

विनय : प्रणाम

विनोद : खेल; चाव; आनन्द

विपरीत : प्रतिकूल

विपुल : अगाध; बहुल

विभक्त : जुदा; टूटा

विभव : ऐश्वर्य

विम्ब : सूर्य आदि का मण्डल

विलास : अँगों का हिलना

विलेपन : जिससे लेप किया जाय (Cream)

विवर : छेद

विविध : जिसका प्रकार जुदा है; नाना प्रकार

विवेक : ठीक ठीक वस्तु के स्वरूप का निश्चय करना

विश्राम : विराम, किए जा रहे काम का अवसान (अंत)

विश्वस्त : जिस पर भरोसा किया गया हो

विषम : जो बराबर न हो

विषाद : अवसाद; जड़ता, दिल का टूटना

विसर्जन : त्याग, दान; छोड़ देना

विहीन : छोड़ा हुआ; वर्जित

विह्वल : भय आदि से घबराया हुआ

वीणा-वाहक : वीणा ढोने वाला

वीथिका : गली

वृत्तान्त : जिससे फैसला हो गया; संवाद

वृत्ति : जीविका स्थिति

वृथा : निरर्थक

वृद्धि : बढ़ती

वृष्टि : पानी का बरसना

वृहस्पति : देवताओं का आचार्य

वेणु : बाँस की बनी हुई बंसी

वेत्रवती : मालव देश की नदी, बेतवा

वेला : काल; समय

वैमानिक : देवता

वैराग्य : विषयों की वासना से रहित

वैवाहिक : विवाह के संबंध का

व्यग्रता : बहुत व्यस्त रहने से घबराहट

व्यथा : पीड़ा

व्यसन : काम और क्रोध से उपजा हुआ दोष

व्याधि : बीमारी; असुख; कुठाट

व्यापार : काम; परिश्रम; लाभदायक काम

व्याप्त : पूर्ण; भरा हुआ

(श)

शबर : वनवासियों की एक जाति

शर : तीर; सरकंडा

शल्य : बाण; सेल (बर्छी)

शव : मरा हुआ शरीर

शब्द-कोष

शाप क्षय : शाप दूर होना
शाल्मली : सेंमल का वृक्ष
शिरीष : सिरिस का वृक्ष
शिरोधार्य : माथेपर धारण करने योग्य
शील : स्वभाव
शुक : सुग्गा
शुभ्र : गोरा
शून्य : सूना; आकाश
शृङ्खला : बेड़ी; सीकड़
शेखर : चोटी
शेष : अनन्त; साँप; बचा हुआ
शोक-ग्रस्त : शोक में पड़ा हुआ
श्रीहत : तेजहीन; निस्तेज

(स)

संकुचित : सिकुड़ा हुआ
संचरण : हिलाना; चलाना
संजीवन : प्राण पहिनाना
संयम : बंधन
संवादयित्री : समाचार देनेवाली
संशय : एक भाव में होना और फिर न होना; संदेह
संस्कार : अनुभव से उपजा आत्मा का गुण; विवाहादिक १० धर्म के कर्म
सचेत : चेतना सहित
सञ्चरण : चलना
सत्कार : आदर; पूजन

सन्तप्त : अग्नि में तपा हुआ

सन्ताप : आग से उपजा ताप

सन्धि : जोड़; भेंट देकर एक राजा का दूसरे के साथ मिल जाना; सेंध

सन्ध्योपासन : सन्ध्या के समय की पूजा

सपत्नी : समान पतिवाली; सौत

सपेत : श्वेत; सफेद

समग्र : सकल

समस्त : सारा

समागम : बिछुड़े हुओं का पुनर्मिलन

समाधान : विवाद भञ्जन; झगड़ा मिटाना

समीपवर्ती : निकट वाला

सम्पन्न : सिद्ध किया हुआ; सम्पदावाला

सम्पुट : जो दोनों ओर से भली भाँति पर्दे होने की भांति मिला हुआ हो; बन्द

सम्भावना : संशय रूप ज्ञान

सम्भ्रम : भय से उपजा वेग

सरल हृदया : खुले हृदय वाली

सर्प : साँप

सहचर : सखा; वयस्य; अनुचर

सामर्थ्य : शरीर का बल

सारिका : मैना

सावधान : जो चित्त को एक करता है; सचेत

सिद्धाञ्जन : सिद्धि में प्राप्त अञ्जन जिसके लगाने से स्वयं अदृश्य रहकर सब कुछ देखा जाता है

सीमन्त : केशों के भीतर मार्ग सा बना हुआ

सीमान्त : सीमा का अवसान; *सिवान*

सुभाषित : सुन्दर उक्ति; सूक्ति; अवसर के उपयुक्त सुन्दर भाषण

सुरभि: सुगन्ध

सूचना : जतलाना

सूत्रपात : आरंभ

सेतु : पुल

सैन्य : सेना में मिले हुए हाथी घोड़ा आदि; सेना का समूह

सौध : राजसदन भेद; हवेली

स्तन : स्त्रियों का एक अङ्ग; जोबन; *थन*

स्तब्ध : जड़; सुन्न

स्थगित : ढाँका हुआ; छिपा हुआ (Shelved)

स्निग्ध : स्नेहवाला

स्पर्श : छूना; *परसना*

स्पष्ट : स्फुट; प्रकट

स्पृहा : इच्छा; चाह

स्फटिक : सूर्यकान्त मणि; बिल्लौर पत्थर

श्येन : (*श्येन*) बाज़ पक्षी

स्वयंबर : सभा में कन्या का आपही पति को बर लेना

स्वल्प : बहुत थोड़ा

स्वांग : वेष बनाना

स्वेद : पसीना

(ह)

हरताल : पीले रंग का एक खनिज पदार्थ (*हरिताल*)

हर्म्य : धनी लोगों का महल

हवन : आग में घी आदि का फेंकना

हृदयहारी : हृदय वश में करने वाला

हृष्ट : प्रसन्न हुआ

हेतु : कारण

हेमन्त : अगहन (अग्रहायण) और पूस (पौष) महीने की ऋतु

—*❀*—